पदमावत-सार

[जायसी-कृत पदमावत का संक्षेप]

संपादक

इन्द्रचन्द्र नारंग

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालन्धर और इलाहाबाद

प्रकाशक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

मूल्य ५)

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी की पदमावत के पठन-पाठन की ओर हिन्दी- और अ-हिन्दी-भाषियों की रुचि दिन-दिन बढ़ रही है। गत २५-३० वर्षों में इसके कई संस्करण भाष्य और व्याख्याएँ प्रकाशित हुई। पदमावत ने हमारे इतिहास-वाङ्मय को अत्यधिक प्रभावित किया है। मैंने पदमावत का अध्ययन उसके ऐतिहासिक आधार को टटोलते हुए किया। मेरी पुस्तक 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार' प्रकाशित होने पर कुछ मित्रों ने पदमावत का संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित करने की सलाह दी, जिससे जिन पाठकों को पूरी पदमावत पढ़ने का अवकाश नहीं है वे भी इस अमर काव्य का रसास्वादन कर सकें। प्रस्तुत संग्रह उसी प्रयास का फल है। पदमावत का यह संक्षिप्त संग्रह प्रस्तुत करने में प्रयत्न किया गया है कि—

क. पदमावत के कथानक का सूत्र अटूट बना रहे,

ख. काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट सभी अंशों का समावेश हो जाय,

ग. पदमावत के सभी पात्रों का चरित्र स्पष्ट हो जाय।

इस पुस्तक को लिखते समय जिन दुर्लभ ग्रन्थों की मुझे आवश्यकता हुई वे सब मुझे श्रद्धेय पं० क्षेत्रेशचन्द्र जी चट्टोपाध्याय से मिलते रहे। सुहृद्वर पं० रामबहोरी जी शुक्ल ने मेरी पांडुलिपि को बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ा, जहाँ तहाँ सुझाव दिये और अनेक स्थलों पर पदमावत का अर्थ समझने में मुझे सहायता दी। इन दोनों सज्जनों का मैं चिर आभारी रहूँगा।

इन्द्रचन्द्र नारंग

विषय-तालिका

कवि-परिचय

हिन्दी के अमर प्रबन्ध काव्य पदमावत के लेखक मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन-वृत्त हमें बहुत अधिक ज्ञात नहीं है। जो कुछ थोड़ा बहुत ज्ञात है उसका आधार उनके ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य और किंवदन्तियाँ हैं।

उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में (लखनऊ से ६७ मील दक्खिन पूरब) जायस गाँव है। यह उत्तर रेलवे का स्टेशन है। इसी गाँव के सम्बन्ध से कवि के नाम के साथ जायसी लगा है। जायस उनका जन्मस्थान था या वे कहीं अन्यत्र से आ कर वहाँ बस गये इस विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। आखिरी कलाम में उन्होंने लिखा है—

जायस नगर मोर अस्थानू, नगर क नावँ आदि उदयानू।
तहाँ दिवस दस पहुने आएउँ, भा वैराग बहुत सुख पाएउँ।
सुख भा सोचि एक दिन मानौं, ओहि बिनु जिवन मरन कै जानौं।
नैन रूप सो गएउ समाई, रहा पूरि भर हिरदय छाई।
जहवें देखौं तहवें सोई, और न आव दिस्टि तर कोई।
आपुन देखि देखि मन राखौं, दूसर नाहीं सो कासों भाखौं।
सबै जगत दरपन कै लेखा, आपन दरसन आपुहिं देखा।

'तहाँ दिवस दस पहुने आएउँ' का अर्थ कुछ लोग यह करते हैं कि वे कहीं अन्यत्र से कुछ दिन के लिए जायस में आये और फिर वहीं बस गये। कुछ लोग 'दिवस दस पहुने आएउँ' का अर्थ

जन्म ले कर इस जग में आना करते हैं और उन्हें जायस का निवासी मानते हैं। पदमावत में उन्होंने लिखा है—

जायस नगर धरम अस्थानू, तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।

इस अर्धाली के उत्तरार्ध का यह पाठांतर भी मिलता है—'तहवाँ यह कवि कीन्हं बखानू'। इसलिए इस अर्धाली से भी निश्चित कुछ पता नहीं लगता। जो लोग उन्हें अन्यत्र से आया मानते हैं वे यह नहीं बता सकते कि वे कहाँ से आये। यदि वे बाहर से आये तो भी किशोरावस्था तक ही आ गये और फिर उन्होंने जायस में ही अपना घर बना लिया और सदा के लिए वहीं बस गये। उनकी समूची कविता भी जायस में ही लिखी गई।

कवि के जन्म काल के संबंध में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं। आखिरी कलाम में लिखा है—

भा औतार मोर नौ सदी, तीस बरिस ऊपर कवि बदी।
आवत उधत-चार विधि ठाना, भा भूकंप जगत अकुलाना।

नौ सदी का अर्थ कुछ लोग हिजरी ९०० (१४९४ ई०) करते हैं और कुछ लोग इसका अर्थ नौवीं सदी (८०१--९००) हिजरी में किसी समय लेते हैं। पदमावत के अंतिम छंद में वृद्धावस्था का जो वर्णन है उसे कुछ विद्वान् जायसी का स्वतः अनुभूत सा मानते हैं। जायसी का जन्म ९०० हि० में मानने पर वह छंद उनकी ४७ वर्ष की अवस्था में लिखा मानना पड़ता है। उस अवस्था में वृद्धावस्था का वैसा अनुभव नहीं हो सकता। डा० मुंशीराम ने अपने पदमावत भाष्य में उस छन्द का अर्थ इस प्रकार किया है कि वह स्वतः अनुभूत सा नहीं है। यदि वह अर्थ ठीक माना जाय तो नौ सदी

का अर्थ ६०० हि० माना जा सकता है। इस अंतिम छंद के अतिरिक्त पदमावत के स्तुति खंड में निम्नलिखित दोहा आता है—

दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।
बादसाह तुम्ह जगत के, जग तुम्हार मुहताज॥

दिल्ली की गद्दी पर बैठने के समय शेरशाह की अवस्था ५३-५४ वर्ष की हो चुकी थी। शेरशाह बादशाह को आशीर्वाद देनेवाला कवि अवश्य वृद्ध रहा होगा। इसलिए पदमावत के अन्तिम छन्द में कवि का स्वतः अनुभूत वृद्धावस्था का वर्णन मानना ही ठीक है। पदमावत लिखते समय जायसी वृद्ध हो चुके होंगे। उन्हें अपने जन्म संवत् का स्वयं ठीक पता न होगा, इसलिए उन्होंने 'भा औतार मोर नौ सदी' लिखा होगा। उनका जन्म नौवीं शताब्दी हिजरी में अर्थात् १३६८ और १४६४ ई० के बीच कभी हुआ।

जायसी एक नेत्र से विहीन थे—एक नयन कवि मुहमद गुनी।' कुछ लोग उन्हें जन्म से ही काना मानते हैं और कुछ कहते हैं कि शीतला या अर्धाङ्ग रोग से उनकी बाईं आँख जाती रही तथा बायाँ कान भी निकम्मा हो गया। दूसरा पक्ष ठीक मालूम होता है। कवि ने स्वयं लिखा है—

मुहमद बाईं दिसि तजा, एक स्रवन एक आँखि।
जब से दाहिन होइ मिला, बोल पपीहा पाँखि॥

जायसी अरबी और फारसी के विद्वान तो थे ही, संस्कृत के भी पंडित थे। पदमावत में हिन्दी संस्कृत के बहुत से अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। उस समय हिन्दी में अलंकार ग्रन्थ लिखे न गये थे। जायसी ने संस्कृत के अलंकार ग्रन्थ पढ़े होंगे। संस्कृत अलंकार

शास्त्र का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है। पर उसमें कहीं कहीं जहाँ संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है उनसे अनुमान किया जा सकता है कि जायसी ने संस्कृत काव्य ग्रंथों का भी विस्तृत अध्ययन किया था। अकूट उदन्त आदि कुछ ऐसे शब्द हैं। नाथ पन्थ के हठयोग के सिद्धान्तों का भी जायसी ने अध्ययन-मनन किया होगा।

जायसी के लिखे ग्रन्थों में आखिरी कलाम ९३६ हिजरी (१५२९ ई०) में बाबर बादशाह के प्रशासन में लिखा गया। पदमावत की रचना कवि ने ९४७ हिजरी (१५४० ई०) में शेरशाह के प्रशासन में की। पदमावत में शेरशाह की जैसी प्रशंसा है और जिस प्रकार जायसी के उसे आशीर्वाद देने का वर्णन है उससे ऐसा मालूम होता है कि जायसी उस महापुरुष के न्याय प्रजवत्सलता आदि गुणों पर मुग्ध थे और उन्होंने उसके दरबार में जा कर उसे आशीर्वाद दिया। लोग यह भी कहते हैं शेरशाह स्वयं उनके पास आया, शेरशाह जैसे गुणग्राही निरभिमानी प्रशासक से ऐसी ही आशा की जा सकती है।

जायसी सूफी थे। अपनी गुरु-परम्परा का उन्होंने अखरावट में इस प्रकार उल्लेख किया है—

पा पाएउँ गुरु मोहदी मीठा, मिला पंथ सो दरसन दीठा।
नावँ पियार सेख बुरहानू, नगर कालपी हुत गुरु थानू।
औ तिन्ह दरस गोसाईं पावा, अलहदाद गुरु पंथ लखावा।
अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला, सैयद मुहमद के वे चेला।
सैयद मुहमद दीनहिं साँचा, दानियाल सिख दीन्ह सुवाचा।

जुग जुग अमर सो हजरत खवाजे, हजरत नबी रसूल नेवाजे।

शेख बुरहान और शेख मोहदी की गद्दी कालपी में थी। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें दिल्ली के तेरहवीं-चोदहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफी निज़ामुद्दीन औलिया की मानिकपुर-कालपी की शिष्य-परंपरा में माना है। पदमावत में जायसी ने सैयद अशरफ जहाँगीर को भी अपना गुरु लिखा है—

सैयद अशरफ पीर पियारा, जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।

जायस में कवि ने सैयद मुहम्मद अशरफ से दीक्षा ली होगी और कालपी में मोहदी (मुहीउद्दीन) से।

जायसी के जीवन-काल में सिकन्दर लोदी (१४८८–१५१७) इब्राहीम लोदी (१५१७–१५२६) बाबर (१५२६–१५३०) हुमायूँ (१५३०–१५४०) शेरशाह (१५४०–१५४५) ये छह बादशाह तो दिल्ली की गद्दी पर बैठे ही थे, यदि उनका जन्म १४६४ से पहले माना जाय तो शायद उन्होंने बहलोल लोदी (१४५१–१४८८) का प्रशासन भी देखा हो। १४७६ ई० तक बहलोल लोदी हुसेनशाह शर्की से जौनपुर तक का इलाका छीन चुका था। इस प्रकार जायसी के जीवन काल में जायस नगर लगातार दिल्ली-सम्राट् के अधीन रहा।

जायसी की कविता की प्रसिद्धि उनके जीवन काल में ही हो गई थी। उनके चेले उनकी कविता गाते फिरते थे। कहते हैं उनका एक चेला नागमती का बारहमासा गा कर अमेठी (जि० सुलतानपुर, जायस से १६ मील पूरब) में भीख माँगा करता था। अमेठी का राजा उस बारहमासे को सुन कर मुग्ध हो गया और फकीर से बारह-

मासे के कवि का नाम-धाम पूछ कर उसने विनयपूर्वक जायसी को अमेठी में बुलवाया। तब से वे वहीं रहने लगे और वहीं उनकी मृत्यु हुई।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—

"जायस में प्रसिद्ध है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गये। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देख कर हँस पड़ा। उन्होंने अत्यंत शांत भाव से पूछा—'मोहिका हँससि, कि कोहरहि ?' अर्थात् तू मुझपर हँसा या उस कुम्हार (गढ़ने वाले ईश्वर) पर ? इसपर शेरशाह ने लज्जित हो कर क्षमा माँगी। कुछ लोग कहते हैं कि वे शेरशाह के दरबार में नहीं गये थे, शेरशाह ही उनका नाम सुन कर उनके पास आया था।"

शायद इस प्रसिद्धि का कारण उनका यह दोहा हो—

मुहमद कवि जौ प्रेम का, ना तन रकत न मांसु।
जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा, सुना तो आए आँसु॥

दिल्ली-दरबार में वे गये होंगे। परन्तु उनके चेहरे को देख कर हँसनेवाला बादशाह शेरशाह न रहा होगा। शेरशाह उच्चशिक्षा-प्राप्त, सुसंस्कृत और गुणियों का आदर करने वाला था। स्वयं जायसी ने उसकी दिल खोल कर प्रशंसा की है और मुक्तकंठ से आशीर्वाद दिया है। और शेरशाह के काल तक वे वृद्ध भी हो चुके थे। वृद्ध पर हँसने की गुस्ताखी तो कोई भी न कर सकता। यदि उनपर दिल्ली का कोई बादशाह हँसा था तो वह दुरभिमानी इब्राहीम लोदी रहा होगा।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काजी नज़रुद्दीन हुसेन जायसी के आधार

पर जायसी का मृत्यु-काल ४ रजब ९४९ हिजरी (सन् १५४२ ई०) लिखा है।

पद्मावत का कथानक

सिंहल द्वीप में गंधर्वसेन राजा था। उसकी रानी चंपावती थी। उनके यहाँ पदमावती नाम की परम सुन्दरी कन्या जन्मी। सयानी होने पर पदमावती को अलग महल दिया गया। पदमावती के पास हीरामन नाम का तोता था। वह महापंडित था। हीरामन और पदमावती एक साथ रहते और वेद-शास्त्र पढ़ते थे। पदमावती से विवाह करने के लिए दूर दूर से वर आने लगे, पर गंधर्वसेन किसी को अपने बराबर न समझता और जवाब दे देता था। एक दिन पदमावती ने हीरामन से कहा—मेरी मदन-पीड़ा दिन-दिन बढ़ती जा रही है, पर पिता मेरे विवाह की बात नहीं चला रहे हैं, माँ डर के मारे कुछ कह नहीं सकतीं, मेरे लिए देश देश के वर आ रहे हैं पर पिता को कोई पसन्द नहीं आता। तोते ने उत्तर दिया—विधि का लिखा मिटाया नहीं जा सकता। मुझे आज्ञा दो तो मैं तुम्हारे योग्य वर खोजूँ। उनकी बातचीत किसी दुर्जन ने सुन ली और राजा से कह दी। यह सुन कर राजा को गुस्सा आया और उसने तोते को मार डालने की आज्ञा दी, पर पदमावती ने किसी प्रकार विनती करके हीरामन को बचा लिया। तोते ने पदमावती से कहा कि आज तो तुमने मुझे बचा लिया, पर राजा मुझे मारना चाहता है, कब तक बचा सकोगी ? मुझे जाने दो तो मैं जंगल में चला जाऊँ। पर पदमावती ने उसे जाने न दिया। तोता उसके पास रह तो गया पर

उसके मन में डर बना रहा ।

एक दिन पदमावती अपनी सहेलियों के साथ मानसरोवर में नहाने गई । पीछे महल में बिल्ली आई । उसे देख कर हीरामन उड़ कर ढाक के जंगल में चला गया । वहाँ पक्षियों ने उसका बड़ा आदर किया । पदमावती लौट कर आई । तोते का पिंजरा खाली देख कर बहुत रोई । सखियों से खोजने को कहा । पर सखियों ने समझाया कि उसे कहाँ पाओगी । जब तक तोता पिंजरे में रहा, बंदी रहा । अब वह स्वतन्त्र हो गया है, अब लौट कर क्यों आवेगा ? तोते ने कुछ दिन तो जंगल में सुख से काटे; फिर एक बहेलिया आया और उसे पकड़ कर ले चला ।

चित्तोड़गढ़ के राजा चित्रसेन का रत्नसेन नामक पुत्र हुआ । उसका रूप देख कर ज्योतिषियों ने कहा कि वह बड़ा पराक्रमी होगा, पदमावती के लिए जोगी बन कर सिंहल जायगा और सिद्ध बन कर उसे चित्तोड़ लायेगा ।

चित्तौड़गढ़ का एक व्यापारी व्यापार के लिए सिंहल द्वीप को चला । एक गरीब ब्राह्मण भी कुछ ऋण ले कर उसके साथ हो लिया । सिंहल द्वीप पहुँच कर व्यापारियों ने माल खरीदा, पर ब्राह्मण को कुछ न मिला, साथी माल खरीद कर चले गये और ब्राह्मण हाट में खड़ा पछताने लगा । इतने में बहेलिया हीरामन को बेचने हाट में पहुँचा । ब्राह्मण ने हीरामन से दो-चार बातें पूछीं, उसे पंडित जान कर खरीद लिया और जल्दी जल्दी चल कर अपने साथियों से जा मिला । ये लोग चित्तौड़ पहुँचे तो वहाँ का राजा चित्रसेन मर चुका था और उसका कुँवर रतनसेन गद्दी पर बैठा था । राजा रतन-

सेन के दरबार में खबर पहुँची कि सिंहल गये हुए व्यापारी लौट आये हैं, उनके पास सिंहल द्वीप का बहुत सा माल है, एक ब्राह्मण एक तोता लाया है जो बड़ा सुन्दर है, उसके मस्तक पर टीका और कंधे में जनेऊ है, वह वेदव्यास के ऐसा कवि है, वह जो सार्थक शब्द बोलता है उसे सुन कर सब सिर हिलाने लगते हैं, ऐसा अनमोल तोता राजमंदिर में होना चाहिये। रतनसेन ने ब्राह्मण को बुलाया और हीरामन के गुण देख कर एक लाख रुपये में उसे खरीद लिया।

कुछ दिन बाद राजा रतनसेन शिकार को गया। उसकी पटरानी नागमती शृङ्गार करके हीरामन के पास आई और उससे पूछ बैठी— मुझ जैसी सुन्दरी कोई जग में है? पदमावती का रूप स्मरण कर हीरामन हँसा और बोला—सुन्दरी तो वही है जिसे स्वामी चाहे। सिंहल की नारियों की बात क्या पूछती हो? तुम तो उनके सामने अँधेरी रात सी हो। नागमती ने सोचा कहीं ऐसा न हो यह राजा के सामने कभी ऐसी बात कह दे और राजा सिंहल की पद्मिनी नारियों के लिए वियोगी हो कर चला जाय। उसने धाय को बुला कर कहा कि इस कुभाषी तोते को एकान्त में ले जा कर मार दो। धाय ने सोचा यह तोता राजा का प्यारा है, इसे मार देने पर राजा मुझे दंड देगा। यह सोच कर उसने तोते को छिपा दिया। राजा ने शिकार से लौट कर पूछा हीरामन कहाँ है तो रानी ने उत्तर दिया उसे बिल्ली ले गई। राजा ने उसके लिए बहुत विलाप किया। तब रानी उठ कर धाय के पास गई और उससे तोता ला कर उसने राजा को दिया। राजा के पूछने पर तोते ने सारी बात बताई और पदमा-

वती के रूप का बखान किया। उसे सुन कर राजा मूर्च्छित हो गया। होश आने पर वह पदमावती को पाने के लिए जोगी हो कर घर से निकल पड़ा। हीरामन सिंहल द्वीप का रास्ता बताने को उसके साथ चला। नागमती और रतनसेन की माँ बहुत रोई, पर उसने परवाह न की। उसके साथ सोलह हजार कुँवर भी जोगी हो कर चले। लगभग एक महीना हीरामन के मार्ग-दर्शन में चल कर वे कलिंग में समुद्रतट पर पहुँचे। वहाँ के राजा से जहाज ले कर वे सिंहल द्वीप की ओर चल पड़े। सात समुद्रों को पार कर सिंहल द्वीप पहुँचे।

हीरामन के कहने से राजा साथी जोगियों के साथ महादेव के मंदिर में बैठ कर पदमावती का ध्यान करने लगा। तोते ने बताया था कि श्रीपंचमी के दिन पदमावती महादेव के मंदिर में पूजा करने आवेगी तब तुम उसके दर्शन पा सकोगे। राजा उस दिन की प्रतीक्षा करने और 'पदमावती पदमावती' जपने लगा। राजा के उस योग का प्रभाव पदमावती पर पड़ा। वह प्रेम-वश हो गई, विरह उसे सताने लगा। इतने में हीरामन आया। वह उसे गले से लगा कर बहुत रोई। हीरामन ने अपना सब हाल कहा। फिर उसने रतनसेन के रूप कुल आदि की प्रशंसा कर के कहा कि मुझसे तुम्हारे रूप गुण की प्रशंसा सुन कर वह तुम्हारे प्रेम में जोगी हो कर तुम्हें पाने के लिए आया है और महादेव के मन्दिर में जप कर रहा है। पदमावती ने कहा कि वसन्त आने पर मैं पूजा के बहाने मन्दिर में जाऊँगी। हीरामन ने मन्दिर में जा कर राजा को इसकी सूचना दी।

वसंत-पंचमी के दिन पदमावती सखियों के साथ महादेव के मन्दिर

में गई। पूजा कर के जोगियों को देखने गई। उसे देख कर रतनसेन बेसुध हो कर गिर पड़ा। उसे होश में लाने के लिए पदमावती ने चंदन का लेप किया, पर लेप ठंडा लगने से उसकी नींद और गहरी हो गई। तब पदमावती ने उसकी छाती पर चंदन से लिख दिया—जोगी, तुमने भीख पाने लायक जोग नहीं सीखा। जब फल-प्राप्ति की घड़ी आई तो तुम सो गये। तुम्हें फल-प्राप्ति कैसे होगी! अब तुम सच्चे सूर हो तो गढ़ में घुस कर सतमंजिले महल तक आओ। यह लिख कर वह सखियों के साथ अपने महल में चली गई।

होश आने पर राजा ने चंदन के उस लेख को पढ़ा। वह बहुत पछताया और जल मरने को तैयार हुआ। उसकी विरहाग्नि से डर कर हनुमान महादेव के पास पहुँचे। महादेव कोढ़ी का वेश बना कर नन्दी पर चढ़ कर वहाँ आये। उनके साथ पार्वती और बन्दर के वेश में हनुमान भी थे। महादेव ने उससे जलने का कारण पूछा। इतने में पार्वती ने राजा की परीक्षा लेनी चाही और रतनसेन के दुपट्टे का छोर पकड़ कर बोली—तुम्हारे रूप गुण की प्रशंसा सुन कर इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। मुझ जैसी सुन्दरी और कौन है? पदमावती तो गई, तुम्हें अप्सरा मिल गई, अब जलना मरना तप जोग छोड़ कर मेरे साथ जन्म भर भोग करो। मैं स्वर्ग की अप्सरा हूँ। मुझे छोड़ कर तुम उसके लिए मरते हो तो तुम्हें क्या लाभ होगा? राजा ने कहा—मुझे न स्वर्ग चाहिये, न स्वर्ग की अप्सरा; मुझे तो बस एक पदमावती चाहिये और कुछ नहीं। तब पार्वती ने हँस कर महादेव से कहा कि इसका प्रेम सच्चा है। यह सचमुच विरहाग्नि में जल रहा है। तुम महादेव देवों के पिता हो, तुम [illegible]

दया करो और इसकी आस पूरी करो; अन्यथा इसकी हत्या तुम्हें लगेगी। महादेव को पहचान कर राजा उनके पैरों पर गिर कर रोने लगा। उसके रोने से संसार डूबने लगा, तब महादेव को दया आई। उन्होंने कहा—तुम बहुत रो लिये अब मत रोओ। अब तुम सिद्ध हो गये। फिर उन्होंने उसे सिंहल गढ़ में घुस कर ऊपर चढ़ने का मार्ग बताया और सिद्धि गुटिका दे कर अन्तर्धान हो गये।

सिद्धि गुटिका पा कर राजा ने जोगियों के साथ सिंहलगढ़ को घेर लिया। दुर्गरक्षकों ने राजा गन्धर्वसेन के पास खबर पहुँचाई कि जोगियों ने गढ़ छेंक लिया है। राजा ने दो दूत भेजे। उन दूतों ने आ कर जोगियों से कहा कि तुम्हें जो भीख चाहिए माँग लो और दूसरी जगह जा कर जप तप करो। रतनसेन ने कहा···मैं भीख लेने ही तो आया हूँ, राजा देंगे तो मैं अवश्य लूँगा। राजकन्या पदमावती के लिए मैं भिखारी हो कर आया हूँ और खप्पर ले कर उसी की भीख माँगता हूँ। दूतों से यह बात सुन कर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने सब जोगियों को मार कर भगा देने की आज्ञा दी। पर मंत्रियों ने कहा जोगियों से जूझना ठीक नहीं, गढ़ के नीचे बैठा रहने दो, हार कर अपने आप दूसरी जगह चले जायेंगे। जब राजा के दूत लौट कर न आये तो रतनसेन ने प्रेम-संदेश लिख हीरामन के हाथ पदमावती के पास भेजा। पदमावती ने भी उसका उत्तर लिख कर भेजा। पदमावती का संदेश पा कर राजा को बल मिला। गढ़ के ऊपर चढ़ने के लिए राजा महादेव के बताये कुंड में घुसा और उसने ऊपर चढ़ने के मार्ग को खोज कर उसका फाटक खोल लिया, पर इतने में दिन निकल आया और शोर मच गया कि चोर गढ़ में घुस आये

हैं। राजा गंधर्वसेन ने मंत्रियों से पूछा तो उन्होंने कहा सब जोगियों को पकड़ कर सूली दे दो। राजा की सेना जोगियों को पकड़ने चली। रतनसेन के साथी उससे लड़ना चाहते थे, पर उसने समझाया कि जोगी को गुस्सा नहीं करना चाहिए। सब जोगी शान्त हुए और पकड़े गये। पदमावती यह सुन कर बहुत दुखी हुई। उसका विलाप सुन कर धाय हीरामन को बुला लाई। हीरामन ने उसे समझाया कि रतनसेन सिद्ध हो चुका है, वह अमर है।

जब जोगियों को बाँध कर सूली देने की जगह लाया गया तो वहाँ जनता की भीड़ लग गई। पहले रतनसेन को सूली के लिए लाया गया। उसका रूप देख कर सब पछताने लगे। कहने लगे यह जोगी नहीं है, कोई राजकुमार वियोगी हो गया है। पता लो कहीं राजा भोज तो जोगी बन कर नहीं आ गया। रतनसेन से पूछने पर उसने उत्तर दिया—मेरा परिचय क्या पूछते हो, मैं तो जोगी भिखारी हूँ। वह 'पदमावती पदमावती' जपता रहा। जब उसे सूली दी जाने लगी तो महादेव का आसन डोल गया। महादेव और पार्वती भाट और भाटिन का रूप धर कर हनुमान को साथ ले कर वहाँ आये। पार्वती ने महादेव से रतनसेन को बचाने को कहा। इतने में हीरामन भी वहाँ आया और रोने लगा। उसने पदमावती का संदेश सुनाया कि मैं प्राणों को निकाल कर हाथ में लिये बैठी हूँ, मेरा मरना जीना तुम्हारे साथ है। संदेश सुन कर रतनसेन हँसा। भाट (महादेव) ने गंधर्वसेन को समझाया कि जोगी पानी है और तुम आग हो, आग और पानी का युद्ध नहीं होता। यह जोगी नहीं है राजा है। यदि तुमने युद्ध ठाना तो महाभारत होगा। महादेव ने

रणघंट बजाया है। सुन कर ब्रह्मा सहित सब देवता युद्ध करने को आ रहे हैं। उन्हीं के साथ नवों नाथ और चौरासी सिद्ध भी आ रहे हैं। यह जोगी चित्तौड़ का राजा रतनसेन है। तुम्हारा तोता हीरामन इसे बुला कर लाया है। यह पदमावती के लिए जोगी हुआ है। हीरामन को बुला कर उससे पूछ लो। जहाँ कन्या होती है वहाँ वर आते ही हैं। यदि विवाह कर दोगे तो पुण्य होगा। तुम इसे परख लो। रत्न छिपाये से नहीं छिपता। यदि यह परीक्षा में खरा उतरे तो इसे पदमावती ब्याह दो। हीरामन का नाम सुन कर राजा का क्रोध जाता रहा। हीरामन बुलाया गया। उसने भाट की बात का समर्थन किया। राजा को विश्वास हो गया। रतनसेन को बंधन खोल कर लाया गया। उसने कानों में मोम से जोगियों के कुंडल चिपकाये हुए थे। राजा के आदेश से उसने जोगी वेश छोड़ कर राजवेश धारण किया। परीक्षा के लिए उसे एक कटहा घोड़ा दिया गया। रतनसेन ने उसपर सवार हो कर फिरा दिया तो सब को उसके राजा होने का विश्वास हो गया। तब रतनसेन का पदमावती से और उसके साथियों का अन्य पद्मिनी कुमारियों से विवाह हुआ और वे सुख से वहीं रहने लगे।

इधर चित्तौड़ में नागमती रतनसेन के वियोग में विलाप करती थी। राजा को गये एक वर्ष बीत गया। नागमती के विलाप से सब पशु पक्षी विकल हो गये। अंत में आधी रात को एक पक्षी ने नागमती से उसके दुःख का कारण पूछा। नागमती का संदेश ले कर वह सिंहल द्वीप जा कर एक पेड़ पर रहने लगा। एक दिन रतनसेन शिकार खेलता हुआ उस पेड़ के नीचे पहुँचा तो पक्षी ने उससे

नागमती का संदेश कहा। रतनसेन को चित्तौड़ की याद आई, उसका जी सिंहल से उचट गया, उसने गंधर्वसेन से विदा माँगी। गंधर्वसेन ने विदा करते समय अपार धन और द्रव्य दिया, जिसे पा कर रतनसेन को गर्व हुआ कि मैं यह धन ले कर घर पहुँचूँगा तो मेरे समान संसार में और कौन होगा। राजा समुद्र के किनारे पहुँचा तो समुद्र भिखारी रूप में आ खड़ा हुआ। समुद्र ने उसके धन के ४०वें भाग की भीख माँगी, पर राजा ने लोभ-वश कुछ न दिया। राजा समुद्र में आधा रास्ता भी नहीं आ पाया था कि तूफ़ान उठा और राजा के जहाज रास्ता भूल कर लंका की ओर बह चले। वहाँ विभीषण का राक्षस मछली मार रहा था। राजा ने उसे जहाजों को ठीक रास्ते पर लगा देने को कहा और बहुत सा इनाम देने का वायदा किया। राक्षस जहाज़ों को एक भँवर में ले गया। सब जहाज वहाँ चक्कर खाने लगे। हाथी घोड़े मनुष्य सब डूबने लगे। इतने में एक राजपक्षी आया और उस दुष्ट राक्षस को पंजे में दबा कर उड़ गया। सब जहाज टूट गये। राजा रानी जहाज के तख्तों पर बैठ कर विभिन्न दिशाओं में बह गये।

पदमावती मूर्च्छित हो गई। बहते बहते वह जहाँ किनारे पर पहुँची वहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों सहित खेल रही थी। लक्ष्मी ने देखा कि वह अभी मरी नहीं है। वह उसे अपने घर ले आई। उसके उपचार से पदमावती को होश आया। वह खाना पीना छोड़ कर रतनसेन के लिए विलाप करने लगी। लक्ष्मी ने उसे धीरज बँधाया और अपने पिता समुद्र से राजा को खोज लाने को कहा। राजा बहते बहते एक निर्जन टीले पर जा

लगा और पदमावती के लिए विलाप करने लगा। अन्त में वह कटार से अपना गला काटने को उद्यत हुआ। समुद्र ने तब माना कि उसका लोभ-जन्य पाप कट गया है और वह ब्राह्मण का रूप धर कर उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसने उसे आत्महत्या करने से रोका और कहा आँख मूँद कर मेरी लाठी पकड़ लो, मैं तुम्हें पदमावती के पास पहुँचा दूँगा। जब राजा समुद्र के साथ उस घाट पर पहुँचा तो लक्ष्मी पदमावती का रूप धर कर रास्ते में आ बैठी। राजा उसे देख कर दौड़ा, पर पास आने पर जब उसने देखा कि यह पदमावती नहीं है तो मुँह फेर लिया। लक्ष्मी फिर उसके सामने आ कर रोने लगी कि मैं तुम्हारी रानी पदमावती हूँ, तुमने मुझे समुद्र में ला कर छोड़ दिया। राजा ने कहा तुमने पदमावती का रूप धरा है तुम पदमावती नहीं हो। तब लक्ष्मी राजा को पदमावती के पास ले गई। रतनसेन और पदमावती एक दूसरे से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिन वे दोनों वहाँ पाहुने रहे; फिर उन्होंने समुद्र से विदा माँगी। लक्ष्मी ने पदमावती को गले लगा कर भेंटा और पान का बीड़ा दिया जिसमें उत्तम रत्न और हीरे भरे थे। समुद्र ने उन्हें अमृत, हंस, सोनहा पक्षी का वंशज, शार्दूल-शावक और सोना बनाने का पारस पत्थर ये पाँच रत्न विदाई में दिये। पथ-प्रदर्शक साथ में दे कर उन्हें विदा किया। पथ-प्रदर्शकों ने उन्हें निर्विघ्न समुद्र के पार जगन्नाथपुरी पहुँचा दिया। सेना सजा कर राजा चित्तौड़ पहुँचा और नागमती पदमावती दोनों रानियों के साथ सुख से रहने लगा। राजा के दो पुत्र हुए, नागमती से नागसेन और पदमावती से कमलसेन।

राजा रतनसेन के दरबार में राघवचेतन नाम का पंडित था। उसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजा ने पूछा दूज कब है? राघव ने कहा आज, और पंडितों ने कहा कल। इसपर विवाद हुआ। राघव ने कहा यदि मेरी बात असत्य हो तो मैं देश-निकाला पाऊँ और यक्षिणी के प्रभाव से उसी दिन दूज दिखा दी। दूसरे दिन फिर चन्द्रमा की कला दूज की ही दिखाई दी। तब पंडितों ने राजा से कहा कि कल राघव ने यक्षिणी के प्रभाव से दूज दिखाई थी। यदि कल दूज होती तो आज चन्द्रमा की कला कुछ अधिक दिखाई देती। राघव का भेद खुल गया। राजा ने उसे देश-निकाले का दंड दिया। यह बात जब पदमावती ने सुनी तो उसने सोचा कि ऐसे गुणी पंडित को निकाल देना अच्छा नहीं है। वह देश पर कोई विपत्ति ला सकता है। उसने दान दे कर राघव को संतुष्ट करना चाहा और सूर्यग्रहण का दान देने को बुला भेजा। राघवचेतन दान लेने पदमावती के महल के नीचे आ कर खड़ा हुआ। तब रानी ने अपने एक हाथ का बहुमूल्य कंकण उतार कर झरोखे में से नीचे फेंका। रानी का रूप देख कर राघव सुध-बुध खो कर गिर पड़ा। रानी तो झरोखा बंद करके चली गई, उसकी सहेलियों ने उपचार करके राघव को उठाया। होश आने पर राघव उठ कर दिल्ली की ओर चला।

दिल्ली पहुँच कर राघव ने बादशाह अलाउद्दीन से भेंट की। उसे पदमावती का कंकण दिखा कर उसके रूप का बखान किया। बादशाह ने उसका अच्छा आदर-सत्कार किया और सरजा नामक दूत को पत्र दे कर चित्तौड़ भेजा। राजा ने पत्र पढ़ा तो

उसमें लिखा था कि सिंहल की पदमावती को तुरन्त दिल्ली भेज दो। पत्र पढ़ कर राजा जल उठा। उसने दूत को लौटा दिया। बादशाह ने बड़ी भारी तैयारी के साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई की। आठ वर्ष वह गढ़ को घेरे रहा, पर गढ़ सर न हुआ। उधर दिल्ली से खबर आई कि हरेव लोग दिल्ली पर चढ़ आये हैं। बादशाह ने सोचा कि यदि मैं यहाँ अटका रहता हूँ तो दिल्ली भी मुझसे छिन जायगी। उसने फिर सरजा दूत को भेजा। सरजा ने जा कर राजा से कहा कि तुम्हारा गढ़ अब एक दो दिन में टूटने ही वाला है, बादशाह का पदमावती के लिए आग्रह नहीं है, तुम अपने राज्य का भोग करो और चंदेरी भी ले लो, समुद्र से तुम्हें जो पाँच अमूल्य रत्न मिले हैं, वह दे कर अधीनता मान लो। राजा ने पाँचों नग भेंट करके बादशाह की सेवा करना स्वीकार कर लिया। बादशाह ने कहला भेजा मैं कल गढ़ देखने आऊँगा।

बादशाह के लिए राजसी भोजन का प्रबन्ध किया गया। सरजा और राघवचेतन के साथ बादशाह आया। गढ़ के फाटक पर रतन-सेन ने उसका स्वागत किया। फिर उसने बादशाह को गढ़ दिखाया। गोरा बादल नामक सरदारों को बादशाह के व्यवहार में छल का अंदेशा हुआ, उन्होंने राजा को सचेत किया, पर राजा को उनकी बात न भाई। तब वे दोनों रूठ कर अपने घर चले गये। बादशाह की आव-भगत होती रही। बादशाह पदमावती के महलों की तरफ टहलने गया। वहाँ सुन्दरी स्त्रियों ने उसका स्वागत किया। बादशाह ने राघव से पूछा इनमें पदमावती कौन सी है तो राघव ने उत्तर दिया कि ये सब तो उसकी दासियाँ हैं। तब बादशाह वहीं बैठ कर राजा

के साथ शतरंज खेलने लगा। वहाँ उसने एक दर्पण भी इस मतलब से रख दिया कि यदि पदमावती झरोखे में से झाँके तो वह दर्पण में दिखाई दे जायगी। इस बीच कुतूहलवश पदमावती झरोखे में आई तो दर्पण में उसकी परछाई देख कर बादशाह बेसुध हो गया। राघवचेतन ने कहा बादशाह को सुपारी लग गई है। बादशाह को ले जा कर उसकी सेज पर सुला दिया गया। सचेत होने पर राघव ने उससे पूछा तो उसने पदमावती के नख-शिख का वर्णन कर कहा कि मैंने ऐसी परछाई दर्पण में देखी थी। राघव ने कहा कि तब तुमने सचमुच पदमावती की परछाईं देखी है। वही पदमावती है। उसे प्राप्त करने को कोई उपाय करो। बादशाह विदा हुआ। राजा उसे पहुँचाने साथ चला। पहले फाटक पर बादशाह ने राजा को खिलअत पहनाई, सौ घोड़े और तेरह हाथी दिये। इस प्रकार प्रत्येक फाटक पार होने पर बादशाह राजा को कुछ न कुछ देता गया। छठे फाटक पर मांडवगढ़ और सातवें पर चन्देरी दी। सातवाँ फाटक लाँघने पर वह राजा को कैद करके ले गया। दिल्ली ले जा कर राजा को हथकड़ी बेड़ी डाल दी गई और बहुत कष्ट दिये गये। राजा से कहा गया कि पदमावती दे कर छुटकारा पा सकते हो, पर वह न माना। तब उसे अंधकूप में डाल दिया गया।

इधर चित्तौड़गढ़ में हाहाकार मच गया। नागमती और पदमावती विलाप करने लगीं। कुंभलनेर का राव देवपाल राजा का शत्रु था और उससे बहुत जलता था। उसने अब पदमावती को भगा लाने की सोची। कुमुदिनी नाम की बूढ़ी दूती को उसने इस काम के लिए नियुक्त किया। पुरस्कार के लालच से कुमुदिनी ने इस कठिन

काम का बीड़ा उठाया और चित्तौड़ पहुँची। पदमावती की बचपन की धाय कह कर उसने अपना परिचय दिया। पदमावती उससे गले मिल कर बहुत रोई। धीरे धीरे कुमुदिनी ने पदमावती को समझाना शुरू किया कि राजा रतनसेन तो गया, क्यों उसके लिए रो रो कर अपना यौवन गँवा रही हो। कुँभलनेर के राव देवपाल के पास चलो। तब पदमावती ने उसे कड़ा दंड दे कर निकलवा दिया।

पदमावती राजा को छुड़ाने के लिए दान पुण्य करने लगी। जो कोई पथिक या योगी संन्यासी आता उसे वह अन्न वस्त्र से संतुष्ट कर पूछती कि क्या राजा रतनसेन का कुछ हाल जानते हो। यह खबर बादशाह तक पहुँची तो उसने युवती दूती को भेजा। वह जोगिन बन कर चित्तौड़ आई और राजमहल में पहुँची। पदमावती ने उसे बुला कर पूछा कहाँ से आ रही हो, और इस अल्पायु में तुम जोगिन क्यों हो गई हो। उसने कहा मेरा पति परदेश चला गया, मैं उसे खोजती फिरती हूँ। मैं प्रयाग, बनारस, जगन्नाथ, द्वारिका, केदारनाथ, अयोध्या, गोमुख, हरद्वार, नगरकोट, बालनाथ, मथुरा, सूर्यकुण्ड, बदरीनाथ आदि चौंसठ तीर्थ देख आई, कहीं मेरा पति न मिला। अंत में मैं दिल्ली गई। वहाँ मैंने सुलतान के बंदीखाने में रतनसेन को देखा। उसे बहुत यातनाएँ दी जा रही हैं। पदमावती उस जोगिन के साथ दिल्ली जाने को तैयार हो गई, पर सखियों ने रोका और कहा कि गोरा बादल के पास जा कर उनका सहारा लो।

तब रानी गोरा बादल के घर गई। पदमावती का दुःख देख कर गोरा बादल पसीज गये। उन्होंने राजा को छुड़ा लाने की प्रतिज्ञा

की ओर कहा कि बरसात बीतते ही हम राजा को छुड़ा लाएँगे, तब तक धीरज धरो। गोरा और बादल ने सलाह की कि जिस प्रकार छल से बादशाह ने राजा को कैद किया है, उसी प्रकार युक्ति से हम उसे छुड़ाएँगे।

गोरा बादल ने सोलह सौ पालकियाँ सजाईं। प्रत्येक में एक सशस्त्र सैनिक को बैठाया। सबसे कीमती पालकी में एक लोहार बैठा। पालकियों पर परदे पड़े हुए थे। गोरा बादल इन सोलह सौ पालकियों के साथ तीस हजार घोड़ियाँ ले कर दिल्ली चले और प्रसिद्ध कर दिया कि पदमावती ओल हो कर राजा को छुड़ाने जा रही है, और उसके साथ उसकी सोलह सौ सखियाँ हैं। दिल्ली पहुँच कर गोरा आगे बढ़ कर बंदीगृह में पहुँचा और बन्दीगृह के अधिकारी को दस लाख रुपया भेंट दे कर उसके पाँव पड़ कर बोला कि बादशाह से जा कर कहो कि रानी पदमावती अपनी सखियों सहित आई है और विनती करती है कि चित्तौड़ के भंडार और गढ़ की कुंजी मेरे पास है, यदि एक घड़ी राजा से मिलने की आज्ञा पाउँ तो राजा को कुंजी सौंप कर महल में आऊँ। तब बादशाह ने रखवारों को भेजा, पर दस लाख की घूँस देख कर उन्होंने पालकियों को देखा तक नहीं। 'पदमावती' को एक घड़ी राजा से मिलने की आज्ञा मिल गई, उसकी पालकी राजा के पास पहुँचाई गई। उसमें से निकल कर लुहार ने राजा की बेड़ियाँ काट दीं। राजा शस्त्र ले कर घोड़े पर सवार हो गया। अन्य पालकियों में से भी सशस्त्र सैनिक निकल आये। गोरा बादल ने तलवारें खींच लीं और राजा को ले कर चित्तौड़ की ओर चले। खबर पा कर बादशाह ने भारी

फौज से पीछा किया। तब हजार सैनिकों को ले कर गोरा शाही सेना को रोकने के लिए डट गया और बाकी सैनिकों के साथ बादल राजा को चित्तौड़ ले गया। गोरा ने बहुत देर शाही सेना को अटकाये रक्खा। अंत में वह अपने हजार साथियों सहित खेत रहा, पर इस बीच बादल राजा को ले कर चित्तौड़ के पास पहुँच चुका था।

चित्तौड़ पहुँच कर राजा ने पदमावती से देवपाल की करतूत सुनी तो उसे बहुत क्रोध आया। उसने कहा जब तक शाही सेना चित्तौड़ तक आयेगी मैं कुंभलनेर जा कर देवपाल को बाँध लाऊँगा। दिन निकलते ही वह सेना ले कर कुंभलनेर जा पहुँचा। देवपाल ने उसे द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा जो राजा ने मान लिया। देवपाल ने राजा को विष बुझी साँग मारी जो नाभि तक जा कर नाभि को भेद कर पीठ की ओर जा निकली। देवपाल वार करके लौटा तो राजा ने प्रहार किया, जिससे देवपाल की गरदन कट गई, सिर धड़ से अलग हो गया। राजा ने वैरी का सिर काट कर बाँध लिया और चित्तौड़ को लौटा, पर रास्ते में चित्तौड़ गढ़ की रक्षा का भार बादल को सौंप कर मर गया और उसका शव चित्तौड़ लाया गया। राजा के शव के साथ नागमती और पदमावती दोनों रानियाँ सती हो गईं। इधर बादशाह अलाउद्दीन ने आ कर चित्तौड़गढ़ छेंक लिया। भयंकर युद्ध हुआ। बादल गढ़ की रक्षा करते हुए फाटक पर मारा गया और चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

कथा के सूत्र

सिंहल की राजकुमारी और चित्तौड़ के राजा रतनसेन की रानी पदमावती पदमावत की नायिका है और चित्तौड़ का राजा रतनसेन नायक। दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन और कुंभलनेर का राव देवपाल दोनों पदमावती को पाने का प्रयत्न करते हैं। अलाउद्दीन रतनसेन से युद्ध करता और उसे कैद कर लेता है। देवपाल के हाथों रतनसेन की मृत्यु होती है। तब पदमावत में प्रतिनायक कौन है? अलाउद्दीन या देवपाल? या दोनों? वास्तव में दोनों ही प्रतिनायक हैं। जैसा कि हम देखेंगे, जायसी ने बड़ी चतुराई से नायक रतनसेन और नायिका पदमावती में दो दो ऐतिहासिक व्यक्तियों का समावेश किया है, इसलिए प्रतिनायक भी दो हैं।

इतिहास-प्रसिद्ध खिलजी सम्राट् अलाउद्दीन १२९५ ई० में अपने बूढ़े चाचा जलालुद्दीन को मार कर दिल्ली का सुलतान बना। "१२९७ ई० में उसने अपने भाई उलूगखाँ और सेनापति नसरतखाँ को गुजरात पर चढ़ाई करने भेजा। मालवे से उन्होंने मेवाड़ के रास्ते बढ़ना चाहा, किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हें मार भगाया। तब मेवाड़ के दक्खिन घूम कर वे आसावल (आशापल्ली) जा पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ अब अहमदाबाद बसा है। वहाँ से उन्होंने अनहिलपाटन पर चढ़ाई कर उसे ले लिया। राजा कर्ण, जिसे गुजरात में करण घेलो (पगला कर्ण) कहते हैं, भाग कर देवगिरि चला गया।"[1]

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार—इतिहास-प्रवेश, पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ ३८६।

"मालवा और गुजरात के दिल्ली साम्राज्य में चले जाने से राजस्थान के राज्य तीन तरफ से घिर गये। अलाउद्दीन ने एक तरफ इन राज्यों को जीतना तथा दूसरी तरफ ताप्ती के आगे दक्खिन की ओर बढ़ना अपना उद्देश्य बना लिया। राजस्थान में रणथम्भोर का राज्य उसका सबसे पहला पड़ोसी था। वहाँ के राजा हम्मीर ने इसी अवसर पर एक भागे हुए मंगोल सरदार को शरण दी, और अलाउद्दीन के माँगने पर उसे लौटाने से इनकार किया। अलाउद्दीन ने तब उसपर चढ़ाई की। एक बरस के कड़े युद्ध के बाद हम्मीर के मारे जाने पर गढ़ सुलतान के हाथ लगा। सेनापति नसरतखाँ भी इस युद्ध में काम आया। (१३०१ ई०) रणथम्भोर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मेवाड़ से जा लगी। समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बैठे अभी कुछ महीने ही बीते थे कि अलाउद्दीन ने चितौड़ को घेर लिया (१३०२ ई०)। ६ महीने घिरे रहने के बाद रसद और पानी चुक गये तो गढ़ अलाउद्दीन के हाथ आया। रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत सी स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का राज्य अपने बेटे खिजरखाँ को दे कर उसका नाम खिजराबाद रक्खा।"[१]

दिल्ली-सम्राट् अलाउद्दीन का समकालीन चित्तौड़ का राजा रत्नसिंह (राजा समरसिंह का पुत्र) था। वह पदमावत का पहला नायक है और उसकी रानी पद्मिनी पहली नायिका। रत्नसिंह ने अलाउद्दीन का सामना करते हुए वीरगति पाई और उसकी रानी

---

१. वहीं, पृष्ठ ३८७।

पद्मिनी ने जौहर किया। परन्तु जायसी ने रतनसेन को अलाउद्दीन से नहीं मरवाया न पदमावती को जौहर में सम्मिलित किया। जायसी का रतनसेन देवपाल से द्वन्द्व करता हुआ मारा गया और पदमावती उसके साथ सती हुई।

जायसी का समकालीन चित्तौड़ का राजा राणा साँगा का पुत्र राणा रत्नसिंह था।

"कुंवर भोजराज[1] की मृत्यु के बाद रत्नसिंह युवराज हुआ, जिसके छोटे भाई उदयसिंह और विक्रमादित्य थे। उनको जागीर मिलने के सम्बन्ध में मुहणोत नैणसी ने लिखा है—'राणा सांगा का एक विवाह हाड़ा राव नर्बद की पुत्री करमेती (कर्मवती) से भी हुआ था, जिससे विक्रमादित्य और उदयसिंह उत्पन्न हुए। राणा का इस राणी पर विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने राणा से निवेदन किया कि आप चिरंजीवी हों, आपका युवराज रत्नसिंह है और विक्रमादित्य तथा उदयसिंह बालक हैं, इसलिए आपके सामने ही इनकी जागीर नियत हो जाय तो अच्छा है। राणा ने पूछा तुम क्या चाहती हो? इसके उत्तर में उसने कहा कि रत्नसिंह की सम्मति ले कर रणथंभोर जैसी कोई जागीर इनको दे दी जाय और सूरजमल जैसे राजपूत को इनका संरक्षक बनाया जाय। राणा ने इसे स्वीकार कर दूसरे दिन रत्नसिंह से कहा कि विक्रमादित्य और उदयसिंह तुम्हारे छोटे भाई हैं, जिनको कोई ठिकाना देना चाहिए। महाशक्तिशाली सांगा से रत्नसिंह ने यही कहा कि आपकी जो इच्छा हो वही जागीर दीजिये। इसपर राणा ने उनको रणथंभोर का इलाका जागीर में देने की बात

१. राणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र, मीराबाई का पति।

कही, तो रत्नसिंह ने कहा—'बहुत अच्छा'। फिर जब विक्रमादित्य और उदयसिंह को रणथंभोर का मुजरा करने की आज्ञा हुई, तो उन्होंने मुजरा किया। उस समय बूँदी का हाड़ा सूरजमल भी दरबार में हाजिर था। राणा ने उसको कहा कि हम इन्हें रणथंभोर दे कर तुम्हारी संरक्षा में रखते हैं। सूरजमल ने निवेदन किया कि मुझे इस बात से क्या मतलब, मैं तो चित्तौड़ के स्वामी का सेवक हूँ। तब राणा ने कहा—'ये दोनों बालक तुम्हारे भानजे हैं, बूँदी से रणथम्भोर निकट भी है और हमें तुम्हारे पर विश्वास है, इसीलिए इनका हाथ तुम्हें पकड़वाते हैं।' सूरजमल ने जवाब दिया कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु आपके पीछे रत्नसिंह मुझे मारने को तैयार होंगे, इसलिए आप के कहने से मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता, यदि रत्नसिंह ऐसा कह दें, तो बात दूसरी है। राणा ने रत्नसिंह की ओर देखा, तो उसने सूरजमल से कहा कि जैसा महाराणा फरमाते हैं वैसा करो, ये मेरे भाई हैं, और आप भी हमारे संबंधी हैं, मैं इसमें बुरा नहीं मानता। तब सूरजमल ने राणा की यह आज्ञा मान ली और साथ जा कर रणथम्भोर में विक्रमादित्य और उदयसिंह का अधिकार करा दिया।'

"विक्रमादित्य और उदयसिंह को महाराणा सांगा ने यह बड़ी जागीर रत्नसिंह की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र महाराणी करमेती के विशेष आग्रह से दी, परन्तु अन्त में इसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिए घातक ही हुआ।"[१]

---

१. गौरीशंकर हीराचंद ओझा—राजपूताने का इतिहास, दूसरा खण्ड, पृष्ठ ६७२-७३।

"महाराणा सांगा की मृत्यु के समाचार पहुँचने पर उसका कुँवर रत्नसिंह वि० सं० १५८४ माघ सुदी १५ (ई० स० १५२८ ता० ५ फरवरी) के ग्रासपास चित्तौड़ के राज्य का स्वामी हुआ।

"महाराणा सांगा के देहान्त के समय महाराणी हाड़ी कर्मवती अपने दोनों पुत्रों के साथ रणथंभोर में थी। अपने छोटे भाइयों के हाथ में रणथंभोर की पचास-साठ लाख की जागीर का होना रत्नसिंह को बहुत अखरता था, क्योंकि वह उसकी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। कर्मवती और अपने दोनों भाइयों को चित्तौड़ बुलाने के लिए उसने पूरविये पूरणमल को पत्र दे कर रणथंभोर भेजा और कर्मवती से कहलाया कि आप सबको यहाँ आ जाना चाहिए। उत्तर में उसने कहलाया कि स्वर्गीय महाराणा इन दोनों भाइयों को रणथंभोर की जागीर दे कर मेरे भाई सूरजमल को इनका संरक्षक बना गये हैं, इसलिए यह बात उसी के अधीन है। जब महाराणा का संदेश सूरजमल को सुनाया गया, तो उसने उस बात को टालने के लिए कहा कि मैं चित्तौड़ आऊँगा और इस विषय में महाराणा से स्वयं बातचीत कर लूँगा। महाराणा सांगा ने जो दो बहुमूल्य वस्तु—सोने की कमरपेटी और रत्नजटित मुकुट—सुलतान महमूद से ली थीं, वे विक्रमादित्य के पास होने से उनको भेजने के लिए भी रत्नसिंह ने कहलाया था; परन्तु उसने भेजने से इनकार कर दिया। पूरणमल ने यह सारा हाल चित्तौड़ जा कर महाराणा से कहा। यह उत्तर सुन कर महाराणा बहुत अप्रसन्न हुआ।"[1]

---

१. वहीं, पृष्ठ ७००–७०१।

"उधर हाड़ी कर्मवती विक्रमादित्य को मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी, जिसके लिए उसने सूरजमल से बातचीत कर बाबर को अपना सहायक बनाने का प्रपंच रचा। फिर अशोक नामक सरदार के द्वारा बादशाह से इस विषय में बातचीत होने लगी। बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है—'हि० स० ९३५ ता० १४ मुहर्रम (वि० सं० १५८५ आश्विन सुदी १५ = ई० स० १५२८ ता० २८ सितंबर) को राणा सांगा के दूसरे पुत्र विक्रमादित्य के जो अपनी माता पद्मावती [? कर्मवती] के साथ रणथंभोर में रहता था, कुछ आदमी मेरे पास आये। मेरे ग्वालियर को रवाना होने से पहले भी विक्रमादित्य के अत्यन्त विश्वासपात्र राजपूत अशोक के कुछ आदमी मेरे पास ७० लाख की जागीर लेने की शर्त पर राणा के अधीनता स्वीकार करने के समाचार ले कर आये थे। उस समय यह बात तय हो गई थी कि उतनी आमद के परगने उसे दिये जावेंगे और उनको नियत दिन ग्वालियर आने को कहा गया। वे नियत समय से कुछ दिन पीछे वहाँ आये। यह अशोक विक्रमादित्य की माता का रिश्तेदार था; उसने विक्रमाजीत को मेरी सेवा के लिए राजी कर लिया था। सुलतान महमूद से लिया हुआ रत्नजटित मुकुट और सोने की कमरपेटी भी, जो विक्रमाजीत के पास थी, उसने मुझे देना स्वीकार किया और रणथंभोर दे कर मुझसे बयाना लेने की बातचीत की, परन्तु मैंने बयाने की बात को टाल कर शम्साबाद देने को कहा; फिर उनको खिलअत दी और ९ दिन के बाद बयाने में मिलने को कह कर विदा किया।' फिर आगे वह लिखता है—'हि० सं० ९३५ ता० ५ सफर (वि० सं० १५८५ कार्तिक

सुदि ६ = ई० स० १५२८ ता० १६ अक्टूबर) को देवा का पुत्र·हामूसी (?) विक्रमाजीत के पहले के राजपूतों के साथ इसलिए भेजा गया कि वह रणथंभोर सौंपने और विक्रमाजीत के सेवा स्वीकार करने की शर्तें हिन्दुओं की रीति के अनुसार तय करे। मैंने यह भी कहा कि यदि विक्रमाजीत अपनी शर्तों पर दृढ़ रहा, तो उसके पिता की जगह उसे चित्तौड़ की गद्दी पर बिठा दूँगा।'

"ये सब बातें हुईं, परन्तु सूरजमल रणथंभोर जैसा किला बाबर को दिलाना नहीं चाहता था, उसने तो केवल रत्नसिंह को डराने के लिए यह प्रपंच रचा था ; इसी से रणथंभोर का किला बादशाह को सौंपा न गया, परन्तु इससे रत्नसिंह और सूरजमल में विरोध और भी बढ़ गया।" [1]

"हम ऊपर बतला चुके हैं कि महाराणा रत्नसिंह और बूंदी के हाड़ा सूरजमल के बीच अनबन बहुत बढ़ गई थी, इसलिए महाराणा ने उसको छल से मारने को ठान ली। इस विषय में मुहणोत नेणसी लिखता है—'राणा रत्नसिंह शिकार खेलता हुआ बूँदी के निकट पहुँचा और सूरजमल को भी बुलाया। वह जान गया था कि राजा मुझे मरवाने के लिए ही बुला रहा है और इस पसोपेश में रहा कि वहाँ जाऊँ या न जाऊँ। एक दिन उसने अपनी माता खेतू से, जो राठोड़ वंश की थी, पूछा कि राणा के दूत मुझे बुलाने को आये हैं, राणा मुझसे अप्रसन्न है और वह मुझे मारेगा, इसलिए तुम्हारी आज्ञा हो तो हाथ दिखाऊँ। इस पर माता ने उत्तर दिया—'बेटा ऐसा क्यों करें ? हम तो सदा से

१. वहीं, पृष्ठ ७०१–७०२।

दीवाण (राणा) के सेवक रहे हैं, हमने कोई अपराध तो किया नहीं, जो राणा तुम्हारा वध करे। शीघ्र उसके पास जाओ और उसकी अच्छी तरह सेवा करो।' माता की यह आज्ञा सुन कर वह वहाँ से चला और बूँदी तथा चित्तौड़ की सीमा पर के गोकर्ण-तीर्थ वाले गाँव में उससे आ मिला। राणा के मन में बुराई थी, तो भी उसने ऊपरी दिल से आदर किया और 'सूरभाई' कह कर उसका सम्बोधन किया। एक दिन उसने सूरजमल से कहा कि हमने एक नया हाथी खरीदा है, जिसपर आज सवारी कर तुम्हें दिखावेंगे। राणा हाथी पर सवार हुआ और सूरजमल घोड़े पर सवार हो उसके आगे आगे चलने लगा। एक तंग स्थान पर राणा ने उसपर हाथी पेला, परन्तु घोड़े को एड़ लगा कर वह आगे निकल गया और उसपर क्रुद्ध हुआ। राणा ने मीठी मीठी बातें बना कर कहा कि इसमें हमारा कोई दोष नहीं है, हाथी अपने आप झपट पड़ा था।

" 'फिर एक दिन पीछे उसने कहा कि आज सुअरों की शिकार खेलेंगे। राव ने कहा, बहुत अच्छा। राणा ने अपनी पँवार वंश की राणी से कहा कि कल हम एकल सूअर को मारेंगे और तुम्हें भी तमाशा दिखावेंगे। दूसरे ही दिन राणी गोकर्णतीर्थ पर स्नान करने गई। थोड़ी देर पहले सूरजमल भी वहाँ स्नानार्थ गया हुआ था। राणी के पहुँचते ही वह वहाँ से निकल गया। राणी की दृष्टि उसपर पड़ी, तो उसने एक दासी से पूछा, यह कौन है? उसने उत्तर दिया कि वह बूंदी का स्वामी हाड़ा सूरजमल है जिस पर दीवाण (राणा) अप्रसन्न हैं। राणी तुरन्त ताड़ गई कि जिस सूअर को राणा मारना चाहते हैं, वह यही है। रात को

उसने राणा से फिर सूअर की बात छेड़ी और निवेदन किया कि उस एकल को मैंने भी देखा है; दीवाण उसे न छेड़ें, उसके छेड़ने में कुशल नहीं है।

" 'दूसरे ही दिन सबेरे सूरजमल को साथ ले राणा शिकार को गया। शिकार के मौके पर केवल राणा, पूरणमल पूरबिया, सूरजमल और उसका एक खवास (नौकर) थे। राणा ने पूरणमल को सूरजमल पर वार करने का इशारा किया, परन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी; तब राणा ने सवार हो कर उसपर तलवार का वार किया, जिससे उसकी खोपड़ी का कुछ हिस्सा कट गया। इस पर पूरणमल ने भी एक वार किया, जो सूरजमल की जाँघ पर लगा; तब तो लपक कर सूरजमल ने पूरणमल पर प्रहार किया, जिससे वह चिल्लाने लगा। उसे बचाने के लिए राणा वहाँ आया और सूरजमल पर तलवार चलाई। इस समय सूरजमल ने घोड़े की लगाम पकड़ कर झुके हुए राणा की गर्दन के नीचे ऐसा कटार मारा कि वह उसे चीरता हुआ नाभि तक चला गया। राणा ने घोड़े पर से गिरते-गिरते पानी माँगा तो सूरजमल ने कहा कि काल ने तुझे खा लिया है, अब तू जल नहीं पी सकता। वहीं राणा और सूरजमल, दोनों के प्राणपक्षी उड़ गये। पाटण में राणा का दाह-संस्कार हुआ और राणी पँवार उसके साथ सती हुई।'

"यह घटना वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में हुई।"[1]

मेवाड़ के राणा रत्नसिंह और बूँदी के राव सूरजमल का द्वन्द्व

---

१. वहीं, पृष्ठ ७०४-५

और मृत्यु जायसी के जीवनकाल की घटना है। इस मर्मवेधी घटना ने समकालिकों का ध्यान विशेष रूप से खींचा होगा। इसके लगभग दस वर्ष बाद—शेरशाह के प्रशासन में—जायसी ने पदमावत लिखी। पदमावत का दूसरा नायक यही राणा रत्नसिंह, दूसरी नायिका उसकी रानी पँवार और देवपाल सूरजमल है। समकालिक व्यक्तियों का नाम काव्य में देना वांछनीय नहीं समझा जाता, इसलिए जायसी ने सूरजमल को देवपाल बना दिया। कालिदास ने भी समुद्र-गुप्त और चन्द्र-गुप्त की विजय-यात्राओं का वृत्तान्त रघु के दिग्विजय द्वारा कहा है।

द्वन्द्व के उपर्युक्त वर्णन को जायसी के रतनसेन देवपाल युद्ध खंड (पृष्ठ ८३-८४) से मिलाइये। कैसा ठीक रत्नसिंह-सूरजमल-द्वन्द्व का वर्णन है!

इस प्रकार जायसी ने अपने नायक रतनसेन में दो रत्नसिंहों और नायिका पदमावती में पहले रत्नसिंह की रानी पद्मिनी और दूसरे रत्नसिंह की रानी पँवार का समावेश किया है। यह निर्विवाद सत्य है कि अलाउद्दीन के समकालीन राजा रत्नसिंह की रानी पद्मिनी ने जौहर किया था। परन्तु जायसी की नायिका पदमावती जौहर में सम्मिलित नहीं होती, वह अपने पति के मरने पर उसके साथ सती होती है। दूसरे रत्नसिंह की रानी पँवार भी अपने पति के मरने पर सती हुई थी।

जायसी के अलाउद्दीन के युद्ध के वर्णन सब कल्पित हैं, यहाँ तक कि जायसी ने अलाउद्दीन द्वारा तोपों के प्रयोग और 'हब्सी रूमी और फिरंगी' (पुर्तगाली) तोपचियों का भी उल्लेख किया है। (पृष्ठ ६७)

अलाउद्दीन के समय न तोपें थीं, न तोपें चलाने वाले 'हबसी रूमी और फिरंगी'। तोपें पहलेपहल सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों और बाबर के साथ भारत में आईं।

परन्तु दूसरी तरफ इस रत्नसेन-देवपाल-द्वन्द्व का वर्णन इतिहास से पूरा मेल खाता है, कारण कि यह समकालिक घटना थी।

एक ही नाम के दो व्यक्तियों का काव्य के एक ही पात्र में समावेश जायसी से पहले भी होता रहा है। इसका उदाहरण मुद्राराक्षस नाटक का प्रसिद्ध भरत-वाक्य है—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।

इसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है—

प्राक् (पूर्व काल में) प्रलयपरिगता (प्रलय में निमग्न) भूतधात्री (पृथिवी ने) अनुरूपां (योग्य) अतनुबलां (अत्यधिक बलशाली) वाराहीं तनुं (वाराह शरीर को) आस्थितस्य (धारण किये हुए) यस्य आत्मयोनेः (जिस विष्णु भगवान के) दन्तकोटिं (दाँत की नोक का) और अधुना (अब) म्लेच्छैः उद्वेज्यमाना (म्लेच्छों से आक्रान्त होने पर) यस्य राजमूर्तेः (जिस राजमूर्तिधर की) पीवरं भुजयुगं (दृढ भुजाओं का) शिश्रिये (आश्रय लिया है) श्रीमद्बन्धुभृत्युः (लक्ष्मीयुक्त बन्धुओं और भृत्यों वाला) सः पार्थिवः चन्द्रगुप्तः (वह राजा चन्द्रगुप्त) चिरं (बहुत दिनों तक) महीम् अवतु (पृथ्वी की रक्षा करे)।

इस समय रंगमंच पर तीन व्यक्ति उपस्थित हैं—चाणक्य, राक्षस और राजा चन्द्रगुप्त मौर्य। प्रकट में राक्षस ने रंगमंच पर उपस्थित राजा चन्द्रगुप्त मौर्य 'चिरं महीम् अवतु' यह प्रार्थना की है। परन्तु इस श्लोक में यह भी कहा गया है कि वह राजा चन्द्रगुप्त विष्णु का अवतार है, उसने पहले वाराह अवतार में अपनी दन्तकोटि से पृथ्वी का उद्धार किया था और अब अपनी बलशाली भुजाओं से विदेशियों से भारतभूमि का उद्धार किया है। गुप्त राजा चन्द्र ने अपने को परम वैष्णव और विष्णु का अवतार भले ही कहा हो, चन्द्रगुप्त मौर्य को किसी ने कभी विष्णु का अवतार नहीं कहा। साथ ही 'वाराहीं तनुमास्थितस्य यस्य दन्तकोटिं शिश्रिये', यह वाक्य 'भिलसा के पास उदयगिरि में चन्द्रगुप्त के बनवाये हुए गुहा-मन्दिरों के बाहर पृथिवी का उद्धार करते हुए वराह की जो विशाल मूर्ति बनी है'[1] उसकी ओर इंगित करता है। उसमें चन्द्रगुप्त के धड़ पर वराह का सिर है और उसकी 'दन्तकोटि पर लटकती स्त्री मूर्ति पृथिवी या ध्रुवस्वामिनी'[1] है। उस वराह मूर्ति में 'ध्रुवस्वामिनी के उद्धारक चन्द्रगुप्त के तेज और वीर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।'[1]

'चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' इस वाक्य द्वारा महाकवि विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त मौर्य के व्याज से अपने समकालिक और आश्रयदाता राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के लिए प्रार्थना की है। जायसी ने भी अलाउद्दीन के समकालिक रत्नसिंह (रतनसेन) की कथा में अपने समकालिक रत्नसिंह (रतनसेन) का समावेश बड़ी

---

१. इतिहास-प्रवेश, पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ २१६।

चतुराई से किया है।

यों पदमावत के मुख्य कथानक का आधार दो ऐतिहासिक घटनायें हैं (१) अलाउद्दीन द्वारा १३०२ ई० में चित्तौड़ गढ़ घेरा जाना, चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार, गोरा बादल का बलिदान और वहाँ की स्त्रियों का जौहर करना, (२) सन् १५३१ ई० मेवाड़ के राणा रत्नसिंह और बूँदी के राव सूरजमल का द्वन्द्व और उसमें दोनों का मारा जाना और राणा रत्नसिंह की रानी पँवार का सती होना। यद्यपि पदमावत का कथानक खूब सुगठित है, तो भी उसमें इन दो कथानकों का मिश्रण स्पष्ट है।

इन दो कथानकों के अतिरिक्त जायसी ने अपने कथानक के लिए अपने निकट अतीत और समकालीन इतिहास की कुछ अन्य घटनाओं तथा अनुश्रुति और प्राचीन काव्यों के कथानकों का भी उपयोग किया है। इसके स्पष्टीकरण के लिए इतिहास के कुछ वृत्तान्त उद्धृत किये जाते हैं।

"जिनपुत्र सूरि ने अपने तीर्थकल्प में उलगखाँ की गुजरात विजय का वर्णन करते हुए लिखा है—'...विक्रम संवत् १३५६ (ई० स० १२९९) में सुलतान अल्लावदीण (अल्लाउद्दीन खिलजो) का सबसे छोटा भाई उलूखान (उलगखाँ) [कर्णदेव के] मंत्री माधव की प्रेरणा से, ढिल्ली (दिल्ली) नगर से गुजरात को चला। चित्रकूट (चित्रकूट—चित्तौड़) के स्वामी समरसिंह ने उसे दंड दे कर मेवाड़ देश की रक्षा कर ली। फ़िर हंमीर (अमीर = सुलतान) का युवराज वग्गड़ देश (वागड़) और मोड़ासा आदि नगरों को नष्ट करता हुआ आसावल्ली में पहुँचा। राजा कर्णदेव

(गुजरात का राजा करणघेला) भाग गया।' "[१]

जायसी ने अपने पात्र राघवचेतन की कल्पना गुजरात के मंत्री माधव के चरित से की है।

"अलाउद्दीन चित्तौड़ को मुश्किल से ले पाया था कि दिल्ली पर मंगोलों की नई चढ़ाई की खबर आई। तरगी नामक मंगोल सरदार ने बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घेर लिया। अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया।"[२]

जायसी ने अलाउद्दीन की चित्तौड़ चढ़ाई के अवसर पर दिल्ली पर हरेवों की चढ़ाई की बात जो लिखी है, उसमें स्पष्ट तरगी के मंगोलों की परछाई है। जायसी का इस प्रसंग का वर्णन इतना सच्चा और दर्द-भरा है कि वे अपने अनुभव की या निकट अतीत की बात कहते प्रतीत होते हैं।

बाबर और विक्रमाजीत की शर्तों की परछाईं जायसी के बादशाह और राजा की सन्धि की शर्तों में देखी जा सकती है। सुलतान महमूद से लिया हुआ रत्नजटित मुकुट और कमरपेटी समुद्र से मिले पाँच रत्न हैं, शम्साबाद चंदेरी है, चित्तौड़ की गद्दी और अधीनता मानना दोनों में समान हैं।

वाल्मीकि रामायण में रावण राम की पत्नी अनन्यसुन्दरी सीता के रूप का वर्णन अपनी बहन से सुन कर उसपर मुग्ध हो जाता है और उसे पाने के लिए घर से निकलता है। वह जानता है कि सम्मुख युद्ध में वह राम का मुकाबला नहीं कर सकता। सीता वीर्य-

१. ओझा—राजपूताने का इतिहास, दूसरा खण्ड, पृष्ठ ४७६-७७।

२. इतिहास-प्रवेश, पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ ३८७।

शुल्का थी[1]। राम ने दृष्टवीर्य[2] हो कर ही उसे पाया था। जो कार्य रावण बल से नहीं कर सकता उसके लिए छल का आश्रय लेता है। राम-लक्ष्मण को छल से कुटी से दूर करके अकेली सीता को बल से उठा ले जाता है।

राजा रावण से अपनी पत्नी वापिस लेने के लिए अपेक्षित सैन्य बल वनवासी राम के पास नहीं है। वह राजा सुग्रीव से सहायता माँगता है। उससे सैन्यबल पा कर अपनी पत्नी का उद्धार करता है।

महाभारत में वन में अपनी कुटी में अकेली द्रौपदी को देख कर सिन्धुराज जयद्रथ उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है, उसकी तुलना में अपनी स्त्रियों को 'यथा शाखामृगस्त्रियः' मानता है और उसे अपने साथ ले चलने के लिए मनाता है। द्रौपदी भी वीर्यशुल्का थी और अर्जुन भी मत्स्यवेध द्वारा दृष्टवीर्य हो चुका था। मत्स्यवेध को अर्जुन के वीर्य का पर्याप्त प्रमाण न मान जब स्वयंवर में उपस्थित राजाओं ने मिल कर उससे द्रौपदी को छीनना चाहा तब पांडव उन समस्त राजाओं को पराजित कर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर चुके थे। जयद्रथ द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित रहा होगा। न रहा होगा तो भी वह उस घटना को अच्छी तरह जानता होगा, वह पांडवों का निकट संबंधी था, राजा धृतराष्ट्र का दामाद था। दृष्टवीर्य पांडवों से बलपूर्वक द्रौपदी को छीन लेने की शक्ति जयद्रथ में न थी, इसलिए वह पांडवों के वापिस आने से पहले ही बलपूर्वक द्रौपदी को ले

---

१. वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा। वा० रा० १,६६,१५।

२. भगवन्दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः। वहीं १,६७,२१।

भागता है। समाचार पा पांडव उसका पीछा करते हैं। वे स्वयं शक्तिशाली थे, उन्हें किसी की सहायता की अपेक्षा न थी। जयद्रथ को पकड़ कर उससे वे अपनी पत्नी छीन लेते हैं।

यों विवाहित पर-स्त्री का हरण आदि काव्य और महाभारत में मिलता है। संभव है जायसी ने वहीं से कथा का यह सूत्र लिया हो। भेद इतना ही है कि रामायण और महाभारत में पर-स्त्री-हरण करने वाले उस स्त्री के पति को युद्ध में जीत कर उससे उसकी पत्नी छीन न सकते थे इसलिए वे उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी का हरण करते हैं। पदमावत में अलाउद्दीन राघवचेतन से पदमावती के रूप की चर्चा सुन कर उसपर मुग्ध होता है। वह दिल्ली का सम्राट् है। वह अपने आपको चित्तौड़ के राजा से शक्तिशाली मानता है। वह रतनसेन की अनुपस्थिति में पदमावती के हरण की आवश्यकता नहीं समझता, सीधा उसे आदेश देता है कि पदमावती को मेरे पास भेज दो। रतनसेन नहीं मानता तो वह उसपर आक्रमण कर बलपूर्वक उसे पाने का प्रयत्न करता है।

जायसी के कथानक के इस सूत्र का आधार अन्यत्र भी खोजा जा सकता है। गुजरात के राजा करण घेलो के मन्त्री माधव की प्रेरणा पर अलाउद्दीन की गुजरात चढ़ाई का उल्लेख ऊपर (पृष्ठ ३५) हो चुका है। कवियों ने माधव के दिल्ली जाने के कारण की भी कल्पना की। तदनुसार माधव और केशव दो नागर ब्राह्मण भाई करण घेलो के मन्त्री थे। माधव की पत्नी रूपसुन्दरी अनुपम सुन्दरी और पद्मिनी[1] जाति की थी। राजा कर्ण उसके रूप

१. फोर्ब्स—रासमाला (रौलिन्सन द्वारा संपादित) पृ० २६६।

पर मोहित हो गया। राजकार्य-वश माधव राजधानी से बाहर गया था। राजा कर्ण ने रूपसुन्दरी को पकड़ लाने के लिए सेना भेजी। केशव ने मुकाबला किया और वीरगति पाई। उसकी पत्नी गुण-सुन्दरी सती हो गई। वापिस आ कर माधव ने अपने घर को उजड़ा हुआ पाया। अलाउद्दीन इससे पहले कड़ा-मानिकपुर का हाकिम रहते हुए देवगिरि को लूट चुका था और अब वह दिल्ली का सुलतान भी बन चुका था। माधव उससे सहायता माँगने दिल्ली की ओर चला। गुजरात का उपजाऊ मैदान और व्यापार-समृद्ध बन्दरगाह अलाउद्दीन को आकृष्ट कर ही रहे थे, ऊपर से माधव आ पहुँचा। अलाउद्दीन ने एक पन्थ दो काज करने के लिए गुजरात पर आक्रमण किया (१२९७ ई०)। राजा कर्ण भाग कर देवगिरि के राजा रामदेव की शरण में चला गया। उसकी सब पत्नियाँ पकड़ी गईं। माधव को उसकी पत्नी रूपसुन्दरी वापिस मिली और राजा कर्ण की एक रानी कमलावती ने अलाउद्दीन से विवाह कर लिया।

गुजरात-चढ़ाई में दो अछूत भी पकड़े गये। मुसलमान बनने पर ये मलिक काफूर और नासिरुद्दीन खुसरो कहलाये। काफूर धेड़ जात का था। मुसलमान बनने पर उसकी महत्त्वाकांक्षा जाग उठी। वह बहुत सुन्दर भी था। उसके सौन्दर्य से अलाउद्दीन भी आकृष्ट हुआ। सेना-नेतृत्व की योग्यता उसमें स्वाभाविक ही थी। देवगिरि के राजा रामदेव ने कर भेजना बन्द कर दिया था। मलिक काफूर के नेतृत्व में बड़ी सेना १३०६-७ ई० में अलाउद्दीन ने उधर भेजी। बागलान प्रदेश का साल्हेरगढ़ (आजकल के नासिक ज़िले में) रामदेव

ने कर्ण को रहने के लिए दिया था। काफूर ने उसे जा घेरा। १२९७ में कर्ण जब गुजरात छोड़ कर भागा था तब कमलादेवी की ४ वर्ष की कन्या देवलदेवी को वह अपने साथ लेता गया था। वह अब १३-१४ वर्ष की सुन्दरी किशोरी हो गई थी। रामदेव ने कर्ण से उसे अपने पुत्र शंकर के लिए माँगा। रामदेव के आश्रित होते हुए भी कर्ण उसे अपने से नीचे कुल का मानता था, उसने शंकर से अपनी कन्या का विवाह करने से इनकार कर दिया[१]। कमलादेवी को अपनी कन्या का वियोग वहुत खलता था। उसने अलाउद्दीन से कहा कि मेरी वेटी देवलदेवी को मँगवा दो। अलाउद्दीन ने काफूर को आदेश भेजा। काफूर ने कर्ण से देवलदेवी माँगी। रामदेव के पुत्र शंकर ने कर्ण को सहायता देने का प्रस्ताव किया। ऐसी परिस्थिति में कर्ण ने देवलदेवी शंकर को ब्याह देने का निश्चय किया। शंकर का भाई भीम देवलदेवी को देवगिरि ले जा रहा था कि उलूगखाँ के सैनिकों ने उससे उसे छीन लिया। देवलदेवी के सौंदर्य से प्रभावित हो उलूगखाँ ने उसे अपनी बेटी कहा[२] और अलाउद्दीन की चहेती पत्नी कमलादेवी को प्रसन्न करने के लिए उसे दिल्ली ले गया। अलाउद्दीन का युवराज खिजरखाँ और देवलदेवी परस्पर आकृष्ट हुए, उलूगखाँ ने उनका विवाह कर दिया और हिन्दी कवि अमीर खुसरो ने उनके प्रेम पर कविता लिखी।[३] अलाउद्दीन के मरने

---

१. चिन्तामणि विनायक वैद्य, हिस्टरी ऑफ मैडिवल हिन्दू इंडिया (मध्यकालीन हिन्दू भारत का इतिहास) जिल्द ३, पृष्ठ ३८५।

२. वेली—हिस्टरी ऑफ गुजरात (गुजरात का इतिहास) पृ० ३७-३८।

३. वहीं पृष्ठ ३७-३८; हेमचन्द्र राय—डिनैस्टिक हिस्टरी ऑफ

पर १३१६ ई० में मलिक काफूर ने खिजरखाँ और उसके एक भाई की आँखें निकलवा लीं, पर तीसरा मुबारक बच निकला। काफूर को मार कर वह गद्दी पर बैठा। उसने अंधे खिजरखाँ को मार कर देवलदेवी उसने छीन ली और उसकी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती उससे विवाह कर लिया (१३१८ ई०)[१]। खुसरो ने (जो काफूर के साथ पकड़ा गया था और उसकी तरह सेनापति बन गया था) मुबारक-शाह को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। पीछे उसका काम तमाम कर खुसरो नासिरुद्दीन नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा (१३२० ई०)। उसने भी देवलदेवी को जबर्दस्ती अपने हरम में डाल लिया। "सौंदर्य का प्रायः यही परिणाम विधाता ने निश्चित कर दिया है"।[१]

यह वृत्तान्त फरिश्ता, बेली और हेमचन्द्र राय के आधार पर दिया गया है। किनकेड और पारनीस ने भी अपने ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री ऑफ़ दी मराठा पीपुल' (मराठा जाति का इतिहास) में यह वृत्तान्त प्रायः ऐसे ही दिया है।

कर्ण ने माधव की विवाहिता पद्मिनीजातीया पत्नी का बलपूर्वक हरण किया, अलाउद्दीन ने उस पद्मिनी का उद्धार किया। यह दन्तकथा कब बनी? यदि यह कथा जायसी के पहले प्रचलित थी तो इस कथा को जायसी ने अपने कथानक में यह रूप दिया कि

नौर्दन इंडिया (उत्तर भारत के राजवंशों का इतिहास) जिल्द २, पृष्ठ० १०४४–१०४६; फरिश्ता, (ब्रिग्स कृत अनुवाद) पृष्ठ ३३६–३८

१. हेमचंद्र राय—वहीं; फरिश्ता—वहीं।

अलाउद्दीन ने रतनसेन की रानी पद्मिनी का अपहरण करने के लिए चित्तौड़ को घेर लिया। गढ़ घेर कर पत्र द्वारा पद्मिनी की माँग करने में शायद काफ़ूर द्वारा साल्हेरगढ़ घेर कर देवलदेवी की माँग की छाया हो। 'आठ बरिस गढ़ छेंका रहा' कवि की अत्युक्ति भी हो सकती है और करण घेलो की साल्हेरगढ़-निवास की अवधि की छाया भी।

'पदमावत में रतनसेन के घर से योगी बन कर निकलने से ले कर पदमावती को प्राप्त करने की सब बातों का मूल नाथ-पंथ के परंपरागत विश्वासों और साधनाओं में है।'[1]

'समुद्र के बीच स्थित सिंहल की राजकन्या कथानकों की बहुत पुरानी नायिका है।' रत्नावली और लीलावती की नायिका वहीं की थीं।[2]

कल्कि पुराण में भी सिंहल के राजा बृहद्रथ की कन्या पद्मिनी है। वहाँ भी प्रेम-सन्देश का वाहक शुक है। और शुक से संदेश पा कर कल्कि के सिंहल पहुँचने पर पद्मिनी उससे एकांत में मिलती है और तब अपने पिता को इसकी सूचना देती है। कल्कि की भी दो पत्नियाँ हैं जो उसके मरने पर सती होती हैं।[3]

सदयवत्स और सावलिंगा के प्रेमाख्यान में सदयवत्स सावलिंगा से मिलने देवी के मन्दिर में गया तो अधिक नशा पी जाने से सो

---

१. रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र—हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० १५३।

२. वहीं, पृष्ठ १५२।

३. वहीं, पृष्ठ १५०-५१।

गया। सावलिंगा उसे जगा न सकी। लौटते समय उसने उसके हाथ में कुछ चिह्न बना दिया। फिर दुबारा लौट कर उसने उसी में एक दोहा भी लिख दिया।[1]

"संभव है मूर्च्छित रतनसेन की छाती पर पदमावती का लेख लिखना जायसी को इसी से सूझा हो।"[1]

मध्यकालीन कथानकों की सिंहली नायिका की कल्पना की जड़ महाजनपदयुग की—सातवीं आठवीं शताब्दी ईसवी पूर्व की—नाविकों की उन कहानियों में टटोली जा सकती है जिनके अनुसार सिंहल में लुभाने वाली यक्षिणियाँ रहती थीं।

प्राचीन भारत में सुन्दरी स्त्रियों की तलाश के लिए लोग पंजाब जाया करते थे और आज भी पंजाब हिमाचल कश्मीर जाना ही ठीक प्रतीत होगा।

"इतिहास और कहानियों में इसके अनेक दृष्टांत पाये जाते हैं कि केकय गन्धार शिवि और मद्र आदि देशों की स्त्रियों को व्याहने में मध्यदेश के राजा और कुलीन लोग बड़ा गौरव मानते थे। [हरिश्चन्द्र की रानी शैव्या, दशरथ की कैकेयी, धृतराष्ट्र की गांधारी और पांडु की माद्री के दृष्टांत प्रसिद्ध हैं। बिम्बिसार की रानी क्षेमा भी माद्री थी। पौराणिक और पालि वाङ्मय में वैसे और दृष्टान्त अनेक हैं। सर्वांगसुंदरी युवतियों की तलाश में उस समय ··· की कहानियों को भी मद्र राष्ट्र का ही रास्ता सूझता था, देखिए कुसजातक (५३१)।] इसका कारण यह था कि उस समय पंजाब के लोग अपने सौन्दर्य और अपनी स्वतन्त्रता शिक्षा

---

१. वहीं, पृष्ठ १५२।

तथा संस्कृति के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। ब्रह्मवादी जनकों के समय में कठ मद्र केकय और गन्धार के विद्वानों के पास भारतवर्ष के प्रदेशों के विद्यार्थी शिक्षा पाने जाते थे···। महाजनपदयुग में भी तक्षशिला में पढ़ने के लिए हजारों कोस चल कर राजा और रंक सभी की संतान पहुँचा करती थी······।"[1]

किन्तु जायसी के ज़माने तक पंजाब शिक्षा और संस्कृति का केंद्र नहीं रहा था, उलटा डरावने 'हरेवों' का अड्डा बन चुका था। अला-उद्दीन के गद्दी पर बैठने के बीस-बाईस वर्ष पहले एक मंगोल सरदार ने पूरबी अफगानिस्तान हज़ारा और कश्मीर के रास्ते आ कर दिल्ली सल्तनत से लाहौर प्रान्त छीन लिया था। तब से मंगोल राज्य की पूरबी सीमा सतलज तक थी, जहाँ से वे दिल्ली और उसके इलाकों पर चढ़ाइयाँ करते और धावे मारते थे[2]। सो इस युग में कोई पञ्जाब की ओर मुँह कैसे करता ?

परन्तु सिंहल की सुन्दरियों के विषय में भी कुछ और प्रकार की प्रसिद्धि प्राचीन काल से चली आती थी। सोलह महाजनपदों के युग में "भरुकच्छ (भरुच) से सुवण्णभूमि (बरमा मलाया आदि) तक तट के साथ साथ भी समुद्र के व्यापारी यात्रा करते। आधुनिक सिंहल उनके व्यापार-मार्ग की दक्खिनी अवधि थी, जहाँ वे ईंधन-पानी (दारुदक) लेने को ठहरते थे। बनारस तक के व्यापारी वहाँ पहुँचते थे। वह द्वीप उस समय तक आबाद न हुआ था,

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार—१६३३—भारतीय इतिहास की रूप-रेखा पृष्ठ ४१४–१५।

२. इतिहास-प्रवेश, पंचम संस्करण, पृष्ठ ३७६–८०।

और भारतीय व्यापारी उसके अन्दर न जाते थे।····· उसके विषय में यात्रियों की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध थीं। कहते हैं उसमें सिरीसवत्थु नाम का यक्खों का एक नगर था जहाँ यक्खिनियाँ रहती थीं, जो नाव टूट जाने के कारण भूले भटके व्यापारियों को अपना सुन्दर रूप दिखला कर ललचा और बहका कर तट पर से अन्दर ले जातीं, प्रकट में उन पुरुषों की स्त्री बन कर रहतीं, लेकिन उन्हें सुला और मकानों में बन्द कर नये पुरुषों की तलाश में बाहर जातीं, और जब उन्हें नये पुरुष मिल जाते, पहले पुरुषों को कारणघर (निर्यातन-गृह) में डाल कर धीरे धीरे खातीं ! [बलाहस्स जातक (१९६)।]"[1]

प्रतीत होता है बलाहस्स जातक वाली यह बुद्ध से पहले की कहानी किसी रूप में बनारस प्रदेश में चली आती थी। दन्तकथा ने लुभावनी किन्तु पुरुषभक्षक यक्षिणियों को धीरे-धीरे सुन्दरी स्त्रियों का रूप दे दिया था। यों जायसी के कथानक की यह धुरी भी इतिहास पर नहीं तो प्राचीन अनुश्रुति पर आश्रित है।

पदमावती से विवाह करने के लिए आये वरों को राजा गंधर्व-सेन के नकारात्मक उत्तर में करण घेलो द्वारा शंकर यादव को अपने से नीच कुल का मान कर देवलदेवी देने से इनकार करने की प्रतिध्वनि है।

महाभारत में नलोपाख्यान में संदेशवाहक पक्षी हंस है, पदमावत में शुक। "शुक को हमारे यहाँ कामदेव का संदेशवाहक माना गया है। साहित्य में ही नहीं, प्राचीन भारतीय कला में भी इस रूप

---

१ भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृष्ठ ३२९।

में शुक का आलेखन मिलता है। मथुरा के अनेक कुषाण-कालीन वेदिका-स्तम्भों पर इसी रूप में शुक का चित्रण उपलब्ध है।"[1]

निष्कर्ष

इस प्रकार जायसी के कथानक के निम्नलिखित ऐतिहासिक और आनुश्रुतिक आधार दिखाई देते हैं—

(१) मेवाड़ के राणा समरसिंह के बेटे और पद्मिनी के पति राणा रत्नसिंह (१३०२-३ ई०) के राज्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर चढ़ाई कर उसे छह मास के घेरे के बाद ले लेना, गोरा और बादल नामक चित्तौड़ के सरदारों का बलिदान और वहाँ की स्त्रियों का जौहर उस कथानक का पहला और मुख्य ऐतिहासिक आधार है।

(२) सिंहल द्वीप की लुभावनी यक्षिणियों के विषय में प्राचीन काल से चली आती अनुश्रुति के आधार पर मध्य काल में सिंहल की पद्मिनी नारियों की कल्पना हुई। उसी के अनुसार जायसी ने पदमावती और उसकी सोलह हजार सुन्दरी सखियों की मातृभूमि सिंहल होने की कल्पना की। उत्तर भारत के व्यापारियों को प्राचीन काल में सिंहल जाने पर उन यक्षिणियों से वास्ता पड़ा करता था। चित्तौड़ के व्यापारियों को सिंहल की पदमावती का समाचार मिलने की कहानी में उस प्राचीन दन्तकथा की परछाई है।

(३) गुजरात के राजा कर्णदेव (करण घेलो) ने अपने मन्त्री

---

१. मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी के पत्र से।

माधव की पद्मिनीजातीया पत्नी रूपसुन्दरी का बलपूर्वक अपहरण किया और अलाउद्दीन ने अपने भाई उलूगखाँ और सेनापति नसरतखाँ को भेज कर उसका उद्धार कराया। यदि यह दन्तकथा जायसी से पहले प्रचलित हो तो इसके आधार पर अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी के अपहरण की चेष्टा की कल्पना हुई।

(४) माधव ने अपने राजा से बिगड़ कर दिल्ली जा कर अलाउद्दीन को गुजरात पर चढ़ाई करने का निमन्त्रण दिया था। पदमावत के कथानक में मेवाड़ का राघवचेतन अपने राजा से रूठ कर दिल्ली जा कर अलाउद्दीन को चित्तौड़ पर चढ़ाई का निमंत्रण देता है। राघवचेतन माधव के साँचे में ढला है।

(५) अलाउद्दीन की मेवाड़ चढ़ाई के अवसर पर मंगोलों ने पंजाब से आ कर दिल्ली को घेर लिया था। पदमावत में अलाउद्दीन का चित्तौड़ का घेरा चलते हरेव दिल्ली को आ घेरते हैं। हरेवों की चढ़ाई के वर्णन में मंगोलों की चढ़ाई का जीवित चित्र है।

(६) राणा रत्नसिंह ने चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का सामना करते हुए वीरगति पाई थी। किन्तु पदमावत के रतनसेन की मृत्यु दूसरी तरह होती है। रतनसेन का यह पिछला चरित महाराणा सांगा के बेटे और जायसी के समकालिक महाराणा रत्नसिंह (१५२८--१५३१ ई०) के चरित के आधार पर है। इसमें रतनसेन का प्रतिद्वंद्वी कुंभलनेर का राव देवपाल रत्नसिंह के प्रतिद्वन्द्वी बूँदी के राव सूरजमल का रूपान्तर है। रत्नसिंह-सूरजमल-द्वन्द्व का हूबहू चित्र रतनसेन-देवपाल-द्वंद्व में अंकित हुआ है।

(७) अलाउद्दीन की समकालिक चित्तौड़ की रानी पद्मिनी ने

अपने पति की वीरगति और चित्तौड़गढ़ के पतन के साथ ही जौहर कर लिया था, किन्तु पदमावत के कथानक की पदमावती राणा रतन-सेन के देवपाल द्वारा मारे जाने पर सती होती है। जायसी के समकालिक महाराणा रत्नसिंह की रानी पँवार रत्नसिंह के सूरजमल द्वारा मारे जाने पर सती हुई थी। सो रानी पदमावती का भी पिछला चरित रानी पँवार के चरित पर आश्रित है।

(८) महाराणा रत्नसिंह के सौतेले भाई विक्रमाजीत ने बाबर की अधीनता में चित्तौड़ की गद्दी पाने के लिए दूतों द्वारा बाबर से संधि-वार्ता की थी। जायसी की कहानी में अलाउद्दीन के आठ वर्ष चित्तौड़ को घेरे रखने के बाद रतनसेन अलाउद्दीन की अधीनता में चित्तौड़ की गद्दी पर बने रहने को तैयार होतां और दोनों के बीच सन्धि-वार्ता होती है, जिसमें ठीक बाबर-विक्रमाजीत सन्धिवार्ता का प्रतिबिम्ब है। विक्रमाजीत अपने पिता महाराणा सांगा का मालवे के सुलतान महमूद से पाया हुआ रत्नजटित मुकुट और सोने की कमरपेटी देने को तैयार होता है। इधर रतनसेन समुद्र से पाये हुए पाँच रत्न देने को तैयार होता है। बाबर विक्रमाजीत को शम्साबाद की जागीर देने को कहता है, इधर अलाउद्दीन रत्नसेन को चंदेरी की जागीर देने को तैयार होता है।

पदमावत के ध्यानपूर्वक मनन से पदमावत के कथानक के अन्य सूत्र भी टटोले जा सकेंगे।

पद्मावत का रचना-काल

पदमावत के रचना-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद का कारण स्तुति खंड की यह अर्धाली है—

सन नौ सै सैंतालिस अहै, कथा अरंभ बैन कवि कहै।

पदमावत की कुछ प्रतियों में इसका यह पाठान्तर मिलता है—

सन नव सै सत्ताइस अहा, कथा अरंभ बैन कवि कहा।

उसी स्तुति खंड में यह अर्धाली भी है—

सेरसाहि दिल्ली सुलतानू, चारिउ खंड तपै जस भानू।

और उसके बाद शेरशाह की सेना के प्रयाण, उसके गढ़ जीतने, उसके न्याय, रूप, प्रताप और दान का विस्तार से वर्णन है। शेरशाह १० मुहर्रम हिजरी सन् ९४७ (१७ मई सन् १५४० ईस्वी) के दिन कन्नौज की लड़ाई में हुमायूँ को हरा कर दिल्ली का बादशाह हुआ था। इसलिए शुक्ल जी ने जायसी ग्रन्थावली में प्रथम संस्करण में उपरिलिखित अर्धाली का पहला पाठ शुद्ध मान कर ९४७ हि० या १५४० ई० पदमावत का रचना-काल माना था। इधर उनको पदमावत के बँगला अनुवाद का पता चला जो सन् १६५० ई० में हुआ था। इस में पदामवत का रचना-काल ९२० हिजरी दिया है। तब शुक्लजी ने उस अर्धाली का दूसरा पाठ शुद्ध माना और उसकी व्याख्या यों की—

"इसका अर्थ होता है कि पदमावत की कथा के प्रारंभिक वचन (अरंभ-बैन) कवि ने सन् ९२७ हिजरी (सन् १५२० ई० के लगभग कहे थे। पर ग्रन्थारंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार शाहेवक्त शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके

शासन-काल का आरंभ ६४७ हिजरी अर्थात् सन् १५४० ई० से हुआ था। इस दशा में यही सम्भव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् १५२० ई० में ही बनाए थे, पर ग्रन्थ को १६ या २० वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया अहा (था) और कहा का प्रयोग किया है।"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या)' के प्राक्कथन में ६२७, ६३६, ६४५, ६४७ और ६४८ पाँच पाठान्तर दे कर लिखा है—

"मैंने अर्थ करते समय शेरशाह वाली युक्ति पर ध्यान दे कर ६४७ पाठ को समीचीन लिखा था, किन्तु अब प्रतियों की बहुल सम्मति एवं क्लिष्ट पाठ की युक्ति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि ६२७ मूल पाठ था और जायसी ने पदमावत का आरंभ इसी तिथि में अर्थात् १५२१ ई० में कर दिया था। ग्रन्थ की समाप्ति कब हुई कहना कठिन है, किन्तु कवि ने उस काल के इतिहास की कई प्रमुख घटनाओं को स्वयं देखा था। बाबर के राज्यकाल का तो स्पष्ट उल्लेख है ही (आखिरी कलाम ८।१)। उसके बाद हुमायूँ का राज्यारोहण (६३६ हि०), चौसा में शेरशाह द्वारा उसकी हार (६४५ हि०), कन्नौज में शेरशाह की उसपर पूर्ण विजय (६४७ हि०), फिर शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर राज्याभिषेक (६४८ हि०), ये घटनाएँ उनके जीवन काल में घटीं। मेरे मित्र श्री शंभुप्रसाद जी बहुगुणा ने मुझे एक बुद्धिपूर्ण सुझाव दिया है कि पदमावत के विविध हस्तलेखों की तिथियाँ इन घटनाओं से मेल खाती हैं।

हि० ९२० में आरंभ कर के अपना काव्य कवि ने कुछ वर्षों में समाप्त कर लिया होगा। उसके बाद उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ समय समय पर बनती रहीं। भिन्न तिथियों वाले सब संस्करण समय की आवश्यकता के अनुकूल चालू किए गए। ९२७ वाली कवि लिखित प्रति मूल प्रति थी। ९३६ वाली प्रति की मूल प्रति हुमायूँ के राज्यारोहण की स्मृति रूप में चालू की गई। हि० ९४५ वाली प्रति जिसका माताप्रसाद जी गुप्त ने पाठान्तर में उल्लेख किया है शेरशाह की चौसा युद्ध में हुमायूँ पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त चालू की गई। ९४७ वाली चौथी प्रति शेरशाह की हुमायूँ पर कन्नोज विजय की स्मृति का संकेत देती है। पाँचवीं या अन्तिम प्रति ९४८ हि० की है, जब शेरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठ कर राज्य करने लगा था। मूल ग्रन्थ जैसे का तैसा रहा, केवल शाहेवक्त वाला अंश उस समय जोड़ा गया।"

अग्रवाल जी के क्लिष्ट पाठ वाले तर्क पर हम आगे विचार करेंगे। पाँच विभिन्न प्रतियाँ पाँच विभिन्न घटनाओं की स्मृति स्वरूप चालू की गईं, इस तर्क में कुछ भी दम नहीं है। मूल प्रति जो ९२७ में चालू की गई, उसमें ९४७ में गद्दी पर बैठने वाले बादशाह की प्रशस्ति कैसे आ गई? यदि ९४७ की प्रति में किसी पहले बादशाह की प्रशस्ति होती तो यह तर्क माना जा सकता था। और हुमायूँ के राज्यारोहण (९३६ हि०) में एक प्रति चालू की गई तो बाबर के राज्यारोहण के समय क्यों न चालू की गई? बाबर का पानीपत के युद्ध में जीतना (१५२६ ई०) या खानवा के युद्ध में जीतना (१५२७ ई०) अधिक महत्त्व की घटनाएँ थीं।

'पदमावत का कार्य है पदमावती का सती होना।' अलाउद्दीन-कालीन पद्मिनी सती न हुई थी। १५३१ ई० में सूरजमल-रत्नसेन-द्वन्द्व के बाद रत्नसिंह की रानी पँवार सती हुई। इस घटना से जायसी को पदमावत के 'कार्य' की प्रेरणा मिली। तब उन्होंने कथानक की पूरी योजना तैयार की और सोलहवीं शताब्दी के रत्नसिंह की कहानी में चौदहवीं शताब्दी के रत्नसिंह की कहानी मिलाई और उसकी रानी पद्मिनी का नाम सोलहवीं शताब्दी में सती होने वाली रानी पँवार पर मढ़ा। समकालिक व्यक्तियों का नाम उन्हें काव्य में रखना अभिप्रेत न था, परन्तु चौदहवीं शताब्दी के ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम ज्यों का त्यों रख लेने में कुछ रुकावट न थी। यों १५३१ से पहले कथानक का ढाँचा कवि के दिमाग में न था।

पदमावत में तोपों का कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है और एक स्थान पर तोप चलाने वाले 'हबसी रूमी और फिरंगी' का भी उल्लेख है (पृष्ठ ६७)। तोपें पहलेपहल सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में पुर्तगालियों और बाबर के साथ भारत में आईं। यद्यपि पुर्तगाली १६वीं शताब्दी के आरम्भ में पश्चिमी समुद्र में आ चुके थे, पर चटगाँव में वे पहले-पहल १५३३ ई० में उतरे। शेरखाँ का बंगाल के महमूदशाह से द्वन्द्व तब चल रहा था। उस प्रसंग में महमूदशाह ने पुर्तगालियों से सहायता माँगी, जिससे शेरखाँ से बंगाल को बचाने के लिए पुर्तगाली तोपची बंगाल बिहार की सीमा पर सीकरीगली के दर्रे में आ जुटे थे। उत्तर भारत का साम्राज्य पाने के बाद शेरशाह ने भी तोपें ढलवाईं और शायद पुर्तगाली तोपची भी भर्ती किये। यों जायसी का यह वर्णन १५३३-३४ ई० से पहले का नहीं हो सकता।

जैसा कि हम आगे देखेंगे स्तुति खंड की निम्नलिखित अर्धाली

..............................हिन्दू तुरकहिं भई लराई

मार्च १५२७ की खानवा की लड़ाई की ओर संकेत करती है।

शेरशाह के प्रशासन में हिन्दी काव्य को विशेष प्रोत्साहन मिला। पदमावत उसी का फल है। इसलिए ६४७ हि० पाठ ही मूल और शुद्ध पाठ है। पदमावत की रचना ६४७ हि० में आरंभ हुई।

पदमावत का व्यापक प्रभाव

समर्थ कवियों की कृतियाँ, चाहे वे काव्य हों या नाटक, चाव से पढ़ी जाती हैं। यदि उनमें किसी ऐतिहासिक घटना या पात्र का उल्लेख होता है, तो उस काव्य या नाटक को बार-बार पढ़ने से पाठक के मन में उस ऐतिहासिक घटना या पात्र का वही रूप और चरित्र अंकित हो जाता है जो समर्थ कवि ने अपनी कृति में अंकित किया है। धीरे धीरे असली इतिहास को लोग प्रायः भूल जाते हैं, और काव्य का वह कथानक इतिहास का स्थान ले लेता है। महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान के आधार पर कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् लिखा। आज अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथानक ही इतिहास रूप में प्रसिद्ध है, महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान को बहुत थोड़े लोग देखते हैं।

हिन्दी के तीन प्रबंध-काव्यों ने इतिहास को बहुत अधिक प्रभावित किया या यों कहिये बदल दिया। पृथ्वीराजरासो कुछ वर्ष पूर्व तक इतिहास-ग्रंथ ही माना जाता था। रामचरितमानस ने भी इतिहास

को कुछ कम प्रभावित नहीं किया। रामचरितमानस में प्रतिपादित भरत का चरित आज हमारे साहित्य में इतना सुप्रतिष्ठित हो चुका है कि वह ऐतिहासिक सत्य ही माना जाता है। वह अलौकिक है इसमें सन्देह नहीं, उसे पढ़ कर 'चर अचर' और 'अचर सचर' हो जाते हैं। परन्तु आज यदि यह कहा जाय कि वह भरत के ऐतिहासिक चरित से बहुत दूर है तो कोई आसानी से विश्वास भी न करना चाहेगा।

कैकेयी राज्यशुल्का[१] थी, अर्थात् राजा दशरथ ने कैकेयी से विवाह करते समय उसके पिता को वचन दिया था कि मेरे बाद अयोध्या का राजा कैकेयी से उत्पन्न पुत्र होगा। दशरथ के पुत्रों के विवाह के समय भरत का मामा युधाजित् मिथिला आया था।[२] विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद सब अयोध्या लौट आये।

कुछ दिन बाद युधाजित् ने दशरथ से भरत को ननिहाल भेजने को कहा। भरत के साथ उसकी नव-विवाहिता पत्नी मांडवी चली। मांडवी के साथ उसकी बहन श्रुतकीर्ति और उसके साथ उसका पति शत्रुघ्न। शत्रुघ्न अपने सगे भाई लक्ष्मण को छोड़ कर साढ़ू भरत के साथ गया। इसीलिए शायद कहावत है—मिठाई में लाडू और सगाई में साढ़ू। भरत के केकय चले जाने पर सत्यवादी राजा दशरथ ने केकयराज को दिये वचन को भुला कर परिषद् बुलाई और राम के

---

१. पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥ वा० रा० २,१०७,३।

२. यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम्।
तस्मिंस्तु दिवसे वीरो युधाजित्समुपेयिवान्॥ वहीं १,७३,१।

गुणों का वर्णन कर उसके यौवराज्य का प्रस्ताव रक्खा। और परिषद् के सहमत होने पर दशरथ ने राम के यौवराज्याभिषेक में सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर के राजाओं को निमन्त्रित किया[१] परन्तु केकयराज और जनक को सूचना नहीं दी और कहा कि ये दोनों अभिषेक हो जाने के बाद प्रिय संवाद को सुनेंगे।[२] फिर राम को बुला कर दशरथ ने कहा—

आज प्रजा तुम्हें राजा बनाना चाहती है ··· परन्तु मनुष्यों का मत बदला करता है, जब तक मेरा मन स्थिर है, मेरा मत बदल नहीं जाता, तुम अपना अभिषेक करवा लो ··· कल तुम्हारा अभिषेक होगा ··· रात तुम कुशासन पर सोओ और तुम्हारे मित्र अप्रमत्त रह कर तुम्हारी रक्षा करें क्योंकि ऐसे कामों में अनेक विघ्न हुआ करते हैं। जब तक भरत विदेश में है उसी बीच में तुम्हारा अभिषेक हो जाना चाहिए, यह मेरा निश्चित मत है।[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा दशरथ भरत से छिपा कर

---

१. नानानगरवास्तव्यान्पृथग्जानपदानपि ।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥ वहीं २,१,४६।

२. न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः ।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम्। वहीं २,१,४८।

३. अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम्।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक ॥ वहीं २,४,१६।
तद्यावदेव मे चेतो न विमुह्यति राघव।
तावदेवाभिषिंचस्व चला हि प्राणिनां मतिः ॥ वहीं २,४,२०।
तस्मात्त्वयाद्यप्रभृति निशेयं नियतात्मना।
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भप्रस्तरशायिना ॥ वहीं २,४,२३।

राम का अभिषेक करना चाहता है। उत्तराधिकार के प्रश्न पर केकय-राज भरत का पक्ष लेगा और जनक रामचन्द्र का यह दशरथ को विदित था, परन्तु वह अपने राज्य में दूसरे राजाओं का हस्तक्षेप नहीं होने देना चाहता, इसलिए राम का अभिषेक करने के बाद इन दोनों को सूचना देना चाहता है। भरत पर भी उसे पूरा विश्वास नहीं है।

कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः।
ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः॥
वहीं २, ४, २६।

किं नु चित्तं मनुष्याणामनित्यमिति मे मतम्॥
वहीं २, ४, २७।

और राम को निषाद गुह पर पूरा भरोसा है, परन्तु भरत पर उसे भी सन्देह है। लंका से अयोध्या लौटते समय राम की सेना प्रयाग में रुक जाती है। दूत हनुमान को अयोध्या भेजा जाता है। राम ने दूत से कहा कि निषाद गुह मेरा मित्र है, वह मेरे आने का समाचार सुन कर प्रसन्न होगा, भरत से कहना कि राम बालि और रावण को मार कर सीता लक्ष्मण और विभीषण और सुग्रीव की बड़ी बड़ी सेनाओं के साथ आ रहे हैं और देखना कि उसके चेहरे पर कैसे भाव आते हैं और वह जो कुछ उत्तर दे उसकी सूचना लौट

सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्त्यद्य समन्ततः।
भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि॥ वहीं २,४,२४।
विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥ वहीं २,४,२५।

कर मुझे दो ।[1]

उसके बाद का इतिहास यह है—

"रामचन्द्र के भाई भरत को अपने ननिहाल का केकय (=चनाब नदी के पच्छिम आधुनिक गुजरात शाहपुर जेहलम जिले) का राज्य मिला। भरत ने केकय के पच्छिम लगा गन्धार देश भी जीता और वहाँ उसके बेटों तक्ष और पुष्कर ने तक्षशिला और पुष्करावती नगरियाँ बसाईं।"[1]

अर्थात् राम के अयोध्या लौटने पर भरत वहाँ न रहा, उसे

---

१. श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम्।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥ वहीं ६,१२५,५।
अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥ वहीं ६,१२५,६।
उपयातं च मां सौम्य भरताय निवेदय।
सह राक्षसराजेन हरीणामीश्वरेण च ॥ वहीं ६,१२५,१२।
जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः।
उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ वहीं ६,१२५,१३।
एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः।
स च ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यच्चापि मां प्रति ॥ वहीं ६,१२५,१४।
ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च ॥ वहीं ६,१२५,१५।
सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम्।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥ वहीं ६,१२५,१६।
तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर।
यावन्न दूरं याताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ वहीं ६,१२५,१८।
१. जयचन्द्र विद्यालंकार—भारतीय कृष्टि का क ख, पृष्ठ ५१।

अयोध्या से चले जाना पड़ा। राज्यशुल्का कैकेयी के बेटे को पैतृक राज्य न मिला तो न.नेहाल का राज्य ही सही।

तुलसीदास द्वारा अंकित भरत का चरित्र इससे कितना भिन्न है! परन्तु तुलसीदास समर्थ कवि थे। आज उनके द्वारा प्रतिपादित भरत का चरित्र इतिहास का स्थान पा चुका है।

पृथ्वीराज रासो और रामचरितमानस की भाँति पदमावत ने भी इतिहास को प्रभावित किया। पदमावत के कथानक का दुरुपयोग करके टाड ने कूटनीति काव्य लिखा और उसे राजस्थान का इतिहास नाम दिया। जायसी ने अलाउद्दीन की चित्तौड़ चढ़ाई का कारण पदमावती को पाना लिखा था। ऊपर हम इतिहास के जो उद्धरण दे चुके हैं उनसे स्पष्ट है कि अलाउद्दीन की दिल्ली चढ़ाई से चित्तौड़ की रानी पद्मिनी का कोई सम्बन्ध न था। जायसी के काव्य में वह केवल कवि-कल्पना है, काव्यों में युद्ध का कारण स्त्री को बनाया ही जाता है, और पदमावत विशुद्ध काव्य है, वह इतिहास-ग्रन्थ नहीं है। जायसी की कल्पना का कोई दंतकथाओं पर आश्रित आधार था तो वह करण घेलो द्वारा माधव की पद्मिनीजातीया पत्नी का अपहरण और अलाउद्दीन द्वारा उसका उद्धार। जायसी के काव्य में अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी-उद्धार पद्मिनी-हरण बन गया।[1] इतिहास-

---

१. जायसी द्वारा इस प्रकार के विपरीत वर्णन का एक और भी सुन्दर उदाहरण मिलता है। राजा रतनसेन जब अलाउद्दीन की कैद से छूट कर चित्तौड़ आया तो दिन भर तो पदमावती राजा, बादल और घोड़े की आरती और पूजा करती रही; उसके बाद 'निसि राजै रानी कँठ लाई' और तब दोनों ने अपना अपना दुःख कहा। रानी ने देवपाल

लेखकों ने अलाउद्दीन को बड़ा संयमी और प्रजा-हितैषी सम्राट् लिखा है।[२] स्वयं जायसी ने अलाउद्दीन को, जैसा कि हम आगे देखेंगे, बड़ा प्रजावत्सल दयालु दानी जागरूक वीर और उदार-प्रकृति सम्राट् चित्रित किया है। फिर उन्होंने उसपर पर-स्त्री-हरण का दोष क्यों आरोपित किया? उन्हें चित्तौड़ पर ऐसे राजा को चढ़ा लाना था जो शक्ति में रत्नसिंह से श्रेष्ठ हो। अलाउद्दीन उस समय दिल्ली-सम्राट् था, इसलिए उसे इस पाप का उत्तरदायी बनना पड़ा। यदि उस समय पृथ्वीराज दिल्ली का सम्राट् होता तो पदमावत का प्रतिनायक वही होता। बदकिस्मती से अलाउद्दीन मुसलमान था। जायसी का उद्देश्य पदमावत के कथानक को हिन्दू मुसलिम प्रश्न बनाना कदापि न था। उन्होंने कहीं भी अलाउद्दीन को मुसलमान नहीं लिखा, मुसलमान शब्द पदमावत में कहीं आया ही नहीं, केवल कथा के अन्त में एक बार इसलाम शब्द आया है—

बादशाह गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम।

उन्होंने अलाउद्दीन और उसके सैनिकों को बराबर तुर्क लिखा है। युद्ध होता है तो हिन्दू-तुर्क का हिन्दू-मुसलमान का नहीं। पदमावत

की शिकायत की, जिसे सुन कर दिन निकलते ही रतनसेन देवपाल से लड़ने चला। मुहनोत नैणसी के अनुसार (ऊपर पृष्ठ ३०-३१) राणा रत्नसिंह की रानी पँवार ने दिन में सूरजमल को देखा। रात को उसने राणा को सूरजमल को छेड़ने से रोका। दोनों वर्णनों में 'निसि' और 'रात' कह रहे हैं कि ये दोनों द्वन्द्व से पहली रात की एक ही घटना के वर्णन हैं, यद्यपि एक दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं।

२. डा० रघुवीरसिंह—पूर्व मध्यकालीन भारत, पृष्ठ १२७-१६०।

पढ़ते समय इस बात पर बराबर ध्यान रखना चाहिए।

बारहवीं शताब्दी के अन्त तक मेवाड़ स्वतन्त्र राज्य न था। मेवाड़ के राजा गुजरात के चालुक्यों के सामंत थे। उस समय उनकी राजधानी नागदा थी। १२वीं शताब्दी के अंत में गुजरात के कमज़ोर होने पर वे स्वतन्त्र हो गये। स्वतंत्र हैसियत से उन्होंने अनेक बार दिल्ली के तुर्कों का सामना किया। १२३४ ई० में अल्तमश मालवा ले कर मेवाड़ के रास्ते गुजरात की ओर बढ़ा। नागदा को उसने उजाड़ दिया परन्तु मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह ने उसे करारी हार दी। तब से मेवाड़ का नाम इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। अल्तमश के नागदा उजाड़ देने पर चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी बना। अल्तमश की तरह बलबन ने भी मालवे की तरफ से गुजरात पर चढ़ाई करने का जतन किया, पर रास्ते में चित्तौड़ के राजा समरसिंह (१२७३–१३०२ ई०) से हार कर लौट आया। यही समरसिंह रत्नसिंह का पिता है और १२९७ की गुजरात चढ़ाई में अलाउद्दीन का भाई उलूगखाँ और सेनापति नसरतखाँ इसी से हारते हैं। दिल्ली के सुलतान १३वीं शताब्दी में तीन बार मालवे की तरफ से गुजरात पर चढ़ाई करते हैं और तीनों बार मेवाड़ के राजा से उन्हें हारना पड़ता है। यों गुजरात जाने के लिए मेवाड़ से भुगतना अलाउद्दीन के लिए आवश्यक था और यही उसकी मेवाड़-चढ़ाई का कारण था। रणथंभोर मेवाड़ से भी निकट था, इसलिए अलाउद्दीन पहले रणथंभोर लेता है फिर मेवाड़।

अलाउद्दीन के गद्दी पर बैठने पर रणथंभोर में चौहानों का, गुजरात में बघेल सोलंकियों का, तिरहुत में करणाट राजाओं का,

उड़ीसा में गंगों का और बंगाल में सेनों का राज्य था। इनमें उड़ीसा के गंग बहुत प्रबल थे। तिरहुत का राज्य दिल्ली और लखनौती के बीच मैदान में था। अलाउद्दीन ने कड़ा-मानिकपुर का हाकिम रहते सुदूर देवगिरि के दुर्भेद्य गढ़ पर चढ़ाई की थी, पर पड़ोस के तिरहुत राज्य पर, जिसमें कोई प्राकृतिक बाधा भी नहीं थी, चढ़ाई करने की हिम्मत उसे नहीं हुई थी। यही नहीं, अलाउद्दीन के प्रशासन-काल में तिरहुत के राजा ने नेपाल को भी जीत कर अपने राज्य में मिलाया था। रणथंभोर के चौहान राजा हम्मीर की वीरता के गीत आज तक गाये जाते हैं। इनमें से कोई भी चित्तौड़ के राजा रतनसेन को अपना नेता मानने को तैयार न होता। परन्तु जायसी ने लिखा है—

है चितउर हिन्दुन्ह कै माता, गाढ़ परे तजि जाइ न नाता।
रतनसेन तहँ जौहर साजा, हिन्दुन्ह माँझ आहि बड़ राजा॥

और उसके बाद सब हिन्दू राजा रतनसेन के झंडे के नीचे इकट्ठे होते हैं।

जायसी का यह वर्णन चौदहवीं शताब्दी के आरंभ के उत्तर भारत के राजनीतिक नक्शे का चित्रण नहीं करता।

अब ज़रा सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश के अन्त के भारत के राजनीतिक नक़शे को देखिए। दक्खिनी मंडल में विजयनगर का राजा कृष्णदेव राय सबसे प्रबल है। राणा लाखा मोकल और कुंभा के प्रशासनों में मेवाड़ लगातार उन्नति कर रहा था। राणा सांगा के प्रशासन में मेवाड़ पच्छिमी मंडल में सबसे प्रबल हो जाता है। मालवा और गुजरात के सुलतान उससे नीचा देख चुके हैं और दिल्ली के पठान सुलतान इब्राहीम से भी वह ग्वालियर धौलपुर छीन कर

आगरे के पास पीलिया खाल तक आ पहुँचता है। उधर उत्तरी मंडल में बाबर प्रबल हो उठता है और १५२६ ई० में पानीपत में इब्राहीम लोदी को हरा कर दिल्ली ले लेता है। बाबर और सांगा अब आमने सामने खड़े होते हैं। दिल्ली ले लेने पर भी बाबर अभी सम्राट् नहीं बना है, उधर सांगा सारे उत्तर भारत का निर्विवाद नेता है। बाबर तुर्क है, सांगा हिंदू। यहाँ हिन्दू का अर्थ हिन्दी लेना ठीक होगा। हसनखाँ मेवाती और इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी भी सांगा के झंडे के नीचे आ खड़े होते हैं। एक ओर बाबर—विदेशी—तुर्क है, दूसरी ओर चित्तौड़ाधिपति सांगा—सब हिन्दुओं (हिंदियों) का नेता। जायसी की ऊपर उद्धृत चौपाई इसी नक्शे को चित्रित करती है और—

हिन्दू तुरकहिं भई लराई

लिखते समय जायसी के मस्तिष्क में यही खानवा की १५२७ ई० की लड़ाई रही होगी।

जायसी की आँखों के सामने हिन्दुओं और तुर्कों में युद्ध होता है। तुर्कों का नेता बाबर विदेश से आ कर दिल्ली का बादशाह बन गया है। हिन्दुओं का नेता सांगा है जिसके झंडे के नीचे हिंदू मुसलमान—सभी हिंदी—खड़े हैं। जायसी का युद्ध हिन्दू-मुसलमान का युद्ध नहीं है, हिन्दू-तुर्क का युद्ध है; उनके काव्य में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न है ही नहीं। और हिन्दी नेता सांगा का उत्तराधिकारी रत्नसिंह जब सूरजमल के साथ द्वन्द्व में मारा जाता है और उसकी रानी सती होती है तो कवि-हृदय पसीज उठता है और हिन्दी के श्रेष्ठ प्रेमाख्यान काव्य की रचना होती है।

जो प्रेमगाथा जायसी ने 'रकत कै लेई लाइ जोरी' थी, अंग्रेज़ कूटनीतिज्ञ ने उसी को चरम घृणा के प्रचार का साधन बनाया। पदमावत के कथानक को तोड़ मरोड़ कर टाड ने इतिहास नाम से जो कूटनीति काव्य लिखा उसे हम स्वतः-प्रमाण इतिहास मान बैठे हैं। टाड ने ऐसा क्यों किया यह नीचे के उद्धरण से स्पष्ट हो जायगा—

"एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक की अतिप्रसिद्ध कृति ने इन युगों के विषय में हमारी जनता की दृष्टि को पिछले सौ बरस में बहुत गुमराह किया है। उसके विषय में दो शब्द कहना ज़रूरी है। दूसरे मराठा युद्ध के समय ग्रीम मर्सर नाम का भेदनीति में अत्यन्त दक्ष अंग्रेज़ था, जिसे मराठों के घर में विद्रोही पैदा करने के लिए जनरल लेक के अधीन नियुक्त किया गया था। बाद में वह ग्वालियर का रेज़िडेंट रहा। उसके स्टाफ में कर्नल जेम्स टाड नामक युवक था। वह विशेष रूप से राजस्थान की सर्वे करने और राजस्थानी राज्यों को मराठों और मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ने के लिए नियुक्त था। उसे पूरी सफलता हुई। उसके पहले अंग्रेजों को राजस्थान के भू-अंकन का कुछ पता न था। वे समझते थे वहाँ की सब नदियाँ दक्खिनमुख हैं और नर्मदा में मिलती हैं। टाड ने जो नक्शा बनाया, उसके आधार पर ही तीसरे मराठा और पिंडारी युद्ध की योजना बनी। राजस्थान के इतिहास में टाड ने जो अभिरुचि दिखाई, वह प्रशंसनीय थी। उसने राजस्थानियों को अपने महान् अतीत की याद दिलाई, इसके लिए हम उसका नाम कृतज्ञतापूर्वक याद करते हैं। लेकिन जिन सब किस्से कहानियों को उसने अपने इतिहास में सम्मिलित किया,

उनकी सचाई परखने को एक तो उस समय साधन न थे। दूसरे यदि साधन होते भी तो अनेक बातों को कसौटी पर कसना टाड के उद्देश के खिलाफ जाता। अपना नक्शा उसने बड़ी सावधानी से बनाया, पर औरंगजेब और राजपूतों के युद्ध के जो किस्से उसने लिखे, उनकी सचाई को मेवाड़-मारवाड़ के नक्शे पर जाँच देखने की उसे क्या पड़ी थी? राजस्थानियों को उसने एक बहादुर किन्तु अत्यन्त भोली जाति के रूप में चित्रित किया। उनका भोला बने रहना टाड के हमवतनों के हित में भले ही रहा हो, पर इतिहास का अध्ययन बतलाता है कि वे वैसे भोले या भोंदू कभी न थे जैसा टाड ने उन्हें बनाया है। अलाउद्दीन और दूसरे सब मुसलमानों को लम्पट लुटेरा बताना और मराठों को मौसमी डाकू के रूप में चित्रित करना लज्जाजनक असत्य हैं। अकबर जैसे महापुरुष को कलंकित करने की कोशिश चाँद पर थूकने के समान है। अकबर और प्रताप दोनों परस्पर-विरोधी रास्तों के पथिक थे; दोनों मर्दों की तरह लड़े; दोनों की स्मृति हमारे लिए आदरणीय है। लेकिन अकबर को हिन्दुओं के लिए मीठी छुरी कहना घृणित असत्य है। दुःख की बात है कि हिन्दी बँगला और गुजराती साहित्यों के, तथा हिन्दुओं को रोपे हुए उर्दू साहित्य के पौधे सौ बरस पहले बिखेरी गई इन विषमय असत्यों की खाद को आज भी अमृत समझ कर चूसते जाते हैं।"[१]

टाड ने प्रत्येक मुसलमान शासक को लंपट लुटेरा और अत्याचारी चित्रित किया, उसने बताया कि हिन्दू प्रजा की बहू-बेटियों की इज्ज़त

१. जयचन्द्र विद्यालङ्कार—अप्रैल १६३६—हिन्दी सा० स० नागपुर, इतिहास परिषद् के सभापति पद से अभिभाषण, पृष्ठ १६-१७।

लूटना ही मुसलमान बादशाहों का दिन रात का काम था। जहाँ कहीं मुसलमान बादशाह ने चढ़ाई की, हिन्दू राजा की युवती सुन्दरी पत्नी या कन्या का अपहरण करने के लिए की! हिन्दू समाज में जितनी बुराइयाँ आ गई थीं—बाल विवाह, परदा आदि—सब का कारण यह बताया गया कि मुसलमानों की वासनामयी नज़र से स्त्रियों को बचाने के लिए परदे की प्रथा चली और मुसलमान विवाहिताओं की अपेक्षा कुमारी कन्याओं का हरण अधिक करते थे, इसलिए बाल-विवाह की प्रथा चली।

महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में दुष्यन्त जब कण्व के आश्रम में पहुँचता है तो शकुन्तला अकेली है, उसकी सखियाँ साथ नहीं हैं। शकुन्तला निस्संकोच दुष्यन्त से बात करती है और दुष्यन्त जब विवाह का प्रस्ताव करता है तो शकुन्तला यह शर्त भी कर लेती है कि मेरी कोख से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही तुम्हारा उत्तराधिकारी होगा। दुष्यन्त के इस शर्त को मानने पर ही शकुन्तला उससे विवाह करती है। वह अपने पुत्र भरत को ले कर उसके दरबार में पहुँचती है, तो भी उससे सीधी सीधी बातें करती है और कहती है कि यदि असत्य बोलने में ही तुम्हारा जी लगा है और अपने अन्तरात्मा पर भी भरोसा नहीं है तो मैं जाती हूँ। मेरा पुत्र तुम्हारी कृपा से नहीं अपने बल से तुम्हारे राज्य से भी बड़े राज्य का अधिपति होगा। यहाँ हम परदे का नाम भी नहीं पाते।

वही दुष्यन्त जब कालिदास के नाटक में कण्व के आश्रम में पहुँचता है, शकुन्तला लज्जा के मारे उससे बात तक नहीं कर पाती। वह सखियों के द्वारा अपनी बात कहती है। और जब वह दुष्यन्त

के दरबार में पहुँचती है तो राजा उसे देख कर कहता है—

कास्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या,
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्।

और जब राजा पूछता है—'किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा ?' तो गौतमी कहती है—'जादे! मुहुत्तअं मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे ओउणठणं। तदो तुमं भट्टा अभिजाणिस्सदि।'[1] और वह उसका घूँघट खोल देती है।

सो इसलाम के जन्म से भी पहले भारत में परदा प्रचलित था और शायद जब 'लज्जा नारीणां भूषणं' बनी तभी से परदे का आविर्भाव हुआ। महाभारत की शकुन्तला को लज्जा छू भी न गई थी, वह विवाह से पहले अपने भावी पुत्र की बात कर सकी थी, इसलिए उसे परदे की आवश्यकता न थी।

बाल-विवाह की भी ठीक यही बात है। यदि चिन्तामणि विनायक वैद्य की बात विश्वासयोग्य मानी जाय तो मुसलमानों के आने के बहुत पहले से हमारे देश में बाल-विवाह का प्रचलन हो चुका था। उन्होंने इसका कारण 'लड़कियों को बौद्ध भिक्षुणी बनने से बचाने की लोगों की इच्छा'[2] लिखा है। वयस्का महिलाएँ ही बौद्ध भिक्षुणियाँ बन सकती थीं। बाल्यावस्था में विवाह कर देने से उनकी भिक्षुणी बनने की संभावना कम हो जाती थी।

---

१. जाते! मुहूर्त्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति।

२. चिन्तामणि विनायक वैद्य—हिस्टरी औफ मेडिवल हिन्दू इंडिया (मध्यकालीन भारत का इतिहास) जिल्द ३, पृष्ठ ३६६।

स्त्री हरण के बारे में सच बात यह है कि यदि कोई चरित्रवान् नेता किसी विजयिनी सेना का संचालन न कर रहा हो अथवा कोई समूची सेना ऊँचे आदर्शों से अनुप्राणित न हो, तो उस सेना द्वारा तब तक साधारणतया बलात्कार किया ही जाता है जब तक देश में नया व्यवस्थित शासन स्थापित नहीं हो जाता। मुसलमान सेना ही स्त्री-हरण करती थी और हिन्दू सेना न करती थी, ऐसी बात नहीं है।

हमारे देश के अर्वाचीन इतिहास में हुसेनशाह बंगाली, शेरशाह, शिवाजी, पहले सिक्ख सरदारों, अमरसिंह थापा और नेता जी सुभाषचन्द्र वसु के चरित इसके उदाहरण हैं कि आदर्शवान् नेता अपनी समूची सेनाओं में किस प्रकार ऊँची भावनाएँ फूँक देते हैं। शेरशाह की मालवा चढ़ाई में उसके एक सैनिक ने किसी किसान के खेत से मक्की के भुट्टे चुरा लिये। उस सैनिक को सारी चढ़ाई में घोड़े पर उलटा लटकवा कर ले जाया गया! शेरशाह के बेटे ने एक बार जमना में नहाती किसी बनिये की स्त्री पर पान फेंका। बनिये के फ़रियाद करने पर शेरशाह ने अपने बेटे को यह दण्ड दिया कि तुम्हारी स्त्री—मेरी पुत्रवधू—जमना में नहाने जाय और बनिया चाहे तो उसपर पान फेंके! उस बनिये ने बादशाह की पुत्रवधू को माफ़ कर दिया, पर उस घटना से भारत की स्त्रियों को मालूम हो गया कि शेरशाह के राज में हममें से किसी की भी इज्ज़त बादशाह की पुत्रवधू की इज्जत से कम नहीं है। शिवाजी की कोंकण चढ़ाई में एक काज़ी की युवती बेटी भागती हुई मराठा सैनिकों द्वारा पकड़ी गई। शिवाजी के सैनिक किसी स्त्री को हाथ न लगा सकते थे, पर उस

युवती का अनूठा सौन्दर्य देख उसे वे अपने राजा को भेंट करने ले आये। शिवाजी ने उसे देखा तो अनायास कहा—मेरी माँ इतनी सुन्दर होती तो मैं भी सुन्दर होता!

सिक्ख जब अहमदशाह अब्दाली से पंजाब को स्वतंत्र कराने को लड़ते थे, तब के उनके बर्त्ताव का चित्र काज़ी नूर मुहम्मद नामक पठान लेखक ने जो अब्दाली की १७६४–६५ ई० की चढ़ाई में उसके साथ आया था, अपने 'जंगनामे' में खींचा है। उस ग्रन्थ में वह मुस्लिम लेखकों की बँधी शैली के अनुसार अपने इन शत्रुओं को हर पन्ने पर काफ़िर कुत्ते और शैतान कह के याद करता है, पर अन्त में अपना दिल खोले बिना नहीं रह पाता और कहता है—"इन कुत्तों को कुत्ता मत कहो, क्योंकि ये...युद्ध-क्षेत्र में शेरों की तरह बहादुर हैं...और शान्ति-काल में और भी बढ़ कर (उदार)...वे किसी स्त्री का धन या गहने नहीं लूटते...इन कुत्तों में व्यभिचार की आदत नहीं है...और न ये व्यभिचारियों से मैत्री करते हैं...।" †

इसी प्रकार हमारे ज़माने में जब आज़ाद हिन्द फौज भारत में प्रवेश करने को तैयार हुई तब सुभाषचन्द्र बसु ने और उनके साथी जापानी सेनापति ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि तुम्हारा कोई साथी कहीं लूटमार या बलात्कार करने लगे तो उसे फौरन पकड़ा दो, जिससे उसे गोली मार दी जाय। वह सेना मणिपुर से आगे न आ सकी, पर पूर्व एशिया की भारतीय युवतियाँ उसके घायल सैनिकों

---

† गंडासिंह—ए ब्रीफ़ एकौंट आफ़ दि सिक्ख पीपुल (सिक्ख लोगों का संक्षिप्त विवरण), पृ० ६२–६४।

की जो अपने सगे भाइयों से बढ़ कर सेवा करती रहीं, सो उनके ऐसे भावों से अनुप्राणित होने के कारण ही। पर पराई स्त्री को देख कर अपनी माँ की याद करने वाले शिवाजी को अपने ही जेठे बेटे संभाजी को अपनी ही प्रजाजन एक सधवा ब्राह्मणी का धर्म नष्ट करने के अपराध में नजरबंद करना पड़ा था।

महान् ऐतिहासिक गोविंद सखाराम सरदेसाई ने लिखा है कि औरंगजेब के साथ संघर्ष के काल के मराठा नेताओं और पहले चार पेशवाओं ने महाराष्ट्र-धर्म के आदर्श को सदा दृष्टि-पथ में रखा।[1] किन्तु महाराष्ट्र धर्म से अनुप्राणित उन मराठों ने संभाजी की १६८३ की गोवा-चढ़ाई में कोंकणी स्त्रियों पर और रघुजी भोंसले की १७४२ और १७४४ की बंगाल चढ़ाइयों में बंगाली स्त्रियों पर जो जुल्म और बलात्कार किया उसे सुन कर दुनिया का कोई भी अत्याचारी शर्म से मुँह छिपा लेगा। सामूहिक बलात्कार अर्थात् एक स्त्री पर कई सैनिकों का बारी बारी बलात्कार उनकी विशेष आदत थी। अपनी इज्ज़त बचाने को कुओं और तालाबों में कूद पड़ने वाली स्त्रियों से कोंकण के कुएँ और वीरभूम के तालाब पट गये थे। मराठा पेशवा बालाजीराव बंगाल के नवाब अलीवर्दीखाँ से चौथ ले रहा था, बंगाल की रक्षा करना मराठा पेशवा की जिम्मेदारी थी। उस जिम्मेदारी को मराठों ने जैसा निभाया उसका विवरण ऐतिहासिक जदुनाथ सरकार ने समकालीन लेखकों के लेख उद्धृत करते

---

१. गोविन्द सखाराम सरदेसाई—मेन करेंट्स ऑफ मराठा हिस्टरी (मराठा इतिहास की मुख्य धाराएँ) पृष्ठ ७।

हुए दिया है।[१] बंगाल की महिलाओं के लिए आज भी 'बर्गी ऐलो देशे' बड़ी भारी बिभीषिका है। सरकार लिखते हैं कि 'भागीरथी पार कर पाने पर ही लोग अपने को सुरक्षित समझते थे।' वहाँ उनका रक्षक बूढ़ा मुसलमान अलीवर्दीखाँ था।

१७६५ ई० में सिक्ख योद्धाओं का चरित्र हमने देखा है। उसके चालीस वर्ष बाद उनका बर्त्ताव कैसा था सो इस उद्धरण से प्रकट होगा।

"गढ़वाल के राजा के प्रशासन में दून पर जमना पार के सिक्ख धावेमारों का आतंक बराबर छाया हुआ था। गोरखाली शासकों ने दून का राज पाते ही (१८०३ ई०) घोषणा की कि धावेमारों को कठोर दंड दिया जायगा। इस घोषणा की परवा न करते हुए कुछ सिक्खों ने धावा मारा और एक गाँव से बहुत सी युवतियों को पकड़ ले गये। गोरखालियों ने जमना पार कर धावेमारों के गाँव को घेर लिया, लुटेरों को स्त्रियाँ लौटाने को कहा, उनके न सुनने पर गाँव को आग लगा दी, जिस जिस पुरुष ने वहाँ से निकल भागने का यत्न किया उसे गोली से उड़ा दिया और कहते हैं कि वहाँ की सब सुन्दरियों को पकड़ ले गये। उनमें वे युवतियाँ भी रही होंगी जिन्हें धावेमार भगा लाये थे। इसके बाद दून पर किसी ने धावा नहीं मारा।"[२]

---

१ जदुनाथ सरकार—फौल ऑफ दी मुगल एम्पायर (मुगल साम्राज्य का पतन) जिल्द १, पृष्ठ ८६—८६।

२. जयचन्द्र विद्यालङ्कार—गोरखाली इतिहास की मुख्य धाराएँ पृष्ठ ६६।

फिर सन् १८५७ की क्रान्ति-चेष्टा के प्रकरण में दिल्ली के पतन के इतिहास में उनका यह चित्र पाया जाता है—

"इसके बाद कत्ले-ग्राम और बलात्कार की बारी आई। एल्फिस्टन के शब्दों में 'अंग्रेजों ने नादिरशाह को निश्चय से मात कर दिया।' पुरुष स्त्री बच्चे की कोई तमीज न थी। 'सब ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था। हमारे घोड़े इन्हें देख कर डर से बिदकते थे।' अपनी इज्जत बचाने को कुओं में कूदने वाली स्त्रियों के कारण अनेक कुएँ पट गये।......और शर्म के साथ दर्ज करना पड़ता है कि इन कामों में सिक्ख गोरों का साथ दे रहे थे। एक बार जब आदमी गुलामी स्वीकार कर ले और भाड़े का सिपाही बन जाय तब उसे किसी भी सीमा तक गिराया जा सकता है।"[1]

और दूसरे विश्व-युद्ध में आज़ाद हिन्द फौज के वर्त्ताव की तुलना सन् ४२ में गोरी फौज और उसके साथ ही हिन्दुस्तानी फौज और पुलिस द्वारा भारत के गाँवों में बहू-बेटियों पर किये आम बलात्कार से करनी चाहिए। द्वितीय महायुद्ध में पराजित जर्मनी को दखल करने वाले अंगरेज-अमरीकी सैनिकों के जर्मन युवतियों पर बलात्कार के फल-स्वरूप उत्पन्न हजारों जारज बच्चे जर्मनी के लिए समस्या बन गये हैं।

समूची सेना का किसी काल ऊँची भावनाओं से प्रेरित होने और किसी काल न प्रेरित होने का ऐसा ही नमूना हमें रूसी क्रान्ति के इतिहास में भी मिलता है। जो सेना लेनिन के नेतृत्व में जनता के

---

१. जयचंद्र विद्यालंकार, इतिहास प्रवेश, पाँचवाँ संस्करण, पृ० ७६७

उद्धार के लिए ही लड़ रही थी, वह भला जनता पर कोई अत्याचार कैसे करती? उसे सख्त ताक़ीद थी कि जनता से कोई वस्तु दाम दिये बिना न छीने। पर कहीं कोई चूक तो उससे भी हो ही गई। इसका एक मनोरंजक दृष्टान्त है। मध्य रूस के एक गाँव में क्रान्ति के सैनिकों ने एक मुर्गे को पकड़ कर हलाक कर डाला। मुर्गे की मालकिन बुढ़िया ने सैनिकों के सामने आ कर उनके नायक से जवाब तलब किया—मेरे मुर्गे ने क्या खता की थी जो तुमने बेचारे को मार डाला? नायक झेंप गया, पर एक क्षण सोच कर बोला—उसने क्रान्ति के विरुद्ध बाँग दी थी! बुढ़िया और सैनिक सभी हँस पड़े। पर रूस की लाल झंडा फहराने वाली उसी सेना ने सन् १९४५ में जब मंचूरिया पर चढ़ाई की तब वह वैसे आदर्शों से प्रेरित न थी। बेशक स्तालिन ने अपनी सेना को बढ़ावा देते हुए कहा कि ४० साल पहले जापानी 'फ़ाशिस्तों' ने हमारी जो भूमि दबोच ली थी, हम उसका उद्धार करने जा रहे हैं। पर स्तालिन का यह कथन निरा ढोंग था, मंचूरिया रूसियों की मातृभूमि न थी, और सन् १९०५ में जापान ने जब उसे ज़ार के पंजे से बचाया तब स्वयं लेनिन जापानियों से गुप्त सहयोग कर रहा था। वास्तविक बात यह थी कि १९४५ में रूसियों ने इसलिए मंचूरिया पर चढ़ाई की कि कहीं उसे उनके युद्ध-कालीन मित्र अमरीकी न दबा लें। पर इस बात को वे तब ज़बान पर न ला सकते थे, और जिस ढोंग से स्तालिन ने अपनी सेना को बढ़ावा दिया उससे सैनिकों में ऊँची भावना न जाग सकती थी। रूसी सेना के तब मंचूरिया में प्रवेश करने पर न केवल जापानी सुन्दरियों पर आफ़त आ बनी, प्रत्युत इतिहास में एक अनहोनी

घटना भी घटी। लाल रूस में स्त्री को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ने का अवसर दिया गया और जिन स्त्रियों ने सेना-संचालन की योग्यता दिखाई उन्हें सेना में ऊँचे पद भी दिये गये थे। १९४५ में रूसी सेना के मंचूरिया में बढ़ने पर उन सबला सेना-नायिकाओं की अतृप्त-वासना-शान्ति का शिकार होने से बचने के लिए सुन्दर जापानी नवयुवक भी जहाँ तहाँ छिपते फिरते थे!'

यों इतिहास यह बताता है कि उन विशेष अपवादों को छोड़ कर जब कि कोई आदर्शवान् नेता अपनी समूची सेना को ऊँचे नैतिक स्तर पर नहीं उठा लेते, विजयिनी सेनाएँ प्रायः बलात्कार किया ही करती हैं। पर टाड के आधार पर लिखे गये भारतीय साहित्य में यह पाप केवल मुसलमानों के मत्थे मढ़ा गया। हमारे आधुनिक युग के कवियों और नाटककारों में जिस किसी ने मध्ययुग के कथानक ले कर रचना की—भारतेन्दु से ले कर वियोगी हरि और श्यामनारायण पांडेय तक—सब ने—एक हरिकृष्ण प्रेमी और दूसरे राहुलजी[२] को छोड़ कर—सब ने प्रत्येक मुसलमान पात्र को अत्याचारी

---

१. पंजाब की 'गदर पार्टी' के पेशावर के एक सदस्य श्री केशोराम सबरवाल १९१५ में भारत से भाग कर चीन चले गये थे। १९४९ में वे भारत वापिस आये। उनके जीवन के ३४ वर्ष चीन-जापान में ही बीते, जहाँ वे प्रायः रासबिहारी बसु के सहकारी रहे। १९४५ में वे मंचूरिया में थे और उक्त जानकारी उन्हीं की दी हुई है।

२. प्रेमीजी के नाटकों में भले-बुरे सभी तरह के मुसलमान पात्र हैं; अलाउद्दीन को उन्होंने भी 'आहुति' नाटक में लंपट चित्रित किया है। राहुलजी की 'वोल्गा से गंगा' में 'बाबा नूरदीन' कहानी में अलाउद्दीन का चरित्र इतिहास-सम्मत है।

और लंपट चित्रित किया। इतना ही नहीं प्रत्युत प्रत्येक मुसलमान को, चाहे वह तुर्क हो या पठान या बंगाली या गुजराती, विदेशी और म्लेच्छ कहा। इसमें सबसे अधिक अन्याय किया गया पठानों के साथ। पठान भारत के सब से प्राचीन आर्य निवासियों में से हैं। आज के पख्तूनिस्तान माँगने वाले ऋग्वेद के पक्थ जन के वंशज ही हैं। वे पक्थ या पख्तून इतिहास के उस आरम्भिक काल से भारत के निवासी हैं जब कि राजस्थान महाराष्ट्र और बंगाल में आर्य पहुँचे भी न थे। नौवीं शताब्दी में नालन्दा महाविहार के प्रधान आचार्य वीरदेव पठान ही थे और इन्हीं मुसलमान पठानों के पूर्वज थे। पर जब मुसलमान मात्र विदेशी माना गया तो पठान भी विदेशी माने गये। रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक ने पठानों को विदेशी कहा। प्रत्येक मुसलमान को विदेशी मानने से ही मुसलमानों का राष्ट्र पाकिस्तान हिन्दुओं के राष्ट्र भारत से पृथक् हुआ। परन्तु बात यहीं तक समाप्त न हुई। हमारी राष्ट्रीय सरकार हमारे बच्चों को इतिहास की पुस्तकों में आज भी यह बात पढ़ा रही है कि पठान हमारे देश में सातवीं शताब्दी के बाद बाहर से आये।[१] पठान अब्दुल गफ़ार खाँ और व्याकरण के आचार्य पाणिनि का जन्मस्थान प्रायः एक ही है। यदि अब्दुल गफ़ार खाँ बाहर से आये तो पाणिनि भी बाहर से आये।

और इस ज़हर को फैलाने वालों ने जायसी के काव्य का खुल

---

१. भगवतीप्रसाद पांथरी—प्राचीन भारत (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित और जूनियर हाई स्कूलों की कक्षा ६ के लिए स्वीकृत इतिहास की पाठ्य पुस्तक) पृष्ठ १५।

कर दुरुपयोग किया। पर आज हमें यह जानना चाहिए कि जायसी का यह अभिप्राय कभी न था। उन्होंने तो प्रेमगाथा लिखी थी। परन्तु उसमें उन्होंने जिसे अत्याचारी चित्रित किया वह दुर्भाग्य से मुसलमान था। अंग्रेज कूटनीतिज्ञ टाड ने उस कथानक के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष और घृणा की जो बेल बोई जिसका अन्तिम फल भारत का विभाजन हुआ, उसकी जिम्मेदारी जायसी पर नहीं है।

शुक्लजी ने जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में लिखा है "उत्तर भारत में विशेषतः अवध में, पद्मिनी रानी और हीरामन सुए की कहानी अब तक प्रायः उसी रूप में कही जाती है जिस रूप में जायसी ने उसका वर्णन किया है।.........

"इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान यह है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही ले कर सूक्ष्म ब्योरों की कल्पना करके उसे काव्य का सुंदर रूप दिया ... ।"

अवध में यह कहानी कब से प्रचलित है यह शुक्लजी ने नहीं बताया। जायसी के कथानक के कुछ सूत्र हमने टटोले हैं। अधिक संभव यही है कि अवध में यह कहानी पदमावत के प्रचार से फैली और पदमावत के व्यापक प्रभाव की सूचक है।

पद्मावत में अध्यात्म

जिस युग में पदमावत की रचना हुई थी उसमें कविता के द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों तथा सिद्धान्तों के प्रकट एवं प्रचार करने की चाल थी। कवि-कर्म गौण था, धर्म-निरूपण मुख्य। इसी से जैसे सिद्धों, नाथ सम्प्रदाय के योगियों, कृष्ण-भक्तों और रामभक्तों की रचनाओं में कवि के धार्मिक विश्वास और उपासना-पद्धति का निरूपण मिलता है वैसे ही पदमावत में भी। उसमें इस्लाम और सूफी-साधना की बातें तो मिलती हैं ही, हठयोग की क्रियाओं का औचित्य भी प्रतिपादित है। यद्यपि जायसी 'विधना के मारग हैं तेते, सरग नखत तन रोआँ जेते' मानते थे और इस प्रकार सब धर्मों के प्रति उदार थे, फिर भी वे इस्लाम के निष्ठावान् अनुयायी थे। उन्होंने 'आखिरी कलाम' और 'अखरावट' में अपने धर्म के प्रति खुल कर आस्था प्रकट की है। परन्तु पदमावत में ऐसा न करके उन्होंने अपने धर्म-सम्बन्धी आदर्शों का प्रतिपादन कथा के वर्णन-क्रम में यत्र तत्र किया है। इसी से मुख्यतया आख्यान काव्य होने पर भी वे अवसर पाने पर उसमें प्रेम की पीर को व्यक्त करने से कभी न चूके, चाहे ऐसा करते समय कथा के प्रवाह में बाधा भले ही आ पड़े। कहानी का उपसंहार करते हुए उन्होंने कहा भी है—

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा, सुना सो पोर प्रेम कर पावा।
जोरी लाइ रकत कै लेई, गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई।

पदमावत के आरंभ के 'स्तुतिखंड' में जायसी ने सृष्टि के उद्भव का वर्णन इस प्रकार किया है—

कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू, कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा, कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा।
कीन्हेसि धरती सरग पतारू, कीन्हेसि बरन बरन औतारू।
कीन्हेसि दिन दिनअर ससि राती, कीन्हेसि नखत तराइन-पाँती।
कीन्हेसि धूप सीउ औ छाँहा, कीन्हेसि मेघ बीजु तेहिं माँहा।
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा, कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा।
कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि।
पहिलै ताकर नावँ लै कथा करौं औगाहि॥
कीन्हेसि सात समुंद अपारा, कीन्हेसि मेरु खिखिंद पहारा।
कीन्हेसि नदी नार औ झरना, कीन्हेसि मगर मच्छ बहु बरना।
कीन्हेसि सीप मोती जेहि भरे, कीन्हेसि बहुतै नग निरमरे।
कीन्हेसि बनखँढ औ जरि मूरी, कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।
कीन्हेसि साउज आरन रहईं, कीन्हेसि पंखि उड़हिं जहँ चहईं।
कीन्हेसि बरन सेत औ स्यामा, कीन्हेसि भूख नींद बिसरामा।
कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू, कीन्हेसि बहु ओषद बहु रोगू।
निमिख न लाग करत ओहि सबै कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक॥
कीन्हेसि अगर कसतुरी बेना, कीन्हेसि भीमसेन औ चीना।
कीन्हेसि नाग जो मुख विष बसा, कीन्हेसि मंत्र हरै जेहि डसा।
कीन्हेसि अमृत जियै जो पाए, कीन्हेसि बिक्ख मीचु जेहि खाए।
कीन्हेसि ऊख मीठ-रस-भरी, कीन्हेसि करू-बेल बहु फरी।
कीन्हेसि मधु लावै लै माखी, कीन्हेसि भौंर पंखि औ पाँखी।

कीन्हेसि लोबा इंदुर चाँटी, कीन्हेसि बहुत रहहिं खनि माटी।
कीन्हेसि राकस भूत परेता, कीन्हेसि भोकस देव दएता।
कीन्हेसि सहस अठारह बरन बरन उपराजि।
भुगुति दिहेसि पुनि सबन कहँ सकल साजना साजि॥
कीन्हेसि मानुष दिहेसि बड़ाई, कीन्हेसि अन्न भुगुति तेहिं पाई।
कीन्हेसि राजा भूँजहिं राजू, कीन्हेसि हस्ति घोर तेहि साजू।
कीन्हेसि दरब गरब जेहि होई, कीन्हेसि लोभ अघाइ न कोई।
कीन्हेसि जियन सदा सब चहा, कीन्हेसि मीचु न कोई रहा।
कीन्हेसि सुख औ कोटि अनंदू, कीन्हेसि दुख चिंता औ धंदू।
कीन्हेसि कोइ भिखारि कोइ धनी, कीन्हेसि सँपति बिपति पुनि घनी।
कीन्हेसि कोई निभरोसी, कीन्हेसि कोइ बरियार।
छारहिं तें सब कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सब छार॥

इस वर्णन में हिन्दू पुराणों के 'सप्तद्वीप', 'चौदह भुवन' आदि का उल्लेख अवश्य है, परन्तु यह अधिकतर इस्लामी धारणा के अनुसार 'प्रथम ज्योति' (पैगंबर मुहम्मद) की प्रीति के कारण कैलाश (स्वर्ग अर्थात् बिहिश्त) की उत्पत्ति एवं सृष्टि के विकास का वर्णन है। आगे चल कर कवि ने सृष्टि-रचना का प्रयोजन और भी खोल कर कह दिया है—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा, नाउँ मुहम्मद पुनिउँ करा।
प्रथम जोति बिधि तेहि कै साजी, औ तेहि प्रीति सिस्टि उपराजी।

दैव (अल्लाह) के बाद दूसरे स्थान के अधिकारी पैगंबर मुहम्मद के प्रति श्रद्धा रखने से पाढ़त (कलमा) सीखने से ही धर्मी होता है, जो उन्हें नहीं भजता वह नरक (दोजख) में रहता है, और अन्त (कयामत) के समय उनको मानने से ही बिहिश्त की प्राप्ति संभव

है--यह इस्लामी विश्वास जायसी ने इस प्रकार प्रकट किया है—

दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा, भा निरमल जग, मारग चीन्हा।
जौं न होत अस पुरुष उजारा, सूझ न परत पंथ अँधियारा।
दोसरइँ ठाँव दई ओइँ लिखे, भए धरमी जो पाढ़ित सिखे।
जगत बसीठ दई ओइँ कीन्हे, दोउ जग तरा नावँ जेहि लीन्हें।
जेहि नहिं लीन्ह जनम सो नाऊँ, ताकहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ।
गुन अवगुन बिधि पूँछब होइहि लेख औ जोख।
ओन्ह बिनउब आगे होइ करब जगत कर मोख।

जायसी ने इसी प्रकरण में कुछ हिन्दू धर्म के विशिष्ट अर्थों में गृहीत शब्दों के द्वारा इस्लाम की मान्यताएँ व्यक्त की हैं। यथा, निम्नलिखित अवतरण में वचन = कलमा; पुरान = कुरान; विधि = अल्लाह; पंथ = सम्प्रदाय अर्थात् दीन इस्लाम।

बचन जो एक सुनाएन्हि साँचा, भए परवान दुहूँ जग बाँचा।
जो पुरान बिधि पठवा सोई पढ़त गिरंथ।
और जो भूले आवत सो सुनि लागे पंथ।

परन्तु इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग पहले से होता आया है। जायसी ने उसी प्रथा का पालन किया। महमूद गज़नवी (९९७-१०२९) के "चाँदी के सिक्कों पर यह संस्कृत लेख पाया जाता है--अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद अयं टंको महमूदपुरे घटे हतो जिनायन-संवत्..."। अर्थात् 'एक अव्यक्त (ला इलाह इल्लिल्लाह), मुहम्मद अवतार (मुहम्मद रसूल इल्लाह); राजा महमूद; यह टंका महमूदपुर (लाहौर) की टकसाल में पीटा गया, जिन (हज़रत) के अयन (भागने) का संवत् (हिजरी

संवत्)...।'[1]

परन्तु श्रद्धालु मुसलमान होते हुए भी कवि ने इस काव्य के आरंभिक खंड के अतिरिक्त अन्यत्र अपने दीन के प्रति पक्षपात प्रदर्शित नहीं किया।[2]

साधना के क्षेत्र में जायसी ने हठयोग का महत्त्व स्वीकार किया है। खानपान में संयम के द्वारा शरीर की शुद्धि के बाद ही मन को वश में करने की बात कही है। वे अपने सिद्धान्त काव्य 'अखरावट' में कहते हैं :

छाँड़हु घिउ औ मछरी माँसू, सूखे भोजन करहु गरासू।
दूध माँसु घिउ कर न अहारू, रोटी सानि करहु फरहारू।
यहि विधि काम घटावहु काया, काम क्रोध तिसना मद माया।
सब बैठहु वज्रासन मारी, गहि सुखमना पिंगला नारी।

इस ध्यान योग का प्रयोजन है प्रेम स्वरूप प्रियतम की प्राप्ति—

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार, इतिहास प्रवेश पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ २१३।

२. 'राजा रतनसेन सती खंड' में मूर्ति-पूजा की निरर्थकता दिखाने के लिए 'बाउर सोइ जो पाहन पूजा' कहा गया है। यह इसलाम के प्रचार के उद्देश्य से नहीं। जब पत्थर के देवता की पूजा से रतनसेन का मनोरथ पूरा न हुआ तब उसने देवता को भला-बुरा कहा। यह तो केवल उसकी विफलता की प्रतिक्रिया है। वैसे निराकारोपासक हिन्दू भी पत्थर पूजनेवालों को धिक्कार रहे थे। विसोबा खेचर (चौदहवीं शताब्दी) ने कहा था—"पत्थर का देवता नहीं बोलता...वह चोट से टूट जाता है...पत्थर के देवताओं के पुजारी मूर्खतावश सब खो बैठते हैं।"

—इतिहास प्रवेश, ५वाँ संस्करण, पृष्ठ ४४०

प्रेम तंतु तस लाग रहु, करहु ध्यान चित बाँधि।
पारस जैस अटेर कहँ, लाग रहै सर साधि।

पदमावत में अनेक स्थलों में हठयोग का प्रतिपादन मिलता है। परन्तु यह हठयोग स्वयं साध्य नहीं है, यह है साधन मात्र। हीरामन ने राजा रतनसेन से पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन करके उसके मन में प्रेम की पीर उत्पन्न की। फलतः

सुनतहि राजा गा मुरछाई, जानौं लहरि सुरुज कै आई।
परा सो पेम समुद्र अपारा, लहरहिं लहर होइ बिसँभारा।

जब उसे चेत हुआ तब उसे वैराग्य हो गया—'जब भा चेत उठा बैरागा'। इस पर उसके कुटुम्बियों सगोत्रियों आदि ने तो समझाया ही, हीरामन ने जो कुछ कहा वह योगी के वेश और कर्म दोनों के विषय में स्पष्ट चेतावनी है—

साधन्ह सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प।
सो पै जानै बापुरा, करै जो सीस कलप्प।

तू राजा का पहिरसि कँथा, तोरे घरहिं माँझ दस पंथा।
काम क्रोध तिस्ना मद माया, पाँचौ चोर न छाँड़हिं काया।
नवौ सेंध तिन्ह कै दिठियारा, घर मूसहिं निसि की उजियारा।

इस प्रकार प्रेम के पंथ की दीक्षा ले कर

तजा राज राजा भा जोगी, औ किंगरी कर गहेउ बियोगी।
तन बिसँभर मन बाउर लटा, अरुझा पेम परी सिर जटा।
चंद्र बदन औ चंदन देहा, भसम चढ़ाइ कीन्ह तप खेहा।
मेखल सिंघी चक्र धँधारी, जोग बाट रुदराछ अधारी।
कंथा पहिरि दंड कर गहा, सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।
मुद्रा स्रवन कंठ जपमाला, कर उदपान काँध बघछाला।

पाँवरि पाँव दीन्ह सिर छाता, खप्पर लीन्ह भेस करि राता।

इससे सन्देह नहीं रह जाता कि कवि गोरख के योगमार्ग को प्रेम की सिद्धि के लिए उपयुक्त समझता था। यह उसने स्पष्ट रूप से कह भी दिया—

चला भुगति माँगै कहँ साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति जेहि कर हिये वियोग।

जब राजा रतनसेन सिंहल पहुँचा और महादेव के मंडप में पहुँच कर अभीष्ट-सिद्धि के लिए तप करने लगा तब भी उसने योग-साधना की—

बैठ सिंघछाला होइ तपा, पदमावति पदमावति जपा।
दीठि समाधि ओही सौं लागी, जेहि दरसन कारन बैरागी।
किंगरी गहे बजावै झूरै, भोर साँझ सिंगी निति पूरै।
कंथा जरै आगि जनु लाई, बिरह धँधार जरत न बुझाई।

इस तप के प्रभाव से वसन्तपञ्चमी को पदमावती का प्रथम साक्षात्कार होने पर 'परा माति गोरख का चेला' और बहुतेरी चेष्टा करने पर भी सचेत न हो सका। पदमावती के चले जाने पर वह उसके वियोग में चिता में जल मरने को प्रस्तुत हुआ। यह समाचार हनुमान से सुन कर पार्वती-महेश तत्काल वहाँ जा पहुँचे। महादेव ने उसे पदमावती की प्राप्ति का जो मार्ग बतलाया वह कायासिद्धि द्वारा अपने रूप को पहचानने और उसकी उपलब्धि करने का योगमार्ग ही तो है। देखिये न—

कहौं सो तोहि सिंहलगढ़ है खँड सात चढ़ाव।
फिरा न कोई जियत जिउ सरग पंथ देइ पाव।।

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया, परखि देखु ओही कै छाया।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे, जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मँझियारा, औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक ताका, अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँका।
भेदै कोइ जाइ ओही घाटी, जो लहि भेद चढ़ै होइ चाँटी।
गढ़ तर कुंड सुरँग तेहि माहाँ, तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाहाँ।
दसवँ दुआर ताल कै लेखा, उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।
जाइ सो तहाँ साँस मन बंधी, जस धँसि लीन्ह कान्ह कालिंदी।
तू मन नाथु मारि कै साँसा, जो पै मरहिं आपहिं करु नासा।

परन्तु हठयोग की इस साधना से अपने भीतर स्थित किसी का अन्तर्दर्शन जायसी की साधना-पद्धति का लक्ष्य नहीं है। यह तो मन को वश में करके इष्ट से एकाकार होने का उपाय मात्र है। उनका साध्य है मन को सब विषयों से हटा कर तथा योग क्रियाओं के द्वारा एकाग्र करके उसे प्रियतम के प्रेम में रँग देना; उसी में सब को और सब में उसी को देखना। वे पदमावत में इसी भावना का संकेत सर्वत्र करते हैं। सिंहल की अमराई की घनी छाँह का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मलै-समीर सोहावन छाहाँ, जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।

और झट उसमें अलौकिक सत्ता की झलक दिखाने लगते हैं —

ओही छाँह रैनि होइ आवै, हरिअर सवै अकास देखावै।
जेइ वह पाई छाँह अनूपा, फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा।

यह संसार उसी अलौकिक सत्ता का प्रतिबिम्ब मात्र है, इसकी रचना उसकी झलक है और कुछ नहीं—यह भावना पदमावत में

बहुत ही सुन्दर ढंग से कही गई है। पदमावती उसी सत्ता की लौकिक प्रतिमा है। उसके रूप का वर्णन करते करते कवि मानवीय सौन्दर्य से हट कर दैवी सौन्दर्य का उल्लेख करते मानो अघाता ही नहीं। कुछ उदाहरण लीजिए—

सरवर तीर पदुमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुकलाई।
ससि मुख अंग मलयगिरि बासा, नागन्ह झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।
ओनई घटा परी जग छाहाँ, ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ।
सरवर रूप बिमोहा हिये हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि देइ॥

और

कहा मानसर चाह सो पाई, पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे, पावा रूप रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई, भा सीतल गै तपनि बुझाई।
न जनौं कौन पौन लेइ आवा, पुन्य दसा भै पाप गँवावा।
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा, भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।
पावा रूप रूप जस चहा, ससि-मुख जनु दरपन होइ रहा।
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर॥

और देखिये, पदमावती के नेत्रों की बरूनी रूपी बाणों का प्रभाव और व्यापकत्व—

गगन नखत जो जाहिं न गने, वै सब बान ओही के हने।
धरती बान बेधि सब राखी, साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े, सूतहि सूत बेध अस गाढ़े।

बरुनि बान अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाँख।
सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख।

फिर पदमावती के दाँतों की ज्योति में दिव्य छटा की झलक देखिये—

जेहि दिन दसन जोति निरमई, बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी, तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।
हँसत दसन अस चमके, पाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि।

यही विश्व-व्याप्ति की भावना नागमती के वियोग के वर्णन में भी देखी जाती है। नागमती के विषाद का प्रभाव गुंजा (घुँघुची), पलाश, बिम्बाफल (कुँदरू), परवल और गेहूँ के ऊपर किस प्रकार पड़ा यह देखिये—

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई, रकत आँसु घुँघुची बन बोई।
भइ करमुखी नैन तन राती, को सेराव बिरहा दुख ताती।
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी, तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी।
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ, गुंजा गूँजि करै पिउ पीऊ।
तेहि दुख भए परास निपाते, लोहू बूड़ि उठे होइ राते।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू, परवर पाक, फाट हिय गोहूँ।
देखौं जहाँ होइ सोइ राता, जहाँ सो रतन कहै को बाता।

इसी भाँति अनेक अन्य स्थलों में भी जायसी ने दैवी सौन्दर्य और उसके प्रति प्रेम की सार्वभौमिक व्याप्ति का वर्णन किया है। वे संसार में सर्वत्र उसी की मोहिनी मूर्ति की झाँकी देखते थे।

प्रबन्ध-सौष्ठव

पदमावत में कवि ने अलौकिक प्रेम की व्यंजना यथावसर की है, फिर भी सदैव उसके कथा-प्रबन्ध के निर्वाह का ध्यान रखा है। वास्तव में यह प्रेम आख्यान है। इसकी कथावस्तु में पदमावती और रतनसेन के प्रेम के वर्णन की प्रधानता है, अन्य प्रसङ्ग उसकी पुष्टि अथवा घटना-क्रम के उल्लेख के निमित्त ही आये हैं। इसी से इसमें प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से किसी उद्देश्य विशेष की सिद्धि नहीं दिखलाई गई। घटनाएँ जैसे हुईं वैसे ही वर्णित हैं। केवल इसलिए उनका समावेश हुआ है कि उनका सम्बन्ध पदमावती और रतनसेन के जीवन से है।

कथा समाप्त करने पर कवि ने लिखा है कि—

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा, सुना सो पीर प्रेम कर पावा।

इससे भी सूचित होता है कि 'आध्यात्मिक प्रेम की पीर' की जो अनुभूति कवि को अपनी सूफी धार्मिक साधना के द्वारा हुई थी उसी को लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ उसने अपने काव्य के श्रोताओं और पाठकों के मन में भी अंकित किया और इस कार्य में सफलता भी पाई। इससे स्पष्ट होता है कि इस कहानी में प्रधान रूप से प्रेम की विविध दशाओं और स्थितियों का वर्णन ही कवि का लक्ष्य था। उसने कथा के प्रसङ्ग में यथावसर अद्भुत वीर आदि रसों का समावेश किया है, किन्तु प्रधान रूप से शृंगार रस का ही निरूपण किया है। यह काव्य फारसी के मसनवी काव्यों की शैली में रचा गया है। इसी से इसमें कार्य का आरम्भ नायिका की ओर से

हुआ है। पदमावती के विवाह योग्य होने पर गन्धर्वसेन के पास 'सात दीप के वर जो ओनाहीं, उत्तर पावहिं फिरि फिरि जाहीं'। कारण, राजा उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं समझता था। उधर यौवनावस्था के कारण वह अपना जीवन संगी पाने के लिए आकुल थी। उसने अपने प्रियसखा शास्त्रज्ञ हीरामन सुए से इस सम्बन्ध में कहा—

सुनु हीरामनि कहौं बुझाई, दिन दिन मदन सतावै आई।
पिता हमार न चालै बाता, त्रासहि बोल सकै नहि माता।
देस देस के बर मोहि आवहिं, पिता हमार न आँख लगावहिं।
जोबन मोर भयउ जस गंगा, देह देह हम्ह लाग अंनगा।

इस पर सुए ने कहा—

अज्ञा देउ देखौं फिरि देसा, तोहि जोग वर मिलै नरेसा।

कुछ समय के अनन्तर किसी ब्राह्मण के द्वारा हीरामन चित्तौड़ के राजा रतनसेन के पास पहुँचा। उसने प्रसङ्ग चलने पर राजा से पदमावती के सौन्दर्य का बखान किया। राजा ने उत्सुक हो कर पदमावती के नखशिख का विशद वर्णन सुना। तब तो वह उसके पाने के लिए राजपाट छोड़ कर योगी हो कर चल पड़ा। इस प्रकार नायक की ओर से प्रेम-व्यापार बाद में हुआ। भारतीय पद्धति के अनुसार चेष्टा नायिका की ओर से आरंभ न हो कर नायक की ओर से होती है। जैसा कह चुके हैं, इसमें ऐसा नहीं हुआ।

काव्य में वर्णित प्रेमोदय स्वाभाविक है नयिका के मन में और नायक के भी मन में। नायिका यौवन की सहज अनुभूति करती है और नायक हीरामन के मुँह से पदमावती के असाधारण लावण्य का

जी लुभानेवाला वर्णन सुन कर उसपर मुग्ध होता है। इसी प्रकार हीरामन से रतनसेन के सौन्दर्य का वर्णन सुन कर पदमावती की मनःस्थिति, महादेव के मन्दिर में प्रथम साक्षात्कार होने पर पदमावती और रतनसेन की मानसिक दशा, वियोग-विधुरा नागमती की कथा, अलाउद्दीन के मन में पदमावती के प्रति आकर्षण एवं पदमावती का देवपाल और अलाउद्दीन की दूतियों के प्रति व्यवहार द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा के साथ ही अपने पति के प्रति अनन्य निष्ठा आदि के प्रदर्शन में जायसी ने प्रबन्ध को कहीं भी उखड़ने नहीं दिया। यही प्रेम हमें रण-क्षेत्र में गोरा-बादल की स्वामिभक्ति के ओजस्वी रूप में एवं रतनसेन तथा देवपाल के द्वन्द्वयुद्ध में देखने को मिलता है। कथानक में इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक स्थल हैं जिनमें मानव-हृदय की मार्मिकता देखी जाती है। उनके सरस वर्णन इस बात के प्रमाण हैं कि कवि ने जीवन के मर्मस्थलों को देख सकने की संवेदनापूर्ण दृष्टि पाई थी। उसकी इसी सहृदयता के कारण पदमावत में प्रेम की विभिन्न मनोदशाओं के बहुत हो हृदयग्राही शब्दचित्र मिलते हैं। उसमें जीवन के विशद चित्र भले ही न हों किन्तु उसकी जितनी झाँकी दिखलाई गई है वह सुन्दर है—ऐसी सुन्दर कि उसे देखते समय मन एकाग्र हो उसकी शोभा पर मुग्ध हो जाता है।

कवित्व का उत्कर्ष

इस काव्य में प्रेम के लौकिक पक्ष की उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के साथ ही कवि ने उसके भीतर आध्यात्मिक सौष्ठव की झलक तो दिखलाई ही है, साथ ही प्रसङ्गगत वस्तु और दृश्य के चित्रण एवं पात्रों के मन के भावों के प्रकाशन में भी असाधारण कौशल दिखलाया है। यह सच है कि उन्होंने ऐसे वर्णन भी किये हैं जिनमें वस्तुओं की लंबी सूची उपस्थित की है। जैसे, सिंहलद्वीप की फुलवारी के इस वर्णन में—फूलों के नाम मात्र गिनाये गये हैं—

बहुत फूल फूलीं घनबेली, केवड़ा चंपा कुंद चमेली।
सुरँग गुलाल कदम औ कूजा, सुगँध बकौरी गंध्रब पूजा।
जाही जूही बगुचन लावा, पुहुप सुदरसन लाग सुहावा।
नागेसर सदबरग नेवारीं, औ सिंगारहार फुलवारीं।
सोनजरद फूलीं सेवती, रूप मंजरी और मालती।
मौलसिरी बेइलि औ करना, सबै फूल फूले बहुबरना।

इसी प्रकार जब रतनसेन ने बादशाह अलाउद्दीन को भोज दिया तब कवि ने जम कर मछली चावल आदि वस्तुओं की गणना ही नहीं की, भोजन के लिए प्रस्तुत किये गये आमिष और निरामिष पदार्थों की तालिका लिख डाली। यथा—

धरे माछ पढ़िना औ रोहू, धीमर मारत करै न छोहू।
सिधरी सौरि धरी जल गाढ़े, टेंगर टोइ टोइ सब काढ़े।
सींगी भाकुर बिनि सब धरी, पथरी बहुत बाँब बनगरी।
मारे चरख औ चाल्ह पियासी, जल तजि कहाँ जाहिं जलवासी।

× × × ×

चढ़े जो चाउर बरनि न जाहीं, बरन बरन सब सुगँध बसाहीं।
रामभोग औ काजर-रानी, भिनवा रुदवा दाउदखानी।
बासमती, कजरी, रतनारी, मधुकर ढेला भीनासारी।
घिउकाँदो औ कुँवरबिलासू, रामवास आवै अति बासू।
लौंगचूर लाची अति बाँके, सोनखरीका कपुरा पाके।
कोरहन बड़हन जड़हन मिला, औ संसारतिलक खँडविला।
वनिया देवल और अजाना, कहँ लगि बरनौं जावत धाना।

× × ×

निरमल माँसु अनूप बघारा, तेहि के अब बरनौं परकारा।
कटुवा बटुवा मिला सुबासू, सीझा अनवन भाँति गरासू।
बहुतै सोंधे घिउ महँ तरे, कस्तूरी केसर सौं भरे।
सेंधा लोन परा सब हाँड़ी, काटी कंदमूर कै आँड़ी।
सोआ सौंफ उतारे घना, तिन्ह तें अधिक आव बासना।
पानि उतारहिं ताकहिं ताका, घीउ परेह माहिं सब पाका।
औ लीन्हें माँसुन्ह के खंडा, लागे चुरै सो बड़ बड़ हंडा।

छागर बहुत समूची धरी सरागन्ह भूँजि।
जो अस जेंवन जेंवै उठै सिंघ अस गूँजि।

भूँजि समोसा घिउ महँ काढ़े, लौंग मरिच जिन्ह भीतर ठाढ़े।
और माँसु जो अनवन बाँटा, भए फर फूल आम औ भाँटा।
नारँग दारिउँ तुरँज जभीरा, औ हिंदवाना बालम खीरा।
कटहर बड़हर तेउ सँवारे, नरियर दाख खजूर छोहारे।
औ जावत जो खजहजा होहीं, जो जेहि बरन सवाद सो ओहीं।

उदाहरण के लिए इतना ही बस। कवि के ऊपर उद्धृत तथा इसी प्रसङ्ग में आगे के वर्णन को सुन कर भले ही भोजन-प्रिय लोगों

के मुँह में पानी भर आये, परन्तु उनका ध्यान ही इस बात की ओर न जायगा कि राजा होते हुए भी रतनसेन, आठ वर्ष तक निरन्तर चल रहे युद्ध के ठीक पीछे उक्त विविध मछलियाँ और चावल राजस्थान में कैसे एकत्र कर सका होगा ! सम्भव है जायसी के समय में इस प्रकार की वस्तु-गणना से कविता के रसिकों का मन न ऊबता रहा हो, किन्तु आज के पाठक तो इसे अरुचिकर ही समझेंगे।

यदि इस ढंग के वर्णन छोड़ कर हम इस काव्य के मार्मिक अंशों के ऊपर दृष्टिपात करेंगे तो वस्तु और वर्णन में कवि की निरीक्षण-शक्ति और चित्र प्रस्तुत करने की क्षमता के साथ ही सुरुचि का भी बोध होगा। पदमावत का कथानक प्रारंभ होते ही सिंहल द्वीप का चित्र हमारे सामने आता है। उसके समीप पहुँचते ही उसकी अमराई[1] मन को मोह लेती है—

जवहिं दीप नियरावा जाई, जनु कबिलास नियर भा आई।
घन अँबराउँ लाग चहुँ पासा, उठा भूमि हुत लाग अकासा।
तरिवर सबै मलयगिरि लाई, भइ जग छाँह रैनि होइ आई।
मलै-समीर सोहावन छाहाँ, जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।

---

१. आप यह न पूछिये कि ऐसी अमराई और इसके कटहल, बड़हल, खिरनी, महुआ आदि पेड़ों का अस्तित्व सिंहल में कहीं होगा अथवा हो सकता है कि नहीं। कवि को इससे प्रयोजन नहीं प्रतीत होता कि वस्तु का स्थल से कोई लगाव है या नहीं। वह तो अपने अवध में जैसी अमराई देखता है और जो अमराई उसको दिव्यलोक की अमराई की छाँह का सुख पहुँचाती है, उसी का वर्णन करता है। सच तो यह है कि पदमावत में वस्तु ऋतु आदि का वर्णन अवध का है—चाहे वह कथानक में सिंहल राजस्थान आदि का भले ही कहा गया हो।

× × ×

फरे आँब अति सघन सोहाए, औ जस फरे अधिक सिर नाए।
कटहर डार पींड सन पाके, बड़हर सो अनूप अति ताके।
खिरनी पाकि खाँड़ अस मीठी, जामुन पाकि भँवर अति डीठी।
नरियर फरे फरी फरहरी, फुरै जानु इंद्रासन पुरी।
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू, मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।

ऐसी अमराई विभिन्न पक्षियों के कलरव से नित्य ही गूँजती रहती है। आइये हम भी उस मधुर राग से अपने कर्ण-कुहर तृप्त करते चलें, जिसमें सदैव ऊर्ध्व की ओर उन्मुख करने का स्वर उठा करता है—

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा, करहिं हुलास देखि कै साखा।
भोर होत बोलहि चुहचुही, बोलहिं पाँडुक एकै तूही।
सारौं सुआ सो रहचह करहीं, कुरहिं परेवा औ करबरहीं।
पीव पीव कर लाग पपीहा, तुही तुही कर गडुरी जीहा।
कुहू कुहू करि कोइल राखा, औ भिंगराज बोल बहु भाखा।
दही दही करि महरि पुकारा, हारिल विनवै आपन हारा।
कुहकहिं मोर सोहावन लागा, होइ कुराहर बोलहिं कागा।

आगे कवि ने सिंहल नगर और उसकी हाट का भी दृश्य दिखलाया है—

सिंघलनगर देखु पुनि बसा, धनि राजा अस जे कै दसा।
ऊँचो पौरी ऊँच अवासा, जनु कैलास इन्द्र कर बासा।
राव रंक सब घर घर सुखी, जो दीखै सो हँसता-मुखी।
रचि रचि साजे चंदन चौरा, पोतें अगर मेद औ गौरा।
सब चौपारहि चंदन खभा, ओंठघि सभासद बैठे सभा।

मनहुँ सभा देवतन्ह कर जुरी, परी दीठि इंद्रासन पुरी।
सबै गुनी औ पंडित ज्ञाता, संसकिरित सबके मुख बाता।
अस कै मँदिर सँवारे जनु सिवलोक अनूप।
घर घर नारि पदमिनी मोहहिं दरसन-रूप।
पुनि देखी सिंहल कै हाटा, नवो निद्धि लछिमी सब बाटा।
कनक हाट सब कुहकुहँ लीपी, बैठ महाजन सिंघलदीपी।
रचहि हथौड़ा रूपन ढारी, चित्र कटाव अनेक सवारी।
सोन रूप भल भयेउ पसारा, धवल सिरी पोतहिं घर बारा।
रतन पदारथ मानिक मोती, हीरा लाल सो अनबन जोती।
औ कपूर बेना कस्तूरी, चंदन अगर रहा भरपूरी।

+ + +

लेइ के फूल बैठि फुलहारी, पान अपूरब धरे सँवारी।
सोंधी सबै बैठ लै गाँधी, फूल कपूर खिरौरी बाँधी।
कतहूँ पंडित पढ़हिं पुरानू, धरमपंथ कर करहिं बखानू।
कतहूँ कथा कहै किछु कोई, कतहूँ नाच-कूद भल होई।
कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा, कतहूँ पखंडी काठ नचावा।
कतहूँ नाद सबद होइ भला, कतहूँ नाटक चेटक कला।
कतहूँ काहु ठग विद्या लाई, कतहुँ लेहिं मानुष बौराई।

इसी सिंहल द्वीप में राजा गंधर्वसेन का गढ़ था। उसका वैभव देखते ही बनता है। उसकी भव्यता और विशालता भी दर्शनीय है।

पुनि आए सिंघल गढ़ पासा, का बरनौं जनु लाग अकासा।
तरहिं करिन्ह बासुकि कै पीठी, ऊपर इंद्र लोक पर दीठी।
परा खोह चहुँ दिसि अस बाँका, काँपै जाँघ जाइ नहि झाँका।
अगम असूझ देखि डर खाई, परै सो सपत-पतारहिं जाई।

नव पौरी बाँकी नव खंडा, नवौ जो चढ़ै जाइ बरम्हंडा।
कंचन कोट जरे नग सीसा, नखतहिं भरी बीजु जनु दीसा।
लंका चाहि ऊँच गढ़ ताका, निरखि न जाइ दीठि तन थाका।
हिय न समाइ दीठि नहिं जानहुं ठाढ़ सुमेर।
कहँ लगि कहौं ऊँचाई, कहँ लगि बरनौं फेर।
निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू, नाहिं त होइ बाजि रथ चूरू।
पौरी नवौ वज्र कै साजी, सहस सहस तहँ बैठे पाजी।
फिरहिं पाँच कोतवार सुभौंरी, काँपै पावैं चपत वह पौरी।
पौरिहि पौरि सिंह गढ़ि काढ़े, डरपहिं लोग देखि तहँ ठाढ़े।
बहु विधान वै नाहर गढ़े, जनु गाजहिं चाहहिं सिर चढ़े।
टारहिं पूँछ पसारहिं जीहा, कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा।
कनक-सिला गढ़ि सीढ़ी लाई, जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताई।
नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ बज्र केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ैं, सत सौं उतरै पार।
नव पौरी पर दसवँ दुआरा, तेहि पर बाज राज-घरियारा।

इस प्रकार के ब्योरे देते देते कवि को मानो ऊपर के किसी अज्ञात का स्मरण हो आता है। और वह उसका संकेत कराते चलना आवश्यक समझता है। ऊपर अमराई के प्रसंग में घनी छाया का उल्लेख करने पर जायसी कहते हैं—

पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू, दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।
जेइ वह पाई छाँह अनूपा, फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा।

ऐसे ही हाट का वर्णन करते हुए वे कहते चलते हैं—

जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा, ता कहँ आन हाट कित लाहा।

और

चरपट चोर गँठिछोरा मिले रहहिं ओहि नाच।
जो ओहि हाट सजग भा गथ ताकर पै बाँच।

और जब राजा के गढ़ में नव पौरियों के बाद दसवें द्वार की चर्चा कर के कहते हैं कि वहाँ बराबर राज-घरियाल (घंट) बजा करता है, तब तुरंत ही उस घड़ियाल से निकली हुई ध्वनि जीवधारियों को सचेत करती सुनाई पड़ती है कि--

परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा, का निचिंत माटी कर भाँड़ा।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ काँचे, आएहु रहै न थिर होइ बाँचे।
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ, का निचिंत होइ सोउ बटाऊ।
पहरहिं पहर गजर निति होई, हिया बजर मन जाग न सोई।

मुहमद जीवन-जल भरन, रहँट-घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति।

इस प्रकार के संकेत, इस काव्य में वस्तु-वर्णन और भाव-निरूपण सर्वत्र बीच-बीच में होते रहते हैं। कवि वस्तुतः इन्हीं के लिए तो यह प्रतीकात्मक कहानी कह रहा है। भले ही किसी को ये रचना-सौष्टव की दृष्टि से खटकें किन्तु कवि के लिए तो इनका अस्तित्व अनिवार्य है। आगे चल कर इसी ढंग को 'रामचरितमानस' में तुलसी ने अपनाया। उन्होंने तो स्पष्ट घोषणा भी कर दी कि--

यहि महँ आदि मध्य अवसाना, प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।

हाँ, तो जायसी ने सात समुद्रों के वर्णन में भी अधिकतर आध्यात्मिक विचारों का समावेश किया है किन्तु कहीं-कहीं अच्छा शब्द-चित्र भी उपस्थित करने में सफलता पाई है। नीचे उनके द्वारा

वर्णित किलकिला समुद्र का अवलोकन कीजिए। इसमें ऊँची लहरों के सम्बन्ध में की गई उत्प्रेक्षाएँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। उनसे वस्तु का रूप प्रत्यक्ष होने में बड़ी सफलता मिली है। जैसे चारों ओर ऊँची-ऊँची श्याम वर्ण की लहरें आकाश तक पहुँचती हुई उठ और गिर रही हैं, मानो, सभी ओर आकाश टूट कर गिर रहा है। सैकड़ों योजन ऊँची पर्वताकार लहरें आकाश छू रही हैं। उन्होंने धरती और आकाश को मिला कर एक कर दिया है, मानो सारा समुद्र ही (अपने पैरों पर) खड़ा हो गया है (और आकाश तक पहुँच गया है)। ऐसे विकटाकार किलकिला को देख कर देखने वाले का होशहवास क्यों न गुम हो जाय ?

पुनि किलकिला समुद महँ आए, गा धीरज देखत डर खाए।
भा किलकिल अस उठै हिलोरा, जनु अकास टूटै चहुँ ओरा।
उठै लहर परवत कै नाईं, फिरि आवै जोजन सौ ताईं।
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा, सकल समुद मानहुँ भा ठाढ़ा।
नीर होइ तर ऊपर सोई, माथे रंभ समुद जस होई।
फिरत समुद जोजन सौ ताका, जैसे भँवै कोहाँर क चाका।
भै परलै नियराना जबहीं, मरै जो जब परलै तेहि तबहीं।
गै औसान सबन्ह कर देखि समुद कै बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै रहा नैन अस काढ़ि।

जायसी ने बरात, विवाह, भोज आदि के वर्णन का भी ध्यान रखा है। इस प्रकार के वर्णन में आजकल निरर्थक समझे जाने वाले विस्तारपूर्वक कहे गये ब्योरे और नामों के उल्लेख को छोड़ देने पर चित्रात्मकता कम नहीं है। देखिए न, सिंहल में पदमावती के विवाह

की तैयारी, जिससे वहीं नहीं स्वर्ग में भी आनन्द की धूम मच गई—

लगन धरा औ रचा बियाहू, सिंघल नेवत फिरा सब काहू।
बाजन बाजे कोटि पचासा, भा अनंद सगरौं कैलासा।
जेहि दिन कहँ निति देव मनावा, सोइ दिवस पदमावति पावा।
चाँद सुरुज मनि माथे भागू, औ गावहिं सब नखत सोहागू।
रचि रचि मानिक माँडव छावा, औ भुइँ रात बिछाव बिछावा।
चंदन खाँभ रचे बहु भाँती, मानिक-दिया बरहिं दिन राती।
घर घर बंदन रचे दुवारा, जावत नगर गीत झनकारा।
हाट बाट सब सिंघल जहँ देखहु तहँ रात।
धनि रानी पदमावति जेहि कै ऐसि बरात।

तनिक पदमावती की चित्रशाला भी देखते चलिये, जहाँ विवाहोपरान्त वह रतनसेन से मिली—

पुनि तहँ रतनसेन पगु धारा, जहाँ नौ रतन सेज सँवारा।
पुतरी गढ़ि गढ़ि खंभन काढ़ी, जनु सजीव सेवा सब ठाढ़ी।
काहू हाथ चंदन कै खोरी, कोइ सेंदुर कोइ गहे सिंधोरी।
कोइ कुहँकुहँ केसर लिहे रहै, लावै अंग रहसि जनु चहै।
कोई लिहे कुमकुमा चोवा, धनि कब चहै ठाढ़ि मुख जोवा।
कोई बीरा कोइ लीन्हे बीरी, कोइ परिमल अति सुगँध-समीरी।
काहू हाथ कस्तूरी मेदू, कोइ कछु लिहे लाग तस भेदू।
पाँतिहि पाँति चहूँ दिसि सब सोंधे कै हाट।
माँझ रचा इंद्रासन पदमावति कहँ पाट।

अब लगे हाथ राजसी ज्योनार का दृश्य भी देख लेना चाहिये—

होइ लाग जेवनार पसारा, कनक-पत्र पसरे पनवारा।
सोन-थार मनि मानिक जरे, राय रंक के आगे धरे।

रतन-जड़ाऊ खोरा खोरी, जन जन आगे दस दस जोरी।
गडुवन हीर पदारथ लागे, देखि बिमोहे पुरुष सभागे।
जानहुँ नखत करहिं उजियारा, छपि गये दीपक औ मसियारा।

× × ×

पाँति पाँति सब बैठे, भाँति भाँति जेवनार।
कनक-पत्र दोनन्ह तर, कनक-पत्र पनवार।

पहिले भात परोसे आना, जनहुँ सुबास कपूर बसाना।
झालर माँडे आए पोई, देखत उजर पाग जस धोई।
लुचुई और सोहारी धरी, एक तौ ताती औ सुठि कोंवरी।
खँडरा बचका औ डुभकौरी, बरी एकोतर सौ कोहड़ौरी।
पुनि सँधाने आए बसाँधे, दूध दही के मुरंडा बाँधे।
औ छप्पन परकार जो आए, नहिं अस देख न कबहूँ खाए।
पुनि जाउरि पछियाउरि आई, घिरित खाँड कै बनी मिठाई।

जेंवत अधिक सुबासित, मुँह महँ परत बिलाइ।
सहस स्वाद सो पावै, एक कौर जो खाइ।

जायसी ने यात्रा-वर्णन भी लिखे हैं। युद्ध के अभियान और प्रेम के प्रयाण के ये वर्णन भी अच्छे बन पड़े हैं। शेरशाह की सेना के प्रस्थान की केवल चर्चा ही चलाई गई है, परन्तु वह थोड़ी होते हुए भी बहुत ओजमयी है—

बरनौं सूर भूमिपति राजा, भूमि न भार सहै जेहि साजा।
हय गय सेन चलै जग पूरी, परबत टूटि उड़हिं होइ धूरी।
रेनु रैनि होइ रबिहिं गरासा, मानुख पंखि लेहिं फिरि बासा।
भुइँ उड़ि अंतरिक्ख मृतमंडा, खंड खंड धरती बरम्हंडा।
डोलै गगन इन्द्र डरि काँपा, बासुकि जाइ पतारहि चाँपा।

मेरु धसमसै समुद सुखाई, बनखँड टूटि खेह मिलि जाई।
अगिलहि कहँ पानी लेइ बाँटा, पछिलहिं कह नहिं काँदौं आटा।
जो गढ़ नएउ न काहुहि चलत होइ सो चूर।
जब वह चढ़ै भूमिपति सेरसाहि जग सूर।

जिस समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया उस समय उसकी सेना का क्या रूप था और उसका कैसा आतंक छा गया था यह अधिक विस्तार पूर्वक वर्णित है—

लिखा पत्र चारिहु दिसि धाए, जावत उमरा बेगि बोलाए।
दुंद घात्र भा इंदु सकाना, डोला मेरु सेस अकुलाना।
धरती डोलि कमठ खरभरा, मथन-अरंभ समुद महँ परा।
साह बजाइ कढ़ा जग जाना, तीस कोस भा पहिल पयाना।
हस्ति घोड़ औ दर पुरुष जावत बेसरा ऊँट।
जहँ तहँ लीन्ह पलानै कटक सरह अस छूट।
चली पंथ पैगह सुलतानी, तीख तुरंग बाँक कनकानी।
कारे कुमँइत लील सनेवी, खंग कुरंग बोर दुर केवी।
अबलक अबसर अगज सिराजी, चौधर चाल समुँद सब ताजी।
खुरभुज नोकिरा जरदा भले, औ अगरान बोजसिर चले।
पँच कल्यान संजाव बखाने, महि सायर सब चुनि चुनि आने।
मुसुकी औ हिरमिजो इराकी, तुरुकी कहे भोथार वुलाकी।
सिर औ पोंछि उठाए चहुँ दिप साँस ओनाहिं।
रोस भरे जस बाउर पवन तरास उड़ाहिं।
लोहसार हस्ती पहिराए, मेघ साम जनु गरजत आए।
मेघहि चाहि अधिक वै कारे, भयउ असूझ देखि अँधियारे।
जसि भादों निसि आवै दीठी, सरग जाइ हिरकी तिन्ह पीठी।

सवा लाख हस्ती जब चाला, परबत सहित सबै जग हाला।
चले गयंद माति मद आवहिं, भागहिं हस्ती गंध जौ पावहिं।
ऊपर जाइ गगन सिर धँसा, औ धरती तर कहँ धसमसा।
भा भुइँचाल चलत जग जानी, जहँ पग धरहि उठै तहँ पानी।
चलत हस्ति जग काँपा, चाँपा सेस पतार।
कमठ जो धरती लेइ रहा, बैठि गयेउ गजभार।

× × ×

धनि सुलतान जेहिक संसारा, उहै कटक अस जोरै पारा।
सबै तुरुक-सिरताज बखाने, तबल बाज औ बाँधे बाने।
लाखन मार बहादुर जंगी, जँबुर कमानैं तीर खदंगी।
जीभा खोलि राग सौं मढ़े, लेजिम घालि एराकिन्ह चढ़े।
चमकहिं पाखर सार-सँवारी, दरपन चाहि अधिक उजियारी।
बरन बरन औ पाँतिहि पाँती, चली सो सेना भाँतिहि भाँती।
बेहर बेहर सब कै बोली, बिधि यह खानि कहाँ दहुँ खोली।
सात सात जोजन कर एक दिन होइ पयान।
अगिलहि जहाँ पयान होइ पछिलहि तहाँ मिलान।

× × ×

बादशाह हठि कीन्ह पयाना, इंद्र भँडार डोल भय माना।
नवे लाख असवार जो चढ़ा, जो देखा सो लोहे-मढ़ा।
बीस सहस घहराहिं निसाना, गलगंजहिं भेरी असमाना।
बैरख ढाल गगन गा छाई, चला कटक धरती न समाई।
सहस पाँति गज मत्त चलावा, धँसत अकास धसत भुइँ आवा।
बिरिछ उचारि पेड़ि सौं लेहीं, मस्तक झारि डारि मुख देहीं।
चढ़हिं पहार हिये भय लागू, बनखँड खोह न देखहिं आगू।

कोइ काहू न सँभारै, होत आव तस चाँप।
धरति आपु कहँ काँपै, सरग आपु कहँ काँप।
चलीं कमानै जिन्ह मुख गोला, आवहिं चली धरति सब डोला।
लागे चक्र वज्र के गढ़े, चमकहिं रथ सोने सब मढ़े।
तिन्ह पर विषम कमानैं धरीं, साँचे अष्टधातु कै ढरीं।
सौ सौ मन वै पीयहिं दारू, लागहिं जहाँ सो टूट पहारू।
माती रहहिं रथन्ह पर परी, सत्रुन्ह महँ ते होहिं उठि खरी।
जौ लागै संसार न डोलहिं, होइ भुइँकंप जीभ जौ खोलहिं।
सहस सहस हस्तिन्ह कै पाँती, खींचहिं रथ डोलहिं नहिं माती।
नदी नाव सब पाटहिं जहाँ धरहि वै पाव।
ऊँच खाल वन बीहड़ होत बराबर आव।

सेना के प्रयाण का ही नहीं उसके युद्ध का भी दृश्य विधान जायसी ने किया है। इसका सजीव चित्र देखिये—

ओनइ आए दूनौ दल साजे, हिंदू तुरक दुवौ रन गाजे।
दुवौ समुद दधि उदधि अपारा, दूनौ मेरु खिखिंद पहारा।
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले, औ हस्ती हस्ती सहुँ पेले।
आँकुस चमकि बीजु अस बाजहिं, गरजहिं हस्ति मेघ जनु गाजहिं।
धरती सरग एक भा, जूहहि ऊपर जूह।
कोई टरै न टारे, दूनौ वज्र-समूह।
हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहिं, जनु परवत परवत सौं बाजहिं।
गरू गयंद न टारे टरहीं, टूटहिं दाँत माथ गिरि परहीं।
परवत आइ जो परहिं तराहीं, दर महँ चाँपि खेह मिलि जाहीं।
कोइ हस्ती असवारहि लेहीं, सूँड़ समेटि पायँ तर देहीं।
कोइ असवार सिंघ होइ मारहिं, हनि कै मस्तक सूँड़ उपारहिं।

गरब गयंदन्ह गगन पसीजा, रुहिर चुवै धरती सब भीजा।
कोइ मैमंत सँभारहिं नाहीं, तब जानहिं जब गुद सिर जाहीं।
गगन रुहिर जस बरसै धरती बहै मिलाइ।
सिर धर टूटि बिलाहिं तस पानी पंक बिलाइ।
आठौं बज्र जूझ जस सुना, तेहि तें अधिक भएउ सौगुना।
बाजहिं खड़ग उठै दर आगी, भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी।
चमकहिं बीजु होइ उजियारा, जेहि सिर परै होइ दुइ फारा।
मेघ जो हस्ति हस्ति सहुँ गाजहिं, बीजु जो खड़ग खड़ग सौं बाजहिं।
बरसहिं सेल बान होइ काँदो, जस बरसै सावन औ भादों।
झपटहिं कोपि परहिं तरवारी, औ गोला ओला जस भारी।
जूझे बीर कहौं कहँ ताईं, लेइ अछरी कैलास सिधाईं।

जहाँ जायसी इस प्रकार का समष्टि युद्ध का वर्णन करने में समर्थ थे वहीं व्यष्टि वा द्वन्द्व युद्ध का वर्णन करने में भी प्रवीण थे। जब सुलतान अलाउद्दीन के बंदीगृह से छुड़ा कर बादल रतनसेन को ले कर चित्तौड़ की ओर बढ़ गया तब गोरा सहस्र कुमारों को साथ ले पीछा करती शाही सेना से भिड़ गया। अपने साथियों के वीरगति पाने के अनन्तर अकेला गोरा कैसे लड़ा यह देखिये—

गोरै देख साथि सब जूझा, आपन काल नियर भा बूझा।
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला, लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला।
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा, जैसे पवन बिदारै घटा।
जेहि सिर देइ कोपि करवारू, स्यों घोड़े टूटै असवारू।
लोटहिं सीस कवंध निनारे, माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे।
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा, चाँचरि खेलि आगि जनु लावा।
हस्ती घोड़ धाइ जो ढूका, ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका।

भइ अग्यां सुलतानी, बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ।
सबै कटक मिलि गोरहि छेका, गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका।
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा, पलटि सिंघ तेहि ठावँ न आवा।
तुरुक बोलावहिं बोलै बाँहा, गोरै मीचु धरी जिउ माँहा।
मुए पुनि जूझि जाज जगदेऊ, जियत न रहा जगत में केऊ।
जिनि जानहु गोरा सो सकेला, सिंघ के मोंछ हाथ को मेला।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा, मुए पाछि कोई घिसियावा।
करै सिंघ मुख सौहहिँ दीठी, जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी।
रतनसेन जो बाँधा मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुधिर न धोवौं तौ लगि होइ न रात।

यों गोरा ने अकेले ऐसा शौर्य प्रदर्शित किया कि अलाउद्दीन की सेना के दाँत खट्टे हो गये। अपने स्वामी की सेना की यह दशा देख सरजा अपने बल का बखान करता हुआ गोरा पर झपटा। उन दोनों का द्वन्द्व-युद्ध देखिये—

पहुंचा आइ सिंघ असवारू, जहाँ सिंघ गोरा वरियारू।
मारेसि साँग पेट महँ धँसी, काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी।
भाँट कहा धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै, तुरय देत है पाव।
कहेसि अंत अब भा भुइँ परना, अंत सो तंत खेह सिर भरना।
कहि के गरजि सिंघ अस धावा, सरजा सारदूल पहँ आवा।
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ, परा खड़ग जनु परा निहाऊ।
बज्र क साँग बज्र कै डाँड़ा, उठी आगि तस बाजा खाँडा।
जानहु बज्र बज्र सौं बाजा, सब ही कहा परी अब गाजा।

दूसर खड़ग कूंड़ पर दीन्हा, सरजे ओहि ओड़न पर लीन्हा।
तीसर खड़ग कंध पर लावा, काँध गुरुज हुत घाव न आवा।
तस मारा हठि गोरे उठी बज्र के आगि।
कोइ नियरे नहिं आवै सिंघ सदूरहि लागि।
तब सरजा गरजा बरिवंडा, जनहु सदूर केर भुजदंडा।
कोपि गुरुज मेलेसि तस बाजा, जनहु परी परबत सिरा गाजा।
ठाँठर टूट फूट सिर तासू, स्यों सुमेरु जनु टूट अकासू।
धमकि उठा सब सरग पतारू, फिरि गई दीठि फिरा संसारू।
भइ परलय अस सबही जाना, काढ़ा खड़ग सरग नियराना।
तस मारेसि स्यों घोड़ै काटा, धरती फाटि सेस फन फाटा।
जो अति सिंघ बरी होइ आई, सारदूल सौं कोनि बड़ाई।

जायसी ने इस द्वन्द्व युद्ध में सरजा और गोरा की सापेक्ष्य श्रेष्ठता का सङ्केत कैसी चतुराई से दिया है। यही चतुराई उन्होंने रतनसेन और देवपाल के द्वन्द्व युद्ध के सूचनात्मक जैसे वर्णन में भी दिखलाई है। जब रतनसेन चढ़ कर कुंभलनेर पहुँचा और उसकी एवं देवपाल की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं तब देवपाल ने रतनसेन को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारा। तदनन्तर उसने

मेलेसि साँग आइ बिष भरी, मेटि न जाइ काल कै घरी।
आइ नाभि तर साँग बईठी, नाभि वेधि निकसी सो पीठी।

इस प्रकार आहत होते हुए भी रतनसेन ने देवपाल को हाथ से जाने न दिया। ज्यों ही वह जाने को हुआ कि रतनसेन ने उस पर वार किया और देवपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया—

चला मारि तब राजै मारा, टूट कंध धर भएउ निनारा।

सीस काटि कै बैरी बाँधा, पावा दावँ बैर जस साधा।

उपर्युक्त और कुछ अन्य प्रकरणों में जायसी के वस्तु-चित्रण की जो सुघरता देखी जाती है वह उससे कहीं अधिक पदमावती के शारीरिक सौन्दर्य के वर्णन में मिलती है। यह इसलिए कि पदमावती अलौकिक सत्ता का प्रतिबिम्ब है और वह दिव्य सत्ता कवि की उपास्य। इसीलिए जायसी ने पूरी उमङ्ग के साथ पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन अनेक अवसरों पर किया है। उसकी प्रथम झलक देखिये और साथ ही उस सौन्दर्य के विश्व-व्यापक प्रभाव को भी ध्यान से हटने न दीजिये--

भै उनंत पदमावति बारी, रचि रचि विधि सब कला सँवारी।
जग बेधा तेहि अंग-सुबासा, भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा।
बेनी नाग मलयगिरि पैठी, ससि माथे होइ दूइज बैठी।
भौंह धनुक साधे सर फेरै, नयन कुरंग भूलि जनु हेरै।
नासिक कीर कँवल मुख सोहा, पदमिनि रूप देखि जग मोहा।
मानिक अधर दसन जनु हीरा, हिय हुलसे कुच कनक-गँभीरा।
केहरि लंक गवन गज हारे, सुरनर देखि माथ भुइँ धारे।
जग कोइ दीठि न आवै आछहिं नैन अकास।
जोगि जती संन्यासी तप साधहिं तेहि आस।

सो यह पदमावती अपनी सहेलियों के साथ एक दिन मानसरोदक स्नान के लिए गई। उस समय उसका सौन्दर्य कैसा था और वह कितना प्रभावशाली था--इसका जायसी ने बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है--

सरवर तीर पदुमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुकलाई।

ससि मुख अंग मलयगिरि बासा, नागन्ह झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।
ओनई घटा परी जग छाँहा, ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ।
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा, लेइ निसि नखत चाँद परगसा।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा, मेघघटा महँ चंद देखावा।
दसन दामिनी कोकिल भाखी, भौंहें धनुख गगन लेइ राखी।
नैन खँजन दुइ केलि करेहीं, कुच नारंग मधुकर रस लेहीं।
सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि देइ।

पदमावती का यह अलौकिक सौन्दर्य जायसी ने उसके नख-शिख-वर्णन के रूप में बहुत ही विस्तार के साथ अंकित किया है। जान पड़ता है कि उसके प्रति कवि का मन इतना लुभा गया था कि उसने प्रबन्ध काव्य के लिए वर्जित पुनरुक्ति की चिन्ता न कर के उस अनूठे सौन्दर्य का वर्णन दो अवसरों पर, सो भी पूरे ब्योरे के साथ किया—एक तो जिस समय रतनसेन के मन में पदमावती के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिए हीरामन उसका मादकतापूर्ण ढंग से विवरण प्रस्तुत करता है और दूसरे जब अलाउद्दीन के मन में रानी पदमावती के लिए चाह पैदा करने के लिए राघव चेतन उसका बखान करता है। इन दोनों प्रसङ्गों में पदमावती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का विशद रूप से वर्णन किया गया है। ऊपर उद्धृत अवतरण में उसके शरीर के जिन थोड़े से अवयवों की असाधारण शोभा का दिग्दर्शन मात्र है उनका बहुत विस्तारपूर्वक लुभावना वर्णन इन दोनों अवसरों पर किया गया है! हीरामन कुमारावस्था में पदमावती की माँग की शोभा यों बखानता है—

बरनौं माँग सीस उपराहीं, सेंदुर अबहि चढ़ा जेहि नाहीं।
विनु सेंदुर अस जानहु दीआ, उजियर पंथ रैनि महँ कीआ।
कंचन रेख कसौटी कसी, जनु घन महँ दामिनि परगसी।
सुरुज किरिन जनु गगन बिसेखी, जमुना माँह सुरसती देखी।
खाँड़ै धार रुहिर जनु भरा, करवत लेइ बेनी पर धरा।
तेहि पर पूरि धरे जो मोती, जमुना माँझ गंग कै सोती।
करवत तपा लेहिं होइ चूरू, मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू।
कनक दुआदस बानि होइ चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहिं नखत सब उवै गगन जस गाँग॥

इस वर्णन में दो बातें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—एक तो जिसकी ऐसी माँग है उसके लिए अपना शरीर किसी उपयोग का हो सके तो कितना अच्छा हो। इस आशा से तपस्वी करवत (आरा) से अपना शिर चिरवाते हैं कि हमारे रक्त को वह सिन्दूर बना कर उस माँग में लगा ले। यह तो हुआ उसमें अलौकिक सत्ता के प्रति संकेत। दूसरे, अभी वह माँग भरी नहीं, सौभाग्य चाहती है—यह कह कर सुआ रतनसेन को पदमावती के प्राप्त करने के लिए उत्सुक करता है।

अब राघव चेतन के द्वारा वर्णित रानी पदमावती की वेणी की सुषमा देखिये—

वेनी छोरि झार जौ केसा, रैनि होइ जग दीपक लेसा।
सिर हुँत बिसहर परे भुइँ बारा, सगरौं देस भएउ अँधियारा।
सकपकाहिं विष-भरे पसारे, लहरि-भरे लहरहिं अति कारे।
जानहुँ लोटहिं चढ़े भुअंगा, बेधे वास मलयगिरि-अंगा।

लुरहिं मुरहिं जनु मानहिं केली, नाग चढ़े मालति कै बेली।
लहरैं देइ जनहुँ कालिन्दी, फिरि फिरि भँवर होइ चित-बंदी।
चँवर ढुरत आछै चहुँ पासा, भँवर न उड़हिं जो लुबुधे बासा।
होइ अँधियार बीजु घन लौकै जबहि चीर गहि झाँप।
केस-नाग कित देख मैं, सँवरि सँवरि जिय काँप।

जब पदमावती अपने लंबे केश खोल देती है तब सारे जगत में अँधेरा छा जाता है—यह कह कर यहाँ भी कवि उसके अलौकिक सत्ता के प्रतीकत्व की सूचना देता है। काले कुटिल केशों की छवि का यह वर्णन अलाउद्दीन के लिए उद्दीपन का काम करे यही इसका उद्देश्य है। जैसा ऊपर कह आये हैं पदमावती के सौन्दय के विशद वर्णन के द्वारा कवि सर्वत्र यही दिखाना चाहता है कि वह भागवत सत्ता के ही सौन्दर्य की झलक मात्र है। निराकारोपासक होने के कारण जायसी ने कहीं भी यह न लिखा कि पदमावती परमात्मस्वरूपा है, किन्तु उसके सौन्दर्य का अखिल विश्व के समस्त चेतन अचेतन मानव एवं अन्य जीवों पदार्थों आदि के ऊपर पड़ा हुआ प्रभाव यह सूचित करने के लिए यथेष्ट है कि वह प्रतीक रूप में उसी दिव्य सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है।

जायसी ने प्रकृति का चित्रण भी किया है, किन्तु अधिकतर पात्रों के मनोगत भावों के उद्दीपन के निमित्त ही। सिंहल द्वीप के वर्णन के प्रसङ्ग में प्रकृति के दृश्य-विधान की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। जहाँ वस्तु-गणना ही की गई है, वहाँ, वर्णन की चारुता कहाँ। जहाँ अलंकार विशेष के प्रदर्शन अथवा अदृश्य रूप की ओर संकेत करने के लिए भी प्रकृति का उपयोग हुआ है वहाँ भी बहुधा उसमें

चित्रात्मकता नहीं। फिर भी बीच-बीच में ऐसे मनोरम दृश्य आ जाते हैं—

ताल तलावरि बरनि न जाहीं, सूझै बार पार किछु नाहीं।
फूले कुमुद सेत उजियारे, जानहुँ उए गगन महँ तारे।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी, चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी।
पौरहि पंखि सो संगहि संगा, सेत पीत राते बहु रंगा।
चकई चकवा केलि कराहीं, निसि के बिछोह दिनहि मिलि जाहीं।
कुररहिं सारस करहिं हुलासा, जीवन मरन सो एकहिं पासा।
बोलहिं सोन ढेक बगलेदी, रही अबोल मीन जल भेदी।
नग अमोल तेहि तालहिं दिनहिं बरहिं जनु दीप।
जो मरजिआ होइ तहँ सों पावइ वह सीप॥

ऋतुओं के वर्णन जहाँ संयोग अथवा वियोग के उद्दीपन के रूप में हुए हैं वहाँ भी यदा कदा उनमें प्रकृति के रम्य रूप का दर्शन होता है। षड्ऋतु-वर्णन के प्रसंग में विविध ऋतुओं में प्रियतम के मिलन का सुख भोग रही पदमावती का उल्लास देखा जाता है। उसमें प्राकृतिक सुषमा का चित्रण भी हो गया है।

यथा—

रितु पावस बरसै पिउ पावा, सावन भादौं अधिक सोहावा।
पदमावति चाहत ऋतु पाई, गगन सोहावन भूमि सोहाई।
कोकिल बैन पाँत बग छूटी, धनि निसरीं जनु बीरबहूटी।
चमक बीजु बरसै जल सोना, दादुर मोर सबद सुठि लोना।
सीतल बूँद ऊँच चौपारा, हरियर सब देखाइ संसारा।
हरियर भूमि कुसुंभी चोला, औ धनि पिउ सँग रचा हिंडोला।

पवन झकोरे होइ हरष, लागे सीतल बास।
धनि जानै यह पवन है, पवन सो अपने आस॥

नागमती के वियोग के वर्णन में बारहमासे के द्वारा मुख्यतया उसकी मनोव्यथा के विविध चित्र खींचे गये हैं, किन्तु यत्र तत्र प्रकृति की रमणीयता भी दिखलाई पड़ती है। जैसे,

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, साजा बिरह दुंद दल बाजा।
धूम साम धौरे घन धाए, सेत धजा बग पाँति देखाए।
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा, बुंद बान बरसहिं घन घोरा।
अद्रा लाग लागि भुइँ लेई, मोहिं बिनु पिउ को आदर देई।

× × ×

भा बैसाख तपनि अति लागी, चोला चीर चँदन भा आगी।
सूरुज जरत हिवंचल ताका, बिरह बजागि सौंह रथ हाँका।
जरत बजागिनि करु पिउ छाँहा, आइ बुझाउ अँगारन्ह माँहा।
लागिउँ जरै जरै जस भारू, फिर फिर भूँजेसि तजेउ न बारू।
सरवर हिया घटत निति जाई, टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका, दीठि दवँगरा मेरवहु एका।
कवँल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिउ सींचै आइ॥

वस्तु का स्वाभाविक चित्र आँकने में जायसी कितने निपुण थे इसका एक और मनोरम प्रसङ्ग उस समय देखा जाता है जिस समय कौमारावस्था में पदमावती अपनी समवयस्का सहेलियों के साथ मानसरोवर नहाने गई थी। वे सब भी उसी के समान अविवाहिता थीं। मायके में परस्पर निःसङ्कोच बातें करने और खेलने-कूदने का

जो अवसर उमङ्ग से भरी युवतियों को मिला करता है, उसकी कैसी सहज सलोनी छवि इस उद्धरण में देखी जाती है—

एक दिवस पूनिउँ तिथि आई, मानसरोदक चली अन्हाई।
पदमावति सब सखी बुलाई, जनु फुलवारि सबै चलि आई।
खेलत मानसरोवर गईं, जाइ पाल पर ठाढ़ी भईं।
देखि सरोवर रहसहिं केली, पदमावति सौं कहहिं सहेली।
ए रानी मन देखु बिचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगि अहै पिता कर राजू, खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गवनब काली, कित हम कित यह सरवर पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथा, कित मिलि कै खेलब एक साथा।

× × ×

मिलहिं रहसि सब चढ़हिं हिंडोरी, झूलि लेहिं सुख बारी भोरी।
झूलि लेहु नैहर जब ताईं, फिरि नहि झूलन देइहिं साईं।

× × ×

सरवर तीर पदुमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुकलाई।
ससि मुख अंग मलयगिरि वासा, नागन्ह झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।
धरी तीर सब कंचुकि सारी, सरवर महँ पैठीं सब बारी।
पाइ नीर जानौं सब बेली, हुलसहिं करहिं काम कै केली।
करिल केस बिसहर बिसभरे, लहरैं लेहिं कवँल मुख धरे।
सरिवर नहिं समाइ संसारा, चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा।

× × ×

लागीं केलि करै मँझ नीरा, हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा।
पदमावति कौतुक कहँ राखी, तुम ससि होहु तराइन्ह साखी।
बाद मेलि कै खेल पसारा, हार देइ जो खेलत हारा।

सँवरिहि साँवरि, गोरिहि गोरी , आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी ।
बूझि खेल खेलहु एक साथा , हार न होइ पराए हाथा ।

वस्तु और रूप का सजीव वर्णन करने की अपेक्षा जायसी को पात्रगत भावों के उद्घाटन में कहीं अधिक सफलता मिली है। पदमावत में जीवन के विस्तृत चित्रण का अभाव है। उसमें प्रेम का वर्णन ही प्रधान है। जायसी ने काव्य शास्त्र के बँधे-बँधाये ढाँचे के अनुसार रस के विविध अवयवों के साङ्गोपाङ्ग निरूपण की चेष्टा नहीं की। उन्होंने केवल उन्हीं बातों का वर्णन किया जिनसे प्रेमी और प्रेमिका की मानसिक दशा का पूरा पूरा पता चल जाय। उन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों के निरूपण का प्रयास किया है, किन्तु जान पड़ता है उनकी वृत्ति वियोग के समय मन की दशाओं का जितना सूक्ष्म निरीक्षण एवं प्रदर्शन करने में रमी थी उतनी संयोग काल की मानसिक स्थिति में नहीं। फिर भी यह कहना ठीक न होगा कि संभोग शृङ्गार की ओर उन्होंने यथेष्ट दृष्टिपात नहीं किया। प्रेमोद्गारों की अभिव्यक्ति एवं प्रेम-दशाओं का चित्रण करते समय जायसी ने पात्र के अभिजात कुल में जन्म वा समाज में प्राप्त प्रतिष्ठा के अनुरूप कृत्रिमतापूर्ण वर्णन नहीं किये, किन्तु मानवोचित सहज तथा स्वाभाविक रूप में किये हैं। उनके काव्य के व्यक्ति नाम भर को राजकुलोद्भव हैं, परन्तु विचारों और भावों को प्रकट करने में सामान्य मानव से तनिक भी भिन्न नहीं हैं। जायसी की यह विशेषता उनके पात्रों के प्रति सर्वसाधारण को अपने इतना निकट खींच लाने में समर्थ हुई है। इस बात को ध्यान में रखने से पदमावत के पात्रों के भाव-निरूपण का वास्तविक सौन्दर्य दिखलाई पड़ेगा।

यौवनागम के समय नारी समाज में प्रचलित वैवाहिक सम्बन्ध का अनुभव करने लगती है। वह अपने मन की यह अनुभूति किसी आत्मीय से कहने के लिए आकुल हो उठती है। बहुधा किसी सहेली से मन का यह भेद खोलने में लज्जाशीला युवती सङ्कोच नहीं करती। एक दिन पद्मावती अपनी यह मनोदशा अपने पिता के द्वारा अपने पास रखे हीरामन सुए से कह ही तो बैठी—

सुनु हीरामनि कहौं बुझाई, दिन दिन मदन सतावै आई।
पिता हमार न चालै बाता, त्रासहि बोलि सकै नहिं माता।
देस देस के बर मोहि आवहिं, पिता हमार न आँख लगावहिं।

सम्भोग शृङ्गार का वर्णन करते समय जायसी ने पद्मावती को नारी के ही रूप में देखा है। उस समय वह उसमें अलौकिकता की झलक देखना भूल सा गये थे। इसी से उन्होंने ऐसी बातें भी नितान्त खुल कर कह डाली हैं जिन्हें मर्यादित नहीं कहा जा सकता, भले ही उनमें वास्तविकता हो सकती हो और आज के घोर यथार्थ-वादी कवि या कविता-प्रेमी उन्हें कितना ही क्यों न सराहें। इसी से उन्हें उद्धृत करने में सङ्कोच होता है। फिर भी प्रियतम से पहले पहल मिलने पर पद्मावती के द्वारा अपने मन की मिलन-उत्कण्ठा के प्रकट करने का यह रसमय प्रकरण दर्शनीय है—

जब हीरामन भएउ सँदेसी, तुम्ह हुत मँडप गइउँ परदेसी।
तोर रूप तस देखेउँ लोना, जनु जोगी तू मेलेसि टोना।
सिधि-गुटिका जो दिस्टि कमाई, पारहि मेलि रूप बैसाई।
भुगुति देइ कहँ मैं तोहि दीठा, कँवल-नैन होइ भौंर बईठा।
नैन पुहुप तू अलि भा सोभी, रहा बेधि अस उड़ा न लोभी।

जाकरि आस होइ जेहि, तेहि पुनि ताकरि आस।
भौंरि जो दाधा कँवल कहँ, कस न पाव सो बास॥

कौन मोहनी दहुँ हुति तोही, जो तोहि बिथा सो उपनी मोही।
विनु जल मीन तलफ जस जीऊ, चातकि भइउँ कहत पीउ पीऊ।
जरिउँ बिरह जस दीपक-बाती, पंथ जोहत भइ सीप सेवाती।
डाढ़ि डाढ़ि जिमि कोइल भई, भइउँ चकोरि नींद निसि गई।
तोरे पेम पेम मोहिं भएऊ, राता हेम अगिनि जिमि तएऊ।

जैसा कह चुके हैं जायसी को विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में आश्चर्यजनक सफलता मिली है। स्वयं भी प्रेम की पीर से व्याकुल रहने वाले सूफी साधक के काव्य का यही अंश सब से लुभावना भी है। पदमावती को रतनसेन के मिलने के पूर्व ही उसकी प्रेम-साधना के प्रभाव का अनुभव हुआ था। तभी हीरामन से राजा के सिंहल-द्वीप में आने का समाचार सुनने के पहले ही एक दिन—

पदमावती तेहि जोग सँजोगा, परी पेम बस गहे बियोगा।
नींद न परे रैनि जौं आवा, सेज केंवाच जानु कोइ लावा।
दहै चंद औ चंदन चीरू, दगध करै तन बिरह गँभीरू।
कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी, तिलतिल भर जुग जुग जिमि गाढ़ी।
गहै बीन मकु रैनि बिहाई, ससि वाहन तब रहै ओनाई।
पुनि धनि सिंघ उरेहै लागै, ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै।

और रतनसेन के बंदी हो कर दिल्ली चले जाने पर पदमावती की वियोग-व्यथा उसके इस विलाप में आज भी प्रतिध्वनित हो रही है—

नीर गँभीर कहाँ हो पिया, तुम्ह बिनु फाटै सरवर-हिया।

गएहु हेराइ परेहु केहि हाथा, चलत सरोवर लीन्ह न साथा।
चरत जो पंखि केलि कै नीरा, नीर घटे कोइ आव न तीरा।
कँवल सूख पखुरी बेहरानी, गलि गलि कै मिलि छार हेरानी।
बिरह रेत कंचन तन लावा, चून चून कै खेह मेरावा।
कनक जो कन कन होइ बेहराई, पिय कहँ छार समेटै आई।
बिरह पवन वह छार सरीरू, छारहि आनि मेरावहु नीरू।
अबहुँ जियावहु कै मया, बिथुरी छार समेट।
नइ काया अवतार नव, होइ तुम्हारे भेंट।

परन्तु कवि ने वियोग की प्रत्यक्ष मूर्ति खड़ी कर दी है नागमती के बारहमासे में। सारी प्रकृति मानो उसके साथ मिल कर रतनसेन के लिए तड़प उठी है। उस प्रकरण का एक एक शब्द विरहिणी नारी के हृदय का सच्चा और अकृत्रिम उद्गार है। वह उसी मार्ग में आँख गड़ाये बैठी रहती जिससे सुए के बहकाने से रतनसेन उसे छोड़ कर चला गया था। उसकी दशा कैसी हो गई थी, देखिये—

बिरह बान तस लाग न डोली, रकत पसीज भीजि गइ चोली।
सूखा हिया हार भा भारी, हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी।
खन एक आव पेट महँ साँसा, खनहि जाइ जिउ होइ निरासा।
पवन डोलावहिं सींचहिं चोला, पहर एक समुझहिं मुख बोला।
प्रान पयान होत केइँ राखा, को मिलाव चात्रिक कै भाखा।
आह जो मारी बिरह की, आगि उठी तेहि हाँक।
हंस जो रहा सरीर महँ, पंख जरे तन थाक॥

इस प्रकार विरह की सताई जर्जर नागमती ने जिस प्रकार रो रो कर बारह महीने बिताये (रोइ गँवाये बारहमासा) उसकी थोड़ी सी

बानगी लीजिए। सावन में सारा संसार हरा-भरा है किन्तु वियोगिनी सूख रही है। उसे तो जीवन की यात्रा की राह ही दिखलाई नहीं पड़ती। देखिये न—

सावन बरस मेह अति पानी, भर जोबन हौं बिरह झुरानी।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा, भइ बाउरि कहँ कंत सरेखा।
रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी, रेंगि चलीं जस बीरबहूटी।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला, हरियरि भूमि कुसुंभी चोला।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा, बिरह झुलाइ देइ झकझोरा।
बाट असूझ अथाह गँभीरी, जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी, मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।
परवत समुद अगम बिच बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेंटौं कंत तुम्ह ना मोहि पाँव न पाँख।

अब देखिये पूस में विरह-विधुरा रानी कैसी थरथर काँप रही है। उसे सहारा देने के लिए पति अब तक नहीं आया—

पूस जाड़ थर थर तन काँपा, सुरुज जाइ लंका दिसि चाँपा।
बिरह बाढ़ दारुन भा सीऊ, कँपि कँपि मरौं लेइ हरि जीऊ।
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरे, पंथ अपार सूझ नहिं नियरे।
सौंर सुपेती आवै जूड़ी, जानहु सेज हिवंचल बूड़ी।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला, हौं दिन राति बिरह कोकिला।
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी, कैसे जियै बिछोही पँखी।
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा, जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा।
रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख।

इसी प्रकार अनेक मार्मिक चित्र 'बारहमासा' में जायसी ने

उरेहे हैं।

वीर-दर्प की भी छटा पदमावत में अनूठी है। सिंह पर सवार सरजा के हाथ से मिले अलाउद्दीन के पत्र में पदमावती देने की बात पढ़ते ही रतनसेन का क्षात्र तेज दमक उठा। उसने तमक कर कहा—

का मोहिं सिंघ देखावसि आई, कहौं तौ सारदूल धरि खाई।
भलेहिं साह पुहुमीपति भारी, माँग न कोउ पुरुष कै नारी।
जो सो चक्कवै ताकहँ राजू, मँदिर एक कहँ आपन साजू।
को मोहिं तें अस सूर अपारा, चढ़ै सरग खसि परै पतारा।
हौं रनथँभउर-नाह हमीरू, कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।
हौं सो रतनसेन सक-बंधी, राहु बेधि जीता सैरंधी।
हनुवँत सरिस भार जेइ काँधा, राघव सरिस समुद जो बाँधा।
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका, सिंघलदीप लीन्ह जौ ताका।

जिस समय बादल की माँ ने बादशाह की सेना का भय दिखलाते हुए उसे बालक समझ रण में जाने से रोका उस समय उसका उत्साह देखते ही बनता है। वह कहता है—

मातु न जानसि बालक आदी, हौं बादला सिंघ रनबादी।
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा, सिंघ क जाति रहै किमि छपा।
तौ लगि गाज न गाज सिंघेला, सौंह साह सौं जुरौं अकेला।
को मोहि सौंह होइ मैमंता, फारौं सूँड़ उखारौं दंता।
जुरौं स्वामि-सँकरे जस ढारा, पेलौं जस दुरजोधन भारा।
अंगद कोपि पाँव जस राखा, टेकौं कटक छतीसौ लाखा।
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौं, दहौ समुद्र स्वामि-बँदि छोरौं।

ऐसे ही, गोरा की यह हाँक भी सुनते चलिये—

फिरि आगे गोरा तब हाँका, खेलौं करौं आजु रन साका।
हौं कहिए धौलागिरि गोरा, टरौं न टारे बाग न मोरा।
सोहिल जैस गगन उपराहीं, मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं।
सहसौ सीस सेस सम लेखौं, सहसौ नैन इंद्र सम देखौं।
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू, कंस न रहा और को राजू।
हौं होइ भीम आजु रन गाजा, पाछे घालि दंगवै राजा।
होइ हनुवँत जमकातर ढाहौं, आजु स्वामि साँकरे निबाहौं।

होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद महँ मेंड़।
कटक साह कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेंड़।

इसी भाँति जायसी ने वस्तु एवं भाव दोनों के वर्णन यथोचित रूप में करके अपनी सहृदयता और काव्य की रचना करने में कुशलता प्रदर्शित की है।

चरित्र-विधान

कहने को पदमावत की कहानी है तो राजा रतनसेन और रानी पदमावती की आख्यायिका, किन्तु उसमें लोक-प्रचलित राजा-रानी की कहानी का रूढ रूप भी समाविष्ट है। साथ ही उसके राजा-रानी राजसी वैभव से सम्पन्न होते हुए भी अपने नित्य प्रति के कामों और भावों की दृष्टि से जन-साधारण से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं दिखलाई पड़ते। कहानी की घटनाओं में लोककथा के समान लौकिक और अलौकिक व्यापारों और पात्रों का विचित्र सम्मिश्रण है। इसकी घटनाएँ होती तो हैं नर-नारी के प्रेम को ले कर, किन्तु उनको देवी-देवताओं का सहयोग मिलता है, राक्षस से बाधा पहुँचती

है, योग के अदृश्य प्रभाव का सहारा मिलता है, समुद्र जैसे अचेतन का योग उपलब्ध होता है, यहाँ तक कि पक्षियों तक की संवेदना और सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार इस कहानी में परम्परागत पुरातन कहानी के दिव्य और अदिव्य दोनों तत्त्व घुले-मिले हैं। इतना ही नहीं, ऐसे पुरातन विश्वास भी इसमें संरक्षित हैं जिनके अनुसार मनुष्य के कामों में ऊर्ध्व के देवता और निम्नयोनि के पक्षी सभी हाथ बँटाते हैं, यहाँ तक कि अचेतन तक अवसर आने पर चेतन का सा आचरण करते हैं।

आज भले ही चर-अचर एवं दिव्य-अदिव्य का ऐसा मेल आख्यान का विषय न बन सके, किन्तु जायसी के इस काव्य में यह ऐसे ढंग से वर्णित है जैसे यह मानव-समाज में प्रचलित नितान्त स्वाभाविक नित्य-प्रति का कार्य कलाप था। इसी मध्यकालीन धारणा के अनुसार पदमावती के पास **हीरामन सुआ** महापंडित था। वह कंचन वर्ण का अत्यन्त सलोना था। वह पदमावती के साथ वेद-शास्त्र पढ़ता था। मनुष्य की भाषा बोल सकता था। उसकी बातें ज्ञान से भरी होती थीं। उसी ने राजा रतनसेन को पदमावती के सौन्दर्य का विशद वर्णन सुनाया था और उसके भीतर दिव्य सत्ता की झलक का सङ्केत करके प्रेममार्ग प्रदर्शित किया था। कवि ने उसे आध्यात्मिक गुरु के रूप में भी चित्रित किया है। वह राजा रतनसेन को सिंहल का पथ ही नहीं दिखलाता, अपितु उसके निराश होने पर ढारस बँधाता है। पदमावती को भी वह रतनसेन के सम्बन्ध में बराबर बतलाता रहता है। यहाँ तक कि जब महादेव ने गन्धर्व-सेन को रतनसेन का वास्तविक परिचय दिया कि यह जोगी वेशधारी

तुम्हारे गढ़ में घुसा चोर नहीं चित्तौड़ का अधिपति है, तब हीरामन ने साक्षी दे कर सब बातें बतला दीं। गन्धर्वसेन को उसके साक्ष्य पर रतनसेन की प्रेम-साधना का पूरा विश्वास हो गया।

पदमावत में एक और पक्षी का उल्लेख है। उसको कोई नाम नहीं दिया गया। नागमती के वियोग की ज्वाला से चित्तौड़ पक्षियों से शून्य हो गया। एक दिन आधी रात में एक विहंगम उससे बोला कि "तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी, केहि दुख रैनि न लावसि आँखी ?" इस पर नागमती ने उसे अपनी वेदना की करुण कहानी कह सुनाई। वह पक्षी नागमती का सन्देश ले कर सिंहल पहुँचा। वहाँ आखेट के लिए वन में घूमते हुए रतनसेन जिस पेड़ के नीचे विश्राम के लिए रुका था उसी की डाल पर वह बैठा था। उसी पर बहुतेरे दूसरे पक्षी भी बैठे थे। उन सब ने पूछा कि "अहो मीत काहे तुम सामा ?" इस पर उसने कहा कि—

नगर एक हम देखा, गढ़ चितउर ओहि नाँव।
सो दुख कहौं कहाँ लगि, हम दाढ़े तेरी ठाँव।

इसके बाद उसने रानी नागमती के विरह से जल मरने की करुणा भरी चर्चा उठा कर कहा कि उसकी विरहाग्नि से

हौं पुनि तहाँ सो दाढ़ै लागा, तन भा साम, जीउ लै भागा।

रतनसेन को इस चतुराई से नागमती का स्मरण करा कर वह पक्षी कहानी में जैसे अकस्मात् आया था वैसे ही उड़ गया। फिर कहीं उसके बोल नहीं सुनाई पड़े। इसी प्रकार, समुद्र में विभीषण के किसी राक्षस के हाथ से रतनसेन और पदमावती का उद्धार 'राज पक्षी' करता है। वह उस राक्षस को ले कर कहीं उड़ जाता

है। केवल इतना इस राजपक्षी का कार्य पदमावत काव्य में वर्णित है।

पदमावत में समुद्र के भिखारी का रूप धारण कर रतनसेन से दान माँगने का भी प्रसङ्ग आया है। दान न देने पर राजा के जहाज समुद्री आँधी में पड़ गये। जान पड़ता है समुद्र ने कुपित हो कर यह काण्ड उपस्थित किया था। बाद में पदमावती से अलग हो जाने पर आत्म-हत्या के लिए प्रस्तुत रतनसेन की रक्षा ब्राह्मण वेशधारी समुद्र ने की। उस समय राजा और समुद्र का लंबा-चौड़ा वार्तालाप भी हुआ। अन्त में समुद्र ने उसे पदमावती के पास पहुँचा दिया। फिर कुछ दिन तक आतिथ्य करके विदा करते समय राजा को अमृत, हंस, विशेष प्रकार का पक्षी, शार्दूल-शावक एवं पारस पत्थर भेंट किये।

चित्तौड़ की ओर जाते हुए रतनसेन के बोहितों के पथ-भ्रष्ट हो कर लङ्का की ओर चल पड़ने पर विभीषण के मछुए पाँच शिर और दश बाहु के काले विकराल राक्षस के कोप-भाजन हुए। उसने राजा के साथ विश्वासघात किया। कारण, उसके मन में आया कि पदमावती तो विभीषण को दे दूँगा और शेष सब को स्वयं खा जाऊँगा। अतएव उसने ठीक राह दिखाने के बहाने बोहितों को महिरावण की पुरी की ओर मोड़ दिया। जब फिर से उठी भीषण आँधी के बीच बोहित समुद्र की भँवरों में चक्कर खाने लगे तभी अकस्मात् झपट्टा मार कर कोई 'राजपक्षी' उस राक्षस को उड़ा ले गया।

दिव्य पात्रों में समुद्र कन्या लक्ष्मी ने समुद्र में राक्षस के चंगुल

से छूटी पदमावती को मूर्च्छित अवस्था में पाया था। उसने उसे गोद में लिटा कर सचेत किया। पदमावती ने देखा कि रतनसेन वहाँ न था। तब उसने समझा कि रतनसेन डूब गया होगा। इससे वह सती होने को प्रस्तुत हुई। लक्ष्मी ने उसे समझा बुझा कर रोका। उधर रतनसेन भी एक टीले से जा लगा। चेत आने पर पदमावती को पास न पाने से वह आत्म-हत्या करने चला। इतने में लक्ष्मी ने पदमावती का रूप धर कर उसके प्रेम की अनन्यता की परीक्षा ली। उसके खरे उतरने पर उसको पदमावती से ला मिलाया।

मध्यकालीन लोक कथा-साहित्य में गौरा पार्वती और महादेव के बिना कहीं राजा-रानी का संयोग नहीं जुड़ा। सो पदमावत में भी ये विद्यमान हैं। महादेव ने तप करते हुए रतनसेन के प्रेम की दृढ़ता की जाँच की। जब उसे सब प्रकार खरा पाया तब सिद्धि गुटिका दी और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बताया। जब गन्धर्वसेन के द्वारा पकड़े जाने पर रतनसेन को सूली दी जाने को थी तब भाट का रूप बना कर महादेव ने राजा गन्धर्वसेन को योगी वेशधारी रतनसेन का वास्तविक रूप बतलाया और हीरामन के द्वारा उसके सिंहल लाये जाने का उल्लेख किया। हीरामन का साक्ष्य सुन कर अन्त में गन्धर्वसेन ने रतनसेन को पदमावती देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार महादेव ने प्रत्यक्ष रूप से इस कथानक में कार्य सम्पन्न किया।

यह तो हुई पदमावत के ऐसे पात्रों की चर्चा जो मानवेतर श्रेणी के थे। अब हम उन व्यक्तियों की विशेषताएँ देखने की चेष्टा करेंगे जिनके ऊपर इस काव्य की कथा का प्रबन्ध निर्भर है। सबसे पहले पदमावती को लीजिए। यही आख्यान का केन्द्र-बिन्दु है। इसी का

आश्रय ले कर उसकी सभी घटनाओं का स्रोत फूटा है। सिंहल की राजकुमारी और आगे चल कर चित्तौड़ की राजरानी होते हुए भी पदमावती में कोई भी राजसी बात नहीं मिलती। उसमें सामान्य नारी के स्वभाव और गुण ही पाये जाते हैं। उसके रूप का प्रभाव विश्व के चेतन और अचेतन सभी पदार्थों पर व्याप्त दिखलाया गया है। यहाँ तक कि सिंहल के मन्दिर में वसन्त पञ्चमी के दिन उसको देखते ही मन्दिर का देवता ही वहाँ से चल बसा था।[1] फिर भी उसका व्यवहार कहीं भी अलौकिक या असाधारण नहीं है। इतना ही नहीं, वह राजकुमारी का सा भी नहीं है। साधारण नारी का-सा ही है। 'रामचरितमानस' में पार्वती-पूजन के पूर्व जानकी राम को फुलवारी में देख चुकी थीं। उनकी शोभा उनके मन में बस गई थी। वे अपना मन उन्हें दे चुकी थीं। और यद्यपि 'सुमिरि पिता पन मन अति छोभा' था, फिर भी चाहती थी कि इन्हीं से मेरा विवाह हो, परन्तु तो भी उन्होंने गिरिजा से प्रार्थना करके अपने मन की बात खोल कर नहीं कही। इतना ही कहा कि

मोर मनोरथ जानहु नीके, बसहु सदा उर पुर सबही के।

इस तरह की मर्यादाशीला सिंहल की राजकुमारी नहीं है। वह श्रीपंचमी को महादेव की पूजा करके सहज भाव से अपने मन की

---

१. पदमावति गै देव दुवारा, भीतर मँडप कीन्ह पैसारा।
देवहि संसै भा जिउ केरा, भागौं केहि दिसि मंडप घेरा।
× × +
और
उतरु को देइ देव मरि गएउ, सबद अकूट मँडप महँ भएउ।

उस समय की भावना कहने में आनाकानी नहीं करती। कहती है—

और सहेली सबै बियाहीं, मो कहँ देव कतहुँ बर नाहीं।
हौं निरगुनि जेइ कीन्ह न सेवा, गुनि निरगुनि दाता तुम देवा।
बर सँजोग मोंहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै बेगि चढ़ावहुँ आनि॥

सो यह मनौती मानने की पुरातन चाल विशेष कर स्त्रियों के बीच आज भी बनी है, किन्तु साधारण जन-समुदाय में ही। बड़े लोग ऐसा कभी नहीं करते वा कहते। पदमावती का यही सहज नारी-चरित उसे सर्वसाधारण के मध्य प्रिय बनाये रखने में समर्थ हुआ।

पदमावती अपने प्रेम की व्यथा भी साधारण नारी की भाँति ही अनुभव करती है और उसे अपनी धाय तक से कहने में नहीं सकुचाती। उससे पूर्णतया स्पष्ट कर के अन्त में घबरा कर कहती है—

परिउँ अथाह धाय हौं, जोवन उदधि गँभीर।
तेहि चितवौं चारिउँ दिसि, जो गहि लावै तीर॥

इसी विरहावस्था में हीरामन से भेंट होने पर उसे राजा रतनसेन के सिंहल-आगमन की सूचना मिली थी। इससे उसे प्राणदान जैसा हुआ जो सामान्य विरहिणी नारी के लिए नितान्त स्वाभाविक है। फिर वसन्त-पूजन के समय पदमावती का उल्लासपूर्ण व्यवहार यह प्रकट करता है कि प्रिय के पहले पहल दर्शन की सम्भावना से जो दशा नारी मात्र के मन की होती है पदमावती उससे परे न थी। यहाँ उसमें स्फूर्ति का पूर्ण संचार देखा जाता है। राजा रतनसेन ने ज्यों ही पदमावती को देखा वह अपने को सँभाल न सका, तुरन्त मूर्च्छित हो गया। इस समय पदमावती ने सङ्कोचशीला युवती की भाँति

आचरण न कर के राजा को जगाने के विविध उपचार किये, पर सब निष्फल रहे। तब वह उसे अपने मिलन का मार्ग भी निर्दिष्ट करने में नहीं हिचकी—

अब जौं सूर अहौ ससि राता, आएउ चढ़ि सो गगन पुनि साता।

उसे अपने रूप के प्रति पुरुष मात्र के आकर्षण एवं मुग्ध हो कर सुध-बुध खो बैठने का भी सम्यक् बोध था। तभी रतनसेन के अचेत हो जाने पर उसकी छाती पर उपर्युक्त संदेश लिख कर उसने अपनी सखियों से कहा था कि

लिखि कै बात सखिन सौं कही, इहै ठाँव हौं बारति रही।
परगट होहुँ न होइ अस भंगू, जगत दिया कर होइ पतंगू।
जा सहुँ हौं चख हेरौं, सोइ ठाँव जिउ देइ।
एहि दुख कतहुँ न निसरौं, को हत्या असि लेइ॥

जिस समय उसने झरोखे में आ कर राघव चेतन को जड़ाऊ कङ्कण दिया उस समय उसका दिव्य रूप देख कर राघव अचेत हो गिर पड़ा था। उस समय भी पद्मावती को अपने सौन्दर्य की अनुभूति हुई थी। उसने कहा था—'जौ यह गुनी मरै मोंहि दोखा'।

यौवन-काल में अपनी इच्छा के अनुरूप पति पाने की कामना नारी के लिए स्वाभाविक होती है। फिर बड़ी प्रतीक्षा के अनन्तर उसके मिलने पर उसके साथ सम्भोग की लालसा भी होती है। पदमावती में नारी-सुलभ यह वृत्ति यथेष्ट मात्रा में विद्यमान थी। परन्तु वह पति के साथ प्रथम समागम के समय उसके योगी हो कर घर से निकल पड़ने में ही अपने प्रति उसके प्रेम की स्वीकृति नहीं दे देती, प्रत्युत बड़ी देर तक उत्तर-प्रत्युत्तर के द्वारा उसकी गाढ़ी लगन

की जाँच करने पर ही आत्म-समर्पण करती है। एक बार उसे मन और तन दे देने के बाद वह फिर विषम से विषम स्थिति आने पर भी उससे विरत नहीं होती, भारी से भारी प्रलोभन पा कर भी उसे त्याग किसी दूसरे को अङ्गीकार करने को मन नहीं डिगाती, भले ही वह दूसरा व्यक्ति रतनसेन की अपेक्षा कितना ही अधिक सुन्दर वा वैभव-सम्पन्न क्यों न हो। जब सिंहल से चित्तौड़ आते समय आँधी में पड़ कर उसका बोहित टूट गया और वह रतनसेन से अलग हो कर समुद्र में बहते बहते लक्ष्मी के पास जा पहुँची थी तब उसने पति के वियोग में जीते रहने की अपेक्षा सती हो जाना श्रेयस्कर समझा था। लक्ष्मी ने समझा-बुझा कर उसे रोक न लिया होता तो वह प्राण त्याग देती। उसकी पति-परायणता का प्रमाण उस समय भी मिलता है जिस समय कुंभलनेर के राव देवपाल की दूती ने उसके मायके की धाय कुमुदिनी बन कर उसके भोले-भाले और रतनसेन के दिल्ली में बन्दी होने से दुःखी मन को भुलावे में डाल दिया था और फिर उसके यौवन को भोग के द्वारा सार्थक बनाने के लिए रतनसेन से मन हटा कर 'मसि भीग रहे' देवपाल के प्रति आकृष्ट करने की चेष्टा की थी। पहले तो पदमावती उसके तर्कों का बड़ी दृढता से खण्डन करती रही, किन्तु उसके देवपाल का नाम लेते ही उसका सती-तेज चमक उठा। सती नारी अपने पति के समान किसी और को कुछ नहीं समझती। पदमावती दूती को फटकारते हुए बोली—

सत्रु मोरे पिउ कर देवपालू, सो कित पूज सिंघ सरि भालू।
सोन नदी अस मोर पिउ गरुवा, पाहन होइ परै जौ हरुवा।

जेहि ऊपर अस गरुवा पीऊ, सो कस डोलाए डोलै पीऊ।

तदनन्तर उस कुटनी को अच्छी तरह पूजा की। फिर नाक-कान कटवा मुँह में कारिख पुतवा सिर मुँडवा गधे पर चढ़वा कर उसे निकाल बाहर किया। इसी प्रकार बादशाह अलाउद्दीन की प्रेरित जोगिनी बनी पातुर के मुँह से सुलतान के वैभव और प्रभाव को सुन कर पदमावती अपने पति के पास ही जाने को तैयार हुई थी, कुछ सुलतान के प्रति आकृष्ट नहीं हुई। पति के निधन के बाद तो उसने सती हो कर पति-प्रेम की अनन्यता को चरितार्थ कर दिया। उस समय सती नारी के सदृश उसके उल्लास का ठिकाना न था। उस समय आग उसके लिए शीतल हो गई थी--

आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़।

इतनी उदात्त मनोवृत्ति के होते हुए भी पदमावती साधारण नारी के समान अपने पति को अकेले ही ले कर भोगना चाहती थी। इसी से चित्तौड़ पहुँचने पर जब उसने अपनी सखियों से सुना कि रतन-सेन नागमती के साथ क्रीडा करता है तब वह अपने को सँभाल न सकी। जैसे साधारण स्त्री सौत पर उबल पड़ती है वैसे ही रिस-भरी वह नागमती पर टूट पड़ी। उस समय उसका राजसी शील न जाने कहाँ चला गया था। निरी गँवार नारी की सी मुँहफट बातें करते हुए उसे लाज नहीं लगी। इतना ही नहीं, वह उससे भिड़ भी गई। इस अवसर पर पदमावती के नितांत निम्न श्रेणी की नारी के सदृश आचरण के औचित्य का प्रतिपादन केवल यह कह कर किया जा सकता है कि स्त्री अपने पति को सौत के हाथ में न पड़ने देने के लिए नीची से नीची श्रेणी की बनने में

भी नहीं हिचकती। पति के ऊपर एकाधिकार की प्रवृत्ति जो न करावे सो थोड़ा।

पदमावती संचयशीला नारी भी थी, और अपने पास सुरक्षित द्रव्य को अवसर आने पर व्यय करने में आगापीछा नहीं करती थी। जिस समय लक्ष्मी और समुद्र से विदा हो कर वह जगन्नाथ पुरी पहुँची, उस समय राजा रतनसेन को चिन्ता हुई कि पास में धन नहीं, कैसे काम चले, उस समय पदमावती ने कहा—

लछमी दीन्ह रहा मोहिं बीरा, भरि कै रतन पदारथ हीरा।
काढ़ि एक नग बेगि भँजावा, बहुरी लच्छि फेरि दिन पावा।

पदमावती के रानी रूप की झलक उस समय मिलती है जिस समय राघव चेतन को रतनसेन ने देश से निकल जाने की आज्ञा दी थी। वह समझदार थी। उसने सोचा कि ऐसे जादू-टोने में प्रवीण और स्वार्थ के लिए मिथ्याचारी सभा-पण्डित को इस प्रकार दण्ड दिये जाने का परिणाम बुरा होगा। जो यक्षिणी के प्रभाव से दूज न होने पर भी दूज का चन्द्रमा दिखला सकता है वह इस सूर्य (रतनसेन) की जगह दूसरा सूर्य (अलाउद्दीन की ओर संकेत) भी ला कर उपस्थित कर सकता है। कवि की जीभ तलवार है जिसमें पानी और आग दोनों का वास रहता है—

ज्ञान-दिस्टि धनि अगम बिचारा, भल न कीन्ह अस गुनी निसारा।
जेइ जखिनी पूजि ससि काढ़ा, सूर के ठाँव करै पुनि ठाढ़ा।
कवि कै जीभ खड़ग हरद्वानी, एक दिसि आगि दुसर दिसि पानी।

यह विचार कर उसने राघवचेतन को चित्तौड़ से बाहर जाने के पहले दक्षिणा लेते जाने के लिए बुलवाया। स्वयं झरोखे के पास

आ कर उसने अपने हाथ का जड़ाऊ कंकण उतार कर दिया। और जब राघव उसका अलौकिक सौन्दर्य देख कर मोहित हो तन की सुध-बुध खो बैठा तब रानी ने सोचा कि 'जौ यह गुनी मरै मोहि दोखा'। इस प्रकार उसके चिन्तित होने पर राघवचेतन को चेत में लाने के लिए उसकी सखियाँ प्रेरित हुईं।

रानी होते हुए भी पदमावती में नारी की सहज उत्सुकता थी। जब अलाउद्दीन चित्तौड़ गढ़ के भीतर ज्योनार के समय गया तब सहेलियों ने उससे दिल्ली के सुलतान के रूप का बखान करते हुए उसे देखने का आग्रह किया। इसे स्वीकार कर रात हो जाने पर रानी शाह को देखने के लिए झरोखे में गई।

पदमावती निरभिमान भी कम न थी। बादशाह के गढ़ के भीतर आने पर उसकी चेष्टाओं से उसके भाव को भाँप कर गोरा बादल ने राजा को उससे मेल न करने की सलाह दी थी। पर रतनसेन के अपने निश्चय पर डटे रहने के कारण गोरा बादल उससे रूठ कर चले गये थे। जब वह पकड़ कर बन्दी बना लिया गया और रानी ने उसका ठौर-ठिकाना जान लिया तब वह अपनी सखियों के परामर्श को मान कर अपना राजसी अभिमान छोड़ गोरा और बादल के द्वार पर गई। उसने रो-रो कर उन वीरों से राजा को बंदीगृह से उबारने का अनुरोध कर उन्हें फिर स्वामिभक्त बनाने में सफलता पाई। इस अवसर पर भी वह विरहिणी नारी के रूप में ही उन्हें प्रभावित करने में समर्थ हुई थी। राजनीतिक युक्ति वा अन्य किसी विधि से नहीं।

पदमावती पातिव्रत की प्रतिमा होते हुए भी अदूरदर्शिनी थी।

वह समय असमय का विचार किये बिना काम कर बैठती थी। जब दिल्ली के शाही कारागार से छूट कर रतनसेन उससे रात में मिला तब उसने राजा के बन्दी जीवन के प्रति संवेदना प्रकट कर के अपनी दशा कही। फिर धीरे धीरे देवपाल की दूती की चर्चा छेड़ी। उसे सुनने से राजा को नींद नहीं आई। दूसरे ही दिन वह देवपाल से द्वन्द्वयुद्ध कर के काम आया। पदमावती ने संयम और दूरदर्शिता से काम लिया होता तो सम्भव है ऐसा न होता, और होता भी तो कुछ दिन पीछे। स्त्रियों की ऐसी ही मनोवृत्ति वहुधा अपने पति से हाथ धोने के लिए उन्हें विवश किया करती है।

इस प्रकार के गुण-दोष से युक्त पदमावती पति के प्रति अनुरागमयी ऐसी नारी की जीवन्त मूर्ति है जिसके लिए जीवन में वही सब कुछ है—वही इस लोक और परलोक का एक मात्र साथी है, जिसे उसी के संग सच्चा सुख है।

नागमती—नागमती का जो रूप जायसी ने अङ्कित किया है वह राजस्थान-स्थित चित्तौड़ की पाटमहादेइ (पट्टमहादेवी) का नहीं, प्रत्युत अवध की साधारण श्रेणी की ऐसी महिला का है जिसका पति ही सर्वस्व है। इसका प्रमाण उसके बारह मास के विरह-क्रन्दन में पग-पग पर देखा जाता है। आषाढ़ में वर्षा की झड़ी लगने पर वह कहती है—'पुष्य नखत सिर ऊपर आवा, हौं बिनु नाह मँदिर को छावा।' सावन में चारों ओर पानी ही पानी भर जाता है। राह दिखलाई नहीं पड़ती। बेचारी वियोगिनी कैसे पार जाय—'जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी, मोरि नाव सेवक बिनु थाकी।' वर्षा के आगमन के समय छप्पर टपक रहा है, उसको उठाने वाली

थूनी नहीं रही। पास में पूँजी नहीं। कैसे उसे खरीदे? फिर कौन उठावे? और नये ठाट के लिए कोरो नहीं। कौन उसे सजाये?

बंध नाहिं औ कंध न कोई, बात न आव कहौं का रोई।
साँठि नाहिं जग बात को पूछा, बिनु जिउ भएउ मूँज तनु छूँछा।
भई दुहेली टेक विहूनी, थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी।
बरसहिं नैन चुवहिं घर माहाँ, छपर छपर होइ रहि बिनु नाहाँ।
कोरौं कहाँ ठाट नव साजा, तुम बिनु कन्त न छाजनि छाजा।

न तो राजस्थान में ऐसी वर्षा होती है कि पृथ्वी चतुर्दिक् जलमयी हो जाय और न राजरानी नागमती को छप्पर के नीचे निर्धन असहाय छोड़ कर रतनसेन योगी हुआ था! फिर वह ये बातें कह कर क्यों रोती है? बात यही न है कि वह कहानी की रानी है, परन्तु है वास्तव में अवध की ग्रामीण नारी। और उसका यह नारीत्व बड़ा ही मार्मिक है। पतिप्राणा नागमती ने रतनसेन के योगी हो कर घर से निकल सुए के साथ सिंहल चले जाने पर रो-रो कर दिन काटे। वह वियोग में बावली हो गई। पति के पास न होने से अपने को नितान्त असहाय समझ दिन-दिन सूखने लगी। उसके प्राणों पर आ बनी—'हंस जो रहा सरीर महँ, पंख जरे तन थाक।' सखियों का सारा समझाना-बुझाना किसी काम न आया। समय बीतने लगा। प्रकृति अपने नये नये रूप धर कर आने लगी। विरहिणी को उसकी रम्यता उलटे जलाने लगी। नागमती अहर्निशि रोती और अपने प्रियतम को पुकारती। उसका विलाप सुन कर पथिकों ने चित्तौड़ की ओर आना-जाना छोड़ दिया। तब वह पक्षियों को अपना सन्देश-वाहक बनाने के लिए सचेष्ट हुई। बोली—

पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हें भँवरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग॥

इतने से ही पक्षियों की जान न बची। हुआ यह कि वह—

जेहि पंखी के निअर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

प्रियतम के लौट आने का समय मानो किसी अज्ञात प्रेरणा से नागमती जान गई। फलतः

जसि भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई, परहि बूँद औ सोंधि बसाई।
ओहि भाँति पलुही सुख-बारी, उठी करिल नइ कोंप सँवारी।

सखियों ने उसके शरीर में मिलन-जन्य उल्लास के सूचक परिवर्तन देखने पर उनका कारण पूछा तब वह बोली—

पलुहे नैन बाँह हुलसाहीं, कोउ हितु आवै जाहि मिलाहीं।

पति के पुनः मिलने पर उसमें नवजीवन का सञ्चार हुआ, किन्तु नारी सुलभ सपत्नी के प्रति ईर्ष्या का भाव भी तत्काल ही उमड़ आया। तभी पदमावती उसके महल में नहीं उतारी गई—'सही न जाइ सवति कै मारा, दुसरे मंदिर दीन्ह उतारा'। आगे चल कर यह सौतिया डाह बड़े ही उग्र रूप में उस समय प्रकट हुई जिस समय पदमावती उससे लड़ने के लिए उसकी फुलवारी में जा धमकी। तब नागमती ने उसे जिस प्रकार के उत्तर दिये उनसे भी उसे राजवंश की नारी के स्थान पर साधारण कोटि की स्त्री ही कहना पड़ेगा। उस समय उसका झगड़ालू रूप खुल गया है जो सौत के प्रति व्यवहार करते समय गाँवों और नगरों की स्त्रियों में आज भी बहुधा देखा जाता है।

नागमती को जायसी ने सपत्नी के प्रति ईर्ष्यालु के साथ ही मानिनी नायिका के सदृश भी दिखाया है। सिंहल से चित्तौड़ लौटने पर रतनसेन दिन भर लोगों से मिलता-जुलता रहा, रात होने पर नागमती के पास गया। उस समय का दृश्य देखिये और वार्तालाप सुनिये। पति के पहुँचने पर

नागमती मुख फेरि बइठी, सौंह न करै पुरुष सों दीठी।

और बोली

ग्रीषम जरत छाँड़ि जो जाई, सो मुख कौन देखावै आई।
तू जोगी होइगा वैरागी, हौं जरि छार भइउँ तोहि लागी।
काह हँसौ तुम मोसौं, किएउ और सो नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोंहि मुख वरिसै मेह॥

पदमावती से लड़ने पर रतनसेन के समझाने पर शान्त हो जाने के बाद से नागमती फिर कभी सौत से नहीं उलझी। इतना ही नहीं, वह सदैव उससे मिल कर रही, जैसा रतनसेन ने कहा था—'गंग जमुन तुम नारि दोउ'।

जैसे नागमती का विरहाकुल रूप पदमावत में अनुपम है वैसे ही उसकी अन्तिम झलक भी आँखों से उतरती ही नहीं। रतनसेन के निधन के बाद वह पदमावती की चिर-संगिनी की भाँति उसी के साथ सहगमन के लिए प्रस्तुत हुई। उस समय उन दोनों नारियों का सतीत्व अपने चरम उत्कृष्ट रूप में देदीप्यमान हुआ—

नागमती पदमावती रानी, दुवौ महा सत सती बखानी।
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं, औ सिवलोक परा तिन्ह दीठीं।
सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा, सात वार फिरि भाँवरि लीन्हा।

एक जो भाँवरि भई बियाहीं, अब दुसरे होइ गोहन जाहीं।
जियत कंत तुम हम्ह गर लाईं, मुए कंठ नहिं छोड़हिं साईं।
औ जो गाँठि कंत तुम्ह जोरी, आदि अंत लहि जाइ न छोरी।
यह जग काह जो अछहि न आथी, हम तुम नाह दुहूँ जग साथी।

ऐसा कह कर

लेइ सर ऊपर खाट बिछाई, पौढ़ीं दुवौ कंत गर लाई।
लागीं कंठ आगि देइ होरी, छार भईं जरि अंग न मोरी।

रतनसेन—पदमावत काव्य में अन्य सभी पात्रों के समान ही रतनसेन के चरित्र के सम्यक् निरूपण की भी चेष्टा नहीं हुई। उसे ऐसे प्रेमी के रूप में दिखलाया गया है जो स्थूल भौतिक वासना से मुक्त न होते हुए भी अपने व्यवहार में आध्यात्मिक प्रेम की झलक भी प्रदर्शित करता है। पदमावती-मिलन के समय वह भोक्ता के रूप में उद्घाटित हुआ है। उसकी विलास-क्रीडाएँ नग्न हो कर प्रकट हुई हैं। इस समय उसके सामान्य कामुक पुरुष होने में सन्देह नहीं रह जाता। परन्तु उसके कार्यों का विस्तार प्रियतमा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नों में देखा जाता है। उनमें उसकी निष्ठा, त्याग, लगन, आत्मबलिदान आदि उदात्त वृत्तियाँ प्रकट हुई हैं। विवाहित होते हुए भी वह हीरामन से पदमावती के असाधारण सौन्दर्य का विवरण सुनने पर उसके प्रति आसक्त हो गया। उसने उस पर चट विश्वास कर लिया और राजपाट छोड़ वैराग्य ले लिया—वैराग्य इसलिए नहीं कि गार्हस्थ्य जीवन अथवा संसार से उसका मन उचट गया था, किन्तु इसलिए कि पदमावती को पाने के लिए एक तो सब कुछ छोड़ सात समुद्र पार करने का जोखिम उठाना आवश्यक था और

दूसरे अपने प्राणों की बाजी लगाना, जिसके बिना उसके पास तक पहुँचना सम्भव न था।

वह एकपत्नीव्रत न था। सम्भव है उसे नागमती से पहले तृप्ति भी न हुई हो, अथवा पदमावती का सौन्दर्य-वर्णन सुन कर ही वह उसके प्रति इसलिए भी खिंच गया हो कि वह नागमती से कहीं अधिक रूपवती थी। किन्तु राजा पदमावती को पा जाने पर भी पक्षी से नागमती की विरहावस्था की चर्चा सुनते ही चित्तौड़ लौट पड़ा और वहाँ वह अपनी दोनों पत्नियों का पारस्परिक कलह और द्वेष मिटा कर उनके साथ भोगमय जीवन बिताने में रत हुआ। इससे उसके प्रेमी चरित्र की वास्तविकता सूचित होती है।

पदमावती को प्राप्त करने के लिए रतनसेन ने किसी भी संकट की परवाह नहीं की। गजपति ने सात समुद्रों के पार करने की कठिनाइयों का वर्णन किया, किन्तु वह प्रेम के मार्ग में चल पड़ा था, उनसे भयभीत नहीं हुआ। इस प्रकार उसे अपने निश्चय पर अडिग देख गजपति ने उसे बोहित दिये। साथियों के साथ राजा ने भयङ्कर क्षार, क्षीर, दधि, (जल) उदधि, सुरा, किलकिला और मानसर—इन सात समुद्रों को पार किया। ऐसे ही सिंहलगढ़ में प्रवेश करते समय पकड़े जाने पर वह सूली पर चढ़ने में किञ्चिन्मात्र नहीं घबराया। सिंहलद्वीप में पहुँच कर रतनसेन ने महादेव के मन्दिर में डेरा जमाया था। वहाँ उसने पदमावती को पाने के लिए योगसाधना आरम्भ की। पदमावती ने हीरामन के द्वारा रतनसेन के वहाँ आने की बात सुन कर देव-पूजन के बहाने वसन्त-पञ्चमी को राजा की साधना सफल की, किन्तु उसके रूप के प्रभाव से वह मूर्च्छित

हो गया। इससे दोनों मिल न सके। चेत आने पर राजा ने अपना जीवन निरर्थक समझ चिता में जल मरने का निश्चय किया। इसी प्रकार सिंहल से लौटते समय आँधी में बोहित टूट जाने पर जब वह पदमावती से अलग हो गया तब भी आत्म-हत्या करने को प्रस्तुत हो गया। इससे प्रकट हो सकता है कि वह निराश प्रेमी के समान प्राण-त्याग कर छुटकारा पा जाना चाहता है। परन्तु अप्सरा रूपिणी पार्वती और पदमावती-रूपधारिणी लक्ष्मी के परीक्षा लेने पर राजा अपने अनन्य प्रेम की दृढता से नहीं डिगा था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा पदमावती के अभाव को नहीं सह सकता था। वही उसकी सर्वस्व जैसी थी।

प्रेम के लिए राजा रतनसेन के लिए अनुचित उचित का विचार न था। पदमावती तक पहुँचने के लिए चोर की तरह सेंध लगा कर गढ़ के भीतर घुसने में उसको अपने राजा होने और योगी वेश में होने पर भी हिचकिचाहट नहीं हुई। इसी प्रकार नागमती का विरह-सन्देश सुनने के बाद जब उसने पदमावती के साथ रह कर सुख भोगते हुए भी चित्तौड़ जाने की ठानी तब उसने गन्धर्वसेन से झूठा बहाना करना अनुचित नहीं समझा। कहा—

राज हमार जहाँ चलि आवा, लिखि पठइनि अब होइ परावा।

परन्तु यह चोरी और झूठ रतनसेन का स्वभाव नहीं समझना चाहिए। अवश्य, अपने प्रिय की प्राप्ति के लिए उसे इन्हें साधन बनाने में अनौचित्य नहीं लगता था। प्रिय मिले चाहे जिस उपाय का अवलम्बन क्यों न करना पड़े—यह उसका सिद्धान्त प्रतीत होता है।

रतनसेन वीर था—इसमें सन्देह नहीं। वह युद्धकला में भी प्रवीण था। शाही आक्रमण की सूचना मिलते ही उसके सचेत होने में देर न लगी। उसने तुरन्त सेना सुसज्जित की—

जहँ लगि राज साज सब होऊ, ततखन भएउ सँजोउ सँजोऊ।

अपनी सेना के प्रस्तुत हो जाने पर वह स्वयं भी युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ—

माथे मुकुट छत्र सिर साजा, चढ़ा बजाइ इन्द्र अस राजा।

और सुलतान से डट कर ऐसा युद्ध किया कि आठ वर्ष तक चित्तोड़ को हाथ से जाने न दिया। उसका अन्त भी देवपाल से द्वन्द्वयुद्ध में वीर गति मिलने से ही हुआ। उस समय देवपाल की विष भरी साँग के पेट से पीठ तक घुस जाने पर भी उसने शत्रु पर ऐसा प्रहार किया कि उसका 'टूट कंध धड़ भएउ निनारा' और तब 'सीस काटि कै बैरी बाँधा'।

परन्तु वीरोचित साहस से परिपूर्ण होते हुए भी रतनसेन क्षण-रुष्टा था। वह आगा-पीछा सोचे बिना ही काम कर बैठता। इस स्वभाव के कारण उसने साधारण सी बात में राघवचेतन को देश से निकाल कर अपना घोर शत्रु बना लिया। उसने यक्षिणी-सिद्धि के बल से अमावस्या के बाद दूसरे ही दिन प्रतिपदा को चाँद दिखा दिया तो क्या हुआ? सभा के अन्य पंडितों ने राघव से अपमानित हो राजा को उसके विरुद्ध उलटा-सीधा समझाया। रतनसेन तो राजा था। उसने यह न सोचा कि राघव जैसा कुटिल पंडित रुष्ट होने पर कैसा अनर्थ कर सकता है! स्त्री होने पर भी पदमावती के ध्यान में यह बात आ गई। भविष्यत् में राघवचेतन ने किया भी ऐसा।

ही। इसी प्रकार वह दिल्ली के बन्दीगृह से छूट कर जिस रात चित्तौड़ पहुँचा, पदमावती ने देवपाल की दूती की बातें उससे जड़ दीं। राजा ने आव देखा न ताव; दूसरे ही दिन देवपाल पर धावा बोल दिया और देवपाल से द्वन्द्व-युद्ध करते हुए आहत हुआ और अन्त में उसी चोट से उसके प्राण गये। उसके इस आचरण से मध्य-काल के क्षत्रियों की थोड़ी थोड़ी बात में लड़ मरने की सहज प्रकृति भी सूचित होती है।

रतनसेन का हृदय स्वच्छ और निष्कपट था। आठ वर्ष तक चल रहे युद्ध के अनन्तर सुलतान ने सन्धि-प्रस्ताव भेजा कि अच्छा मैं पद्मिनी नहीं चाहता, समुद्र से प्राप्त पाँचों रत्न दे दो बदले में चंदेरी और ले लो तथा अपना राज्य भोगो। रतनसेन ने इसे स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, उसने सुलतान का चित्तौड़ गढ़ देखने आना भी मान लिया। उसके लिए भोज का भी समुचित प्रबंध किया। उसके व्यवहार में कहीं भी छल न था। परन्तु सुलतान तो—'परगट कह राजा सौं बाता, गुपुत प्रेम पदमावति राता।' उसका यह भेद गोरा-बादल ताड़ गये। उन्होंने चुपके से राजा के कान में कहा—

बाचा परखि तुरुक हम बूझा, परगट मेर गुपुत छल सूझा।
तुम नहिं करौ तुरुक सौं मेरू, छल पै करहि अंत कै फेरू।

परन्तु राजा ने इसे स्वीकार न किया और कहा कि 'जहाँ मेर तहँ नहि अधमाई'। उसने यह भी कहा कि

मंदहि भल जो करै भल सोई, अंतहि भला भला कर होई।

यह सज्जनोचित नीति राजा के लिए घातक हुई। यह उसकी सरलता

और साधुता का प्रमाण भले हो, परन्तु यह भी सिद्ध करती है कि रतनसेन राजनीति में कोरा था। शत्रु पर सहसा विश्वास कर लेने के कारण ही वह उसका बन्दी हुआ।

इतना ही नहीं, वह भोला भी था। जब अलाउद्दीन पदमावती की झलक दर्पण में देख कर मोहित हो मूर्च्छित हो गया तब 'राजा भेद न जानै झाँपा' और उसने वहीं उपस्थित राघव चेतन की बात मान ली कि सुलतान को सुपारी लग गई है और उसे 'लेइ पौढावहिं सेज सँवारी।'

रतनसेन में क्षत्रियोचित आत्म सम्मान भी यथेष्ट था। सुलतान अलाउद्दीन के पत्र में यह बाँचते ही कि 'सिंघल कै जो पदमिनी पठै देहु तेहि वेग' वह जल उठा और 'जानौ दैउ तड़पि घन गाजा।' सिंह पर सवार हो कर आये शाही दूत सरजा से बोला कि

का मोहि सिंघ देखावसि आई, कहौं तो सारदूल धरि खाई।
भलेहिं साह पुहुमीपति भारी, माँग न कोउ पुरुष कै नारी।
को मोहि ते अस सूर अपारा, चढ़ै सरग खसि परै पतारा।

जब सरजा ने उसे अलाउद्दीन का प्रताप सुना कर आतङ्कित करना चाहा तब राजा ने कहा कि 'तुरुक जाइ कहु मरै न धाई।' और यह जान कर कि बादशाह का उक्त प्रस्ताव न मानने पर वह चढ़ाई करेगा। राजा ने उत्तर दिया—मैं पहले ही तैयार बैटा हूँ। जाओ कह दो, कल आना हो तो मेरी ओर से आज ही आ जाय—

महूँ समुझि अस अगमन सजि राखा गढ़ साजु।
काल्हि होइ जेहि आवन सो चलि आवै आजु।

ऐसे स्वाभिमानी रतनसेन ने भोले भाले ढंग से सुलतान का

सन्धि-प्रस्ताव स्वीकार करके उसका आतिथ्य-सत्कार किया और उसकी अधीनता स्वीकार कर गले में पगड़ी डाल कर विनय की—'बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा।'

इससे राजा की दीर्घकालीन युद्ध-जनित दुर्बलता का भी संकेत ग्रहण किया जा सकता है।

रतनसेन भयंकर युद्ध के बीच निर्द्वन्द्व नाच-गान में लिप्त रहता। जिस समय उसके गढ़ के ऊपर सौ सौ मन के धरती कँपा देने वाले गोले छूटते थे उस समय भी वह नाच रंग में मस्त रह सकता था। उसका अखाड़ा (संगीत और नृत्य का समाज) बादशाह अलाउ-द्दीन की बैठक के ठीक सामने पड़ता था। उसमें हो रहे विविध गुणियों के गान और पातुरों के नाच देख कर बादशाह ने अपने धनुर्धरों को प्रहार करने का आदेश दिया। एक बाण उस नर्तकी को लगा जो नाच रही थी। उसके गिरते ही राजा की सभा भंग हो गई। इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि राजा रतनसेन युद्ध के बीच भी विलास में मग्न रहता। साथ ही इतना असावधान भी रहता कि उस समय भी शत्रु के प्रहार सीधे उसकी विनोद-सभा के ऊपर हो सकते।

वह कष्ट-सहिष्णु भी बहुत था। अलाउद्दीन के कारागार में उसे नाना प्रकार की शारीरिक यातनाएँ दी जातीं, अनेक प्रकार के भय दिखाये जाते, पर वह विचलित न हुआ।

ये सब रतनसेन के आनुषङ्गिक गुण थे। वास्तव में इस काव्य के नायक के रूप में वह प्रेमी था—ऐसा प्रेमी जो पार्वती और लक्ष्मी तक की ओर आँख उठा कर नहीं देख सकता, और अपनी प्रेमिका

के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने में आगा-पीछा नहीं करता। वह पदमावती के प्रति अनुचित प्रस्ताव करने वाले का सिर काट कर उसके सम्मान की रक्षा करने में प्राणोत्सर्ग करके काव्य जगत् में अमर हो गया है। उसके जोड़ का दूसरा प्रेमी काव्य-संसार में नहीं है।

अलाउद्दीन—दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन के वैभव के सम्बन्ध में जायसी ने कहा है—'सोन ढरै जेहि के टकसारा, बारहबानी चलै दिनारा।' यह बात इतिहास से भी प्रमाणित होती है। उसकी दिल्ली की टकसाल में नई युक्तियों से शोधे बारहबानी (सर्वथा शुद्ध) सोने की अलाई दीनार या मुहर ढलती थी। फरिश्ता कृत अलाउद्दीन के विवरण के जान विग्स के अनुवाद में एक स्थान पर लिखा है कि अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम अपना ध्यान न्याय-विधान के पालन कराने और जनता की शिकायतें दूर करने की ओर लगाया। उसने सभी पदाधिकारियों के घरेलू और सरकारी कामों की निकट से जाँच करना आरंभ कर दिया। वह नगर के प्रमुख परिवारों की परम गुप्त मन्त्रणाओं और सब से दूरवर्ती प्रदेशों (सूबों) के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य की सूचना प्राप्त करता था। उसने शासन-प्रबन्ध में इतनी कठोरता से न्याय का पालन किया कि देश में पहले से बहुत ही व्याप्त डकैती और चोरी का नाम भी कहीं सुनाई न देता था। यात्री सड़कों पर सुरक्षित सोते थे और व्यापारी बंगाल के समुद्र से काबुल तक और तेलंगाने से कश्मीर तक अपना माल सुरक्षित ले जाते थे। इसकी पुष्टि पदमावत से भी होती है। राघवचेतन रत्न-जड़ित कंगन लिये हुए चित्तौड़ से दिल्ली तक सुरक्षित अकेले पहुँच

गया था। किसी ने उसे छेड़ा तक नहीं। उसने दिल्ली पहुँच कर देखा कि

बादशाह सब जाना बूझा, सरग पतार हिये महँ सूझा।
जौ राजा अस सजग न होई, काकर राज कहाँ कर कोई।
राव रंक जावँत सब जाती, सब के चाह लेइ दिन राती।
पन्थी परदेसी जत आवहिं, सब कै चाह दूत पहुँचावहिं।

इसी शाही नीति के कारण राघवचेतन के दरबार के द्वार पर पहुँचने की सूचना अलाउद्दीन को मिली। उसका नियम था 'भीख भिखारी दीजिए का बाम्हन का भाँट।' इसी का पालन उस समय हुआ जिस समय सुलतान ने पदमावती के दिये हुए कंगन की जोड़ी पूरी कर के राघवचेतन की इच्छा पूरी की जिसे ले कर वह चित्तौड़ से देहली आया था कि 'अस कंकन जो पावौं दूजा, दारिद हरै आस मन पूजा।' जायसी कहते हैं कि

औ दूसर कंगन कै जोरी, रतन लाग ओहि बत्तिस कोरी।
लाख दिनार देवाई जेंवा, दारिद हरा समुद कै सेवा।

दिल्ली का सुलतान अपने वैभव के सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। उसका विचार था जो कुछ मेरे पास है वह संसार में किसी और के पास नहीं है। इसी से जब राघवचेतन ने उसके पास पहुँच कर अपने हाथ के जड़ाऊ कंगन के विषय में बतलाते हुए चित्तौड़ की रानी पदमावती के अप्सरा के से रूप का उल्लेख किया तब उसने तिरस्कारपूर्वक कहा कि

जो पदमिनि सो मंदिर मोरे, सातौ दीप जहाँ कर जोरे।
सात दीप महँ चुनि चुनि आनी, सो मोरे सोरह सै रानी।

इससे प्रकट होता है कि बादशाह संसार भर की सोलह सौ सुन्दरियों से अपने हरम में भोग कर के सन्तुष्ट था। परन्तु जब राघव चेतन ने हस्तिनी, शङ्खिनी, चित्रिणी और पद्मिनी नारियों के गुण-रूप का वर्णन कर के पदमावती के नखशिख का विस्तारपूर्वक मादक एवं कामोत्पादक वर्णन कह सुनाया तब तो अलाउद्दीन की अतृप्त वासना खुल गई। वह अपने को सँभाल और रोक न सका। उसका रूप-लोभी मन चंचल हो उठा। उसे मूर्च्छा आ गई। आगे जिस समय उसने चित्तौड़ गढ़ में भोज के समय पदमावती का प्रतिबिम्ब दर्पण में देखा उस समय भी शाह अपना मन वश में न रख सका और मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा था। सचेत होने पर उसने सरजा के हाथ रतनसेन को पत्र लिख भेजा कि 'सिंघल कै जो पदमिनी पठै देहु तेहि बेग।'

इस प्रकार सौन्दर्य-लोलुप अलाउद्दीन को जब रतनसेन ने फटकार दिया और युद्ध के लिए ललकारा तब वह दलबल सहित चित्तौड़ पर चढ़ दौड़ा। सारी शक्ति लगा कर आठ वर्ष तक घेरा डाले पड़ा रहा, परन्तु गढ़ न टूटा। तब उसने छल कर के रतनसेन को बन्दी कर लिया। उसकी रणनीति में शत्रु के साथ विश्वासघात दोष नहीं था। ऊपर से मित्रता दिखा कर किसी को पत्नी को हथियाने को भी वह रूप-लोलुप उचित ही समझता था। तभी वह—

परगट कह राजा सों बाता, गुपुत प्रेम पदमावति राता।

वह कपटाचार के प्रदर्शन में दक्ष था। उसने राजा के यहाँ बड़े प्रेम से दावत खाई और घुलमिल कर शतरंज खेली। इसी बीच अपनी दासियों से प्रेरित हो उसे देखने के लिए पदमावती झरोखे में

आई और उसकी परछाईं दर्पण में देखते ही रूप का लोभी सुलतान अचेत हो गया। उसने सोचा होगा कि जिसकी परछाईं ऐसी है वह सचमुच कितनी सुन्दरी होगी। उसने सचेत होने पर राघव चेतन से उस प्रतिबिम्ब की सुन्दरी का वर्णन किया। उसने पुष्ट किया कि वह पदमावती ही थी।

उधर उसकी मीठी मीठी बातों में पड़ कर असावधान राजा उसे विदा करने गढ़ के सातवें द्वारा तक गया। तब उसे सुलतान ने बन्दी कर लिया। इससे स्पष्ट विदित होता है कि पहले से ही बनी गुप्त योजना किस प्रकार राजा को धोखा दे कर बन्दी बनाने में सफल हुई। इस प्रकार अलाउद्दीन कपट-चातुरी में परम प्रवीण था और अभीष्ट-सिद्धि के लिए विश्वास-घात को अनुचित नहीं समझता था। नारी के रूप के प्रति अलाउद्दीन की लोलुपता का प्रमाण यह भी है कि उसने अपनी एक वेश्या को योगिनी का वेश धारण कर पदमावती को समझा-बुझा कर आकृष्ट करने के लिए भेजा। ऊपर लिखा जा चुका है कि अपने गुप्तचरों के द्वारा उसके पास धनी निर्धन सब का समाचार नित्य पहुँचता रहता था और दिल्ली में जो परदेशी यात्री आते थे उनका हाल तुरन्त ही उसको मिल जाता था। परन्तु अलाउद्दीन की कामान्धता ने उसे गोरा-बादल की योजना का रहस्य समझ सकने से वंचित रखा और रतनसेन को अपने कारागार से निकल जाने दिया।

परन्तु जब पदमावती रतनसेन के साथ सती हो गई और बादशाह चित्तौड़ पहुँचा तब उसे संसार और उसमें उपलब्ध नारी-रूप की असारता का भान हुआ। उसने मुट्ठी भर धूल उठा कर फेंकते हुए

कहा कि यह पृथ्वी झूठ है—'छार उठाइ लीन्ह एक मूठी, दीन्ह उड़ाइ पिरथिमी झूठी।' कदाचित् यह विराग-प्रिय जायसी की भावना होगी जो यह दिखाना चाहते थे कि लौकिक रूप, जिसके पीछे इतना धन-जन-संहार हुआ, उसकी यही अन्तिम गति है।

अलाउद्दीन युद्ध-वीर था। वह सेना का नेतृत्व स्वयं करता था। आठ वर्ष तक वह स्वयं ही चित्तौड़ को घेरे पड़ा रहा। वह उसे इसलिए नहीं तोड़ता कि ऐसा करने पर जौहर होगा और पदमावती हाथ न आयेगी। इससे उसने ढील देने की रण-नीति का अवलम्बन किया, परन्तु वहाँ से हटने की बात उसे तभी सोचनी पड़ी जब दिल्ली से प्रार्थना पत्र आने लगे कि

पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी, सो अब चढ़ा सौंह कै दीठी।
उहाँ साह चितउरगढ़ छावा, इहाँ देस अब होइ परावा।

और यह बात इतिहास से भी समर्थित है। मंगोल कई बार अलाउद्दीन से हार चुके थे। जब अलाउद्दीन चित्तौड़ को घेरे हुए था तब तरगी नामक मंगोल ने बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा डाल कर दिल्ली को घेर लिया था। अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया।

अलाउद्दीन की उदारता का भी जायसी ने वर्णन किया है। जब राजा रतनसेन की पाती सब हिन्दू राजाओं के पास पहुँची तो जो हिन्दू राजा अलाउद्दीन की सेवा करते थे, वे

सब होइ एकमते जो सिधारे, बादशाह कहँ आइ जोहारे।
है चितउर हिन्दुन्ह कै माता, गाढ़ परे तजि जाइ न नाता।
रतनसेन तहँ जौहर साजा, हिन्दुन्ह माँझ आहि बड़ राजा।

कृपा करहु चित बाँधहु धीरा, नातरु हमहिं देहु हँसि बीरा।
पुनि हम जाइ मरहिं ओहि ठाऊँ, मेटि न जाइ लाज सौं नाऊँ।

अलाउद्दीन बुरा नहीं मानता। वह बड़ी उदारता से हँस कर उन्हें बीड़ा देता है और तीन दिन का समय भी चित्तौड़ पहुँचने के लिए देता है—

दीन्ह साह हँसि बीरा और तीन दिन बीच।

और वे सब रतनसेन की ओर से बादशाह से लड़ने चित्तौड़ जा पहुँचे—

रतनसेन चितउर महँ साजा, आइ बजाइ बैठ सब राजा।

दिल्ली से हरेवों की चढ़ाई की सूचना पाने पर ही वीर अलाउद्दीन राजनीति की कपट-कला का प्रयोग करने पर उद्यत हुआ और उसने उसे आंशिक सफलता भी प्रदान की। उसने पदमावती का प्रतिबिम्ब देख लिया।

इस प्रकार पदमावती के प्राप्त करने में रतनसेन के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में इस काव्य का प्रतिनायक अलाउद्दीन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। वह पदमावती की प्रतिच्छाया मात्र देख सका। उसके लिए पदमावती को देख सकना तक सम्भव न हो सका, पाना तो दूर की बात रह गई। उसे असफल प्रेमी कहें तो कदाचित् अनुचित न समझा जाय।

गोरा बादल—*ये दोनों रतनसेन की सभा के अद्वितीय रत्न थे। दोनों मानो उसकी दो भुजाओं के सदृश थे—'रावत दुवौ दुवौ-जनु बाँहाँ।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके विषय में लिखा है "अबलाओं की रक्षा से जो माधुर्य योरप के मध्ययुग के नाइटों की वीरता में दिखाई पड़ता था, उसकी झलक के साथ ही स्वामिभक्ति का अपूर्व गौरव इनकी वीरता में देख मन मुग्ध हो जाता है। जायसी*

की अन्तर्दृष्टि धन्य है जिसने भारत के इस लोकरञ्जनकारी क्षात्र तेज को पहचाना।"[1]

ये दोनों राजनीति के दाँव-पेंच खूब समझते थे। जब रतनसेन ने सहज ही शत्रु का विश्वास कर लिया, उसको गढ़ का कोना-कोना दिखा दिया और नाचरंग दिखाने में भूल गया था तब अलाउद्दीन के भीतरी भाव को यही दोनों ताड़ सके थे। ये सच्चे स्वामिभक्त थे। इसीसे तो इन्होंने तुरन्त ही राजा के कानों में लग कर मन्त्र दिया कि 'मूसि न जाहि पुरुष जो जागे।' और

बाचा परखि तुरुक हम बूझा, परगट मेर गुपुत छल सूझा।
तुम नहिं करौ तुरुक सौं मेरू, छल पै करहिं अंत कै फेरू।

ये दोनों इतने आत्माभिमानी थे कि राजा के न समझने पर रुष्ट हो उसको छोड़ कर अपने घर चले गये। परन्तु मन से उसके भक्त बराबर बने रहे। जब वह बन्दी हो गया और पद्मावती इनके पास पहुँच कर सहायतापेक्ष हुई तब ये पसीज उठे। इन्होंने रानी को आश्वस्त किया कि हमारे जीते जी तुम्हें जोगिन हो कर राजा को छुड़ाने जाने की आवश्यकता नहीं। हम तो राजा से जिस बात पर रूठे थे वही हो कर रही। दोनों ने प्रण किया कि वर्षा के समाप्त होने और अगस्त के उदय होने पर राजा घर आ जायँगे।

ये लोग राजा रतनसेन की 'भला करने से भला होता है' नीति नहीं मानते थे। इन्होंने देखा था कि सुलतान ने छल कर के राजा को बन्दी बनाया है। इसका उत्तर यही है कि—' जस तुरकन्ह राजा

---

१. जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ १२८।

छुर साजा, तस हम साजि छोड़ावहिं राजा।' अतएव इन्होंने कहला भेजा कि पदमावती बादशाह के पास आ रही है। फिर पदमावती के नाम से लोहार को पालकी में बैठाया और सोलह सौ चंडोलों (पालकियों) के नाम पर सैनिक चले। उनके साथ तीस सहस्र घुड़सवार ले कर गोरा बादल रतनसेन को बन्धन-मुक्त करने चले।

ये जानते थे कि घूस से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अतः इन्होंने अपना काम निकालने के लिए बन्दीगृह के रक्षक को दस लाख अँकोर (भेंट) दी और उसे अपनी ओर मिला लिया। उसने बादशाह से जा कर कहा कि

चितउर जेति राज कै पूँजी, लेइ सो आइ पदमावति कूँजी।
बिनती करै जोरि कर खरी, लेइ सौंपौं राजा एक घरी।

सुलतान चक्कर में आ गया। उसने जैसे अपने प्रति विश्वास करने वाले को छल से वश में किया था वैसे ही स्वयं विश्वास करने का फल पाया। 'शठैः शाठ्यं' नीति में निपुण गोरा-बादल राजा रतनसेन को छुड़ाने में कृतकार्य हुए।

कूटनीति विशारद ये दोनों सामन्त वस्तुतः असाधारण वीर भी थे। युवा बादल का कुछ ही दिन पहले विवाह हुआ था। उसकी नवोढा पत्नी अपनी नारी-सुलभ चेष्टाएं कर के उसे मोहित न कर सकी। तब उसने लाज छोड़ उसकी फेंट पकड़ कर रोकने की चेष्टा की और कहा—

आजु गवन हौं आई नाहाँ, तुम न कंत गवनहु रन माहाँ।

वह उसके पैरों पर गिर पड़ी, अपनी अलकों के फंदे में फँसाने लगी, पर बादल को उसके कर्त्तव्य पथ से विमुख न कर सकी। वह बोला

कि 'गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी।' जब उसकी सब चेष्टाएँ विफल हुई तब उसने यह कह कर अनुमति दे दी कि 'तुम किय साहस मैं सत बाँधा।' इसलिए

रन संग्राम जूझि जिति आवहु, लाज होइ जो पीठि देखावहु।

बादल के अल्पवय की चर्चा कर के उसकी माँ ने उसे बड़े बड़े दलपतियों को भी समाप्त करने वाले अलाउद्दीन के साथ युद्ध करने जाने से रोकना चाहा था किन्तु वह सिंहशावक गरज कर बोला—

मातु न जानसि बालक आदी, हौं बदला सिंघ रनवादी।
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा, सिंह क जाति रहै किमि छपा।
तौ लगि गाज न गाज सिंघेला, सौंह साह सौं जुरौं अकेला।

इस प्रकार युद्ध करने के लिए प्रस्तुत बादल निर्भय हो दिल्ली से अपने स्वामी को मुक्त कराने में गोरा का दाहिना हाथ हुआ। जब सुलतान की सेना राजा को घेरने के लिए आगे बढ़ी तब गोरा ने बादल के हाथों में राजा की रक्षा का भार सौंप दिया। बादल ने उसे सुरक्षित चित्तौड़ पहुँचा दिया।

और गोरा! वह तो जीवन के सब खेल खेल चुका था। उसे मरने से डर न था। राजा को सकुशल पदमावती के पास पहुँचाने की प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर पा चुकने पर उसने शाही सेना से जम कर लोहा लिया। उसके साथियों ने घमासान युद्ध कर के वीरगति पाई। अकेला रह जाने पर गोरा ने लोमहर्षण संग्राम किया। उसकी छटा देखते ही बनती है—

लेइ हाँकि हस्तिन कै ठटा, जैसे पवन बिदारै घटा।
जेहि सिर देइ कोपि करवारू, स्यो घोड़े टूटै असवारू।

इस पर जब सारी सेना ने उसे घेर कर एक साथ आक्रमण कर दिया तब वह

जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा, पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा।

और उसे 'तुरुक बोलावहिं' (पर उसकी) 'बोलै बाँहा'। वह शत्रुओं की बात का उत्तर हाथ के प्रहार से देता था। अन्त में सिंह पर आसीन हो सरजा उस पर झपटा। और

मारेसि साँग पेट महँ धँसी, काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी।

इस प्रकार आँतें निकल आने पर भी गोरा विचलित न हुआ। उसने आँतें समेट कर बाँध लीं और फिर घोड़े पर चढ़ कर सरजा पर वार किया। पहला और दूसरा वार सरजा ने क्रमशः अपनी साँग और ढाल पर रोक लिया। तीसरा वार उसकी गरदन पर रखी गदा को विदीर्ण न कर सका। उधर सरजा ने ऐसा प्रहार किया कि गोरा का पंजर कट गया, यों वीरवर गोरा खेत रहा। कवि ने उसे स्वर्ग-प्राप्ति का प्रमाण यों दिया—

गोरा परा खेत महँ सुर पहुँचावा पान।

सच्चा वीर इसी प्रकार अपना तेज प्रकाशित करता है।

राघव चेतन—यह बड़ा ज्ञानी, सहदेव के सदृश पंडित, व्यास के समान कवि एवं वररुचि की भाँति वेदज्ञ था। उसने सिंहल की (पदमावती की) कथा कविताबद्ध की थी, जिसे सुन कर कवि सिर धुनते। उसमें उन्हें वेद के स्वर सुनाई पड़ते। उसके इस पाण्डित्य के कारण चौदहों विद्याओं में प्रवीण राजा रतनसेन उसे बहुत चाहता। वह उसकी सभा में पंडित था। परन्तु वेदज्ञ विद्वान् होने के साथ ही वह जादू-टोना जानता था। उसे यक्षिणी सिद्ध थी। उसकी प्रवृत्ति

चमत्कार-प्रदर्शन की ओर उन्मुख थी। यह दूसरों को नीचा दिखाने के लिए तन्त्र का प्रयोग करता था। इसी से उसने प्रतिपदा को ही दूज का चाँद दिखा कर सभा के पंडितों को राजा की आँखों में गिरा दिया। परन्तु जब यह विदित हुआ कि उस दिन दूज न थी तब पंडितों ने उसके विरुद्ध राजा को भड़काया। राजा ने उसे देश से बाहर निकाल दिया।

वाममार्गी राघव अपने स्वामी की पत्नी को कुदृष्टि से देखने में नहीं हिचकता था। उसका देश-निकाला सुन कर पद्मिनी ने उसे झरोखे के नीचे बुला कर अपने हाथ का एक कङ्कण दान में दिया कि वह राजा के द्वारा किये गये अपने अपमान से उत्पन्न क्रोध को शान्त करे। परन्तु वह तो ठहरा कामुक। रानी की छवि देखते ही वह वज्राहत जैसा अचेत हो गया। पदमावती की भेजी सखियाँ उसे सचेत करने पहुँचीं। उसे चेत हुआ। वह सिर धुनने और पागल की नाईं प्रलाप करने लगा कि पदमावती दक्षिणा देने के धोखे झरोखे से मेरे प्राण ले गई। सखियों के समझाने पर कि ऐसा कहने पर तू प्राणों से हाथ धोयेगा उसका लोभी एवं कृतघ्न रूप प्रकट हुआ। उसने निश्चय किया कि

अस कंचन जौ पावौं दूजा, दारिद हरै आस मन पूजा।
दिल्ली नगर आदि तुरकानू, जहाँ अलाउदीन सुलतानू।
कँवल बखानौं जाइ तहँ जहँ अलि अलाउदीन।
सुनि कै चढ़ै भानु होइ रतन जो होइ मलीन।

इस प्रकार अपने अपमान का बदला लेने के लिए वह अपने स्वामी की पत्नी के अपहरण और उसके अपमान के लिए जब उद्यत

हुआ तब उसका सारा शास्त्र-ज्ञान न जाने कहाँ चला गया। वह मानो नारी-भेद और उत्तेजक नखशिख के वर्णन में सिमट कर रह गया। इतना ही नहीं, पदमावती को देखने पर उसके मन में जो कामोत्तेजना हुई थी उसे भी कहने में उसे लाज न लगी। वह विद्वान ब्राह्मण होते हुए भी स्वार्थ-सिद्धि के लिए पृथ्वी पर शिर टेक कर तुर्क बादशाह को अभिवादन करने में न हिचका। वह अलाउद्दीन से अपार धन और दूसरा कंकण पा कर कृतार्थ हुआ।

वह ऐसा हठी था कि राजा रतनसेन को नीचा दिखाने के लिए चित्तौड़ के आक्रमण के समय अलाउद्दीन के साथ रहा। निर्ल्लज भी वह परले सिरे का था। उसे भोज के समय अलाउद्दीन के साथ चित्तौड़ गढ़ में उपस्थित रहने का साहस था। जब पदमावती की प्रतिच्छाया दर्पण में देख कर अलाउद्दीन अपने को सँभाल न सका तब राघव ने अपने पुराने स्वामी से सीधे बातें कीं और उसे उलटा-सीधा पाठ पढ़ा कर धोखा भी दिया। उससे कहा कि यह कुछ नहीं, सुलतान को पान में पड़ी सुपारी लग गई है। इस समय इन्हें विश्राम के लिए ले चलिये। उधर जब अलाउद्दीन ने चेत आने पर प्रतिबिम्ब की नारी का रूपकातिशोक्ति के द्वारा बखान किया तब पदमावती के प्रत्यक्षदर्शी राघव चेतन ने खोल कर वतला दिया कि 'निहचै तुम पदमावति देखी।' फिर पदमावती के विविध अंगों का वर्णन कर सुलतान को उभारा कि अब ऐसा उपाय कीजिये कि

अलक जो लटकै अधर पर सो गहि कै रस लीज।

जायसी ने राघवचेतन के रूप में ऐसे पात्र की सृष्टि की है जिसके आचरण में नीचता की परा काष्ठा है, जिसका सारा ज्ञान

और पाण्डित्य स्वार्थ के सामने विलीन हो जाता है और जो मानवता का कलङ्क कहा जा सकता है।

पदमावत के विशिष्ट चरित्र इतने ही हैं। इनके अतिरिक्त गन्धर्वसेन, बादल की माँ और पत्नी, देवपाल और अलाउद्दीन की दूतियाँ, सरजा और देवपाल भी कथाप्रवाह में सहायक गौण पात्र हैं।

गन्धर्वसेन सिंहल का राजा है। उसे पदमावती के योग्य कोई पुरुष नहीं जँचता। कन्या सयानी हो जाने पर माँ की चिन्ता बढ़ जाती है। परन्तु पदमावती की माँ अपने पति से इतना डरती है कि उससे कह नहीं सकती कि बेटी का ब्याह कर देना चाहिये। वह रतनसेन के साथी योगी बने राजकुमारों को पकड़वा लेने में समर्थ है। ऐसा है उसका सैन्यबल। और रतनसेन को सूली देने से भाट महादेव और हीरामन के समझाने-बुझाने पर तभी विरत होता है जब उसे विश्वास हो जाता है कि वह (रतनसेन) साधारण योगी नहीं प्रत्युत चित्तोड़ का राजा है और पदमावती का सच्चा प्रेमी एवं उसके अनुरूप वर है। फिर तो वह रतनसेन का यथेष्ट आदर सत्कार कर अपना दामाद बना कर बहुत दिनों तक उसका आतिथ्य कर अपनी सहृदयता और राजोचित व्यवहार करने की क्षमता का परिचय देता है।

बादल की माँ में वात्सल्य स्नेह का स्वाभाविक रूप दिखलाया गया है। वह सुलतान की विशाल वाहिनी के सामने अपने नवयुवक पुत्र के दुःसाहस को अनुपयुक्त समझती है। इसी से मध्यकालीन उस क्षत्राणी माँ का स्वभाव उसमें नहीं देखा जाता, जो हँसते-हँसते टीका करके अपने पुत्र को रणक्षेत्र में भेजती थी।

बादल की पत्नी में नव-विवाहिता नारी की पति के साथ सुखोपभोग की चाह प्रत्यक्त है। वह पहले तो पति से बातें करने में लजाती है और उसे अपनी चेष्टाओं के द्वारा ही रणभूमि में जाने से रोकने का प्रयास करती है, किन्तु अन्त में लाज छोड़ने के लिए विवश होती है और बादल की फेंट फकड़ उससे खुल कर मन की बात कहती है। परन्तु जब बादल अपने मार्ग से हटने को प्रस्तुत नहीं होता तब वह रो पड़ती है। अन्त में उसका वीरनारीत्व सजग होता है। वह कह उठती है कि हे पति, यदि तुमने युद्ध करने का निश्चय कर साहस किया है तो मैंने भी सती हो जाने का साहस किया है। तुम संग्राम जीत कर लौटना। यदि पीठ दिखाओगे तो मुझे लज्जा लगेगी।

तुम्ह पिउ साहस बाँधा, मैं दिय माँग सेंदूर।
दोउ सँभारे होइ सँग, बाजै मादर तूर।

देवपाल कुंभलनेर का राजा और रतनसेन का शत्रु था। वह नीच वृत्ति का कामुक व्यक्ति था। रतनसेन के बन्दी हो जाने पर उसने कुमुदिनी नाम की बुढ़िया दूती छल के द्वारा पदमावती को ले आने के निमित्त इस विचार से भेजी कि 'सत्रु-साल तब नेवरै सोई, जब घर आव सत्रु कै जोई।' परन्तु उसे इस काम में सफलता न मिली। वह युद्ध से पीछे हटने वाला न था। वह अपनी सेना ले कर रतनसेन से भिड़ गया। फिर उसने रतनसेन को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा। उसने ऐसी साँग मारी कि रतनसेन की नाभि में घुस कर पीठ से निकल गई।

देवपाल की दूती वृद्धा ब्राह्मणी कुमुदिनी टोना जानती थी। वह

छल छन्द भी खूब जानती थी। उसने बहुत-सी भेंट की वस्तुएँ ले जा कर पदमावती पर पहले तो यह प्रभाव जमा ही दिया कि मैं तुम्हारे मायके से आई हूँ। वह बातचीत करने में भी प्रवीण थी। परन्तु पदमावती के सतीत्व को जान कर भी उससे विरत करने का प्रयास करते समय उसकी सारी कलई खुल गई। जब उसने पदमावती को देवपाल के प्रति आकृष्ट करने की चेष्टा की तब तो रानी ने उसकी खूब मरम्मत की। किसी सती का धर्म डिगाने का जो दुष्परिणाम होता है वह उसको भोगना पड़ा। उसके नाक कान काट डाले गये, सिर मुँड़ा दिया गया, मुँह में कालिख पोती गई और वह गधे पर चढ़ा कर विदा कर दी गई। वह कौन-सा मुँह ले कर देवपाल के पास लौटी होगी!

बादशाह की दूती—वह वास्तव में शाही दरबार की वेश्या थी, जो वेश बनाने की कला के साथ ही 'चतुर कला मनमोहन, परकाया परवेस' भी जानती थी। वह बात बनाने में चतुर थी। उसने रानी को बतलाया कि रतनसेन दिल्ली में बन्दी है। इस पर पदमावती उसके पैरों पर गिर पड़ी और जोगिन हो कर उसके साथ जाने को तैयार भी हो गई। यदि सखियों ने न सँभाला होता तो सरल-हृदया पदमावती सम्भवतः उसके जाल में फँस गई होती। इससे प्रकट होता है कि वह बड़ी ही प्रवीण दूती थी।

सरजा—अलाउद्दीन की सेना का योद्धा सरजा ऐसा प्रचण्ड था कि सिंह पर सवारी करता था। उसे अलाउद्दीन दूत की भाँति भी काम में लाता था। इससे सूचित होता है कि यह उसका विश्वासपात्र और चतुर सभासद था। वह चाटुकार भी कम न था।

रतनसेन ने जब सन्धि करना स्वीकार कर लिया तब सरजा ने अला-उद्दीन की खुशामद करते हुए राजा को कौवा तक कहा था।

सरजा युद्ध क्षेत्र में प्रबल शक्तिशाली था। जब गोरा ने सुलतान की सेना के दाँत खट्टे कर दिये तब वही अकेला उससे लोहा लेने को आगे बढ़ा। गोरा के तीन प्रबल प्रहार सहने की क्षमता उसी में थी। उसी के आघात से गोरा के प्राण पखेरू उड़े थे।

पदमावत में रहस्य और अप्रस्तुत की योजना

सूफियों की धारणा है कि सृष्टि के रोम-रोम में जो झलक दिखाई दे रही है वह उसी [अर्थात् उस परम आलम्बन] की झाँकी है जो हमें लुभाने के लिए ही हो रही है। सितारे चमक-दमक के साथ उसकी ओर खिंच रहे हैं, चाँद उसी की ओर बढ़ा जा रहा है, सूरज भी उसी के फेर में पड़ कर जल रहा है। संक्षेप में, उसने चारों ओर प्रेम का बीज बखेर दिया है जिसने उग कर सबको आलम्बन से आश्रय बना लिया है और इसी से हम भी उसके वियोग में पड़ गये हैं।[1]

मानव-प्रेम की कहानी के भीतर अपनी सूफी-साधना में मान्य इसी विश्वास[2] के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना ही

---

१. चन्द्रबली पांडे, तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ० ११८

२. तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० १४० में 'दी मिस्टिसिज़्म आव इस्लाम, पृष्ठ ८०-१ के आधार पर जामी का मत यों व्यक्त किया

जायसी का लक्ष्य प्रतीत होता है।

उस परम रूप-निधान प्रियतम के प्रभाव से सारा जगत् उसके लिए घायल की तरह छटपटा रहा है। उन्होंने पदमावती की बरुनियों के वर्णन के द्वारा इसे सुन्दर ढंग से इङ्गित किया है—

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा, बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने, वै सब बान ओही के हने।
धरती बान बेधि सब राखी, साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े, सूतहिं सूत बेधि सब गाढ़े।

इसीलिए वस्तु एवं भाव के वर्णन के ऐसे अवसर वे हाथ से जाने नहीं देते जिनमें दिव्य सत्ता के सौन्दर्य की व्याप्ति एवं प्रभावोत्पादकता की झलक दिखलाई जा सकती है। जब पदमावती यौवन के भार से झुकी (भै उनंत पदमावति बारी) तब 'जग बेधा तेहि अंग-सुबासा' और 'सुर नर देखि माथ भुइँ धारे' तथा

जग कोइ दीठि न आवै आछहिं नैन अकास।
जोगी जती संन्यासी तप साधहिं तेहि आस।

यह कह कर जायसी ने काव्य के आरम्भ में स्पष्ट सूचित कर दिया कि पदमावती उसी प्रेमस्वरूपिणी दैवी सत्ता का प्रतीक है जिसके लिए यावत् योगी, यती, संन्यासी साधना करते हैं और जिसको नर

गया है—अल्लाह परम सौन्दर्य है और वह प्रेम चाहता है। प्रेम से प्रभावित हो कर उसने अपने मुख का आदर्श लिया और उसमें अपना रूप अपने आप व्यक्त करने लगा। ···देश काल की रचना कर के उसने एक उपवन का डौल डाला, जिसका प्रत्येक पत्ता उसके कमाल को प्रत्यक्ष करता है।

ही नहीं सुर भी शिर झुकाते हैं। इतना ही नहीं, तपस्वी अपना तन आरे से इस आशा से चिरवाते हैं कि हमारे रक्त को ले कर पदमावती अपनी माँग का सिन्दूर बना ले—

राजा बहुत मुए तपि लाइ लाइ भुइँ माथ।
काहू छुवै न पाए, गए मरोरत हाथ।

करवत तपा लेहिं होइ चूरू, मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू।

पदमावती उसी की प्रतीक है। उसके नखशिख के वर्णन में हीरामन ने रतनसेन को बीच-बीच में इसके सङ्केत दिये हैं। संसार की जितनी ज्योति है सब उसके ही दाँतों की चमक से उत्पन्न है, सब उसी की झलक है—

जेहि दिन दसन जोति निरमई, बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ जहँ विहँसि सुभावहिं हँसी, तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।

उसके चरण-कमल जहाँ जहाँ पड़ते थे देवता उन्हें अपने हाथों पर लेते और वहाँ सिर झुकाते थे—

देवता हाथ हाथ पगु लेहीं, जहँ पगु धरै सीस तहँ देहीं।

राघवचेतन ने अलाउद्दीन से पदमावती के सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उसमें भी उस अलौकिक सौन्दर्य की सूचना दी थी। उसकी माँग के सिन्दूर के ऊपर देवता बलि हो गये और नित्य सवेरे सूर्य उसी की पूजा करता है—

बलि देवता भए देखि सेंदूरू, पूजै माँग भोर उठि सूरू।

और

बेनी कारी पुहुप लेइ निकसी जमुना आइ।
पूज इंद्र आनंद सौं सेंदुर सीस चढ़ाइ।

तथा

इंद्र चंद्र रवि देवता सबै जगत मुख चाह।

यह संसार उसी की झलक मात्र है। उसके रूप की प्रतिकृति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। तभी पदमावती के प्रभाव से मानसरोवर और पवन कुमुद चन्द्रमा कमल एवं हंस आदि की क्या दशा हुई यह देखिये—

कहा मानसर चाह सो पाई, पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे, पावा रूप रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई, भा सीतल गै तपनि बुझाई।
बिगसा कुमुद देखि ससिरेखा, भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।
पावा रूप रूप जस चहा, ससि-मुख जनु दरपन होइ रहा।

नयन जो देखा कँवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर।

सूर्य प्रातः सायं उसी की माँग के सिन्दूर की रेखा के प्रभाव से लाल हुआ करता है—

भोर साँझ रवि होइ जो राता, ओहि रेखा राता होइ गाता।

"सूफी देखते हैं कि प्रकृति उस (अर्थात् परम आलंबन) के विरह में कहीं सूख रही है, कहीं रो रही है, कहीं चक्कर काट रही है, कहीं उन्मत्त है, कहीं मूच्छित है···उसकी लालसा और उसकी रति यह देख कर तड़प उठती है, लंबी साँस लेती है और उसके विरह में जल उठती है। कभी-कभी उसकी झलक पा उसे कुछ संतोष होता है और वह खिल पड़ती है। किंतु फिर उसी के वियोग में चक्कर काटने लगती है।"[1]

---

१. तसव्वुफ अथवा सूफीमत पृ० १२०।

सूफी साधना की यह प्रवृत्ति भी पदमावत में उपलब्ध है। अपने किनारे टीले पर आ कर पदमावती के खड़ी होते ही मानसरोवर उमंग से भर गया। उन चरणों से मिलने का अभिलाष उसके मन में जाग पड़ा। उसमें लहरें उठने लगीं—

सरवर रूप बिमोहा हिये हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि लेइ।

और आकाश में जो एक स्थान पर अटल रह कर ध्रुव निरन्तर डूबता-निकलता रहता है वह किस आशा से? पदमावती के गाल के तिल को देख कर ही तो वह अडिग हो उसी को देखा करता है—

सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा धुव गाड़ि।
खिनहिं उठै खिन बूड़ै डोलै नहिं तिल छाँड़ि।

फिर उसके कानों की सेवा करने के लिए नक्षत्रगण सदैव एकत्र रहते हैं। जब चाँद और सूरज (सिंहलद्वीपी दो खुंभियाँ बन कर) उनकी सेवा में रहते हैं तब बेचारे नक्षत्र क्यों न रहें—

करहिं नखत सब सेवा स्रवन दिपहिं अस दोउ।
चाँद सुरुज अस गोहने और जगत का कोउ॥

और उसके अनिंद्य सौन्दर्य के भाण्डार दिव्य रूप के वियोग में तड़प रही प्रकृति का करुण दृश्य जायसी ने नागमती के विरह-वर्णन के प्रसङ्ग में दिखलाया है। नागमती के विरह की ज्वाला से पेड़ों के पत्ते जल जाते थे और पक्षी भस्म हो जाते थे। साथ ही जब वह रोती थी तब उसके रक्ताश्रुओं से वन की काले मुँह वाली घुँघुची और लाल रंग के बिंबाफल उत्पन्न हो जाते थे। उसकी वेदना से परवल पक गये और गेहूँ का हृदय विदीर्ण हो गया। आज भी मानो ये

सब अपना वही रूप लिये दिव्य प्रियतम के विरह में हुई अपनी दशा दिखला रहे हैं—

जेहि पंखी के निग्रर होइ कहै विरह कै वात।
सोई पंखी जाइ जरि तरिवर होइ निपात।

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई, रकत आँसु घुँघुची वन वोई।
भइ कर मुखी नैन तन राती, को सेराव विरहा दुख ताती।
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ वनवासी, तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी।
तेहि दुख भए परास निपाते, लोहू बूड़ि उठे होइ राते।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू, परवर पाक फाट हिय गोहूँ।

योगी रतनसेन के शरीर पर लगी पदमावती के दृष्टि-वाण की चोट का प्रभाव हीरामन इस प्रकार विश्व भर में व्याप्त बतलाता है—

रोवँ रोवँ वै वान जो फूटे, सूतहि सूत रुहिर मुख छूटे।
नैनहिं चली रकत कै धारा, कंथा भीजि भएउ रतनारा।
सूरज बूड़ि उठा होइ राता, औ मजीठ टेसू बन राता।
भा बसंत रातीं वनसपती, औ राते सब जोगी जती।
पुहुमि जो भीजि भएउ सब गेरू, औ राते तहँ पंखि पखेरू।
राती सती अगिनि सब काया, गगन मेघ राते तेहि छाया।
ईंगुर भा पहार जौं भीजा, ...।

जायसी वर्ण्य विषय का उल्लेख करते करते कहीं कहीं ऊर्ध्व का संकेत भी करने लगते हैं। वे इस जीवन के परे के जीवन से कभी आँख नहीं मूँद सके। उन्होंने सिंहल के गढ़ का वर्णन करते हुए जब उसमें बजने वाले घंटों की चर्चा की तब जीवन के अन्त की सूचना देने वाले निरन्तर बज रहे घंटों का उल्लेख यों किया—

जबहीं घरी पूजि तेइँ मारा, घरी घरी घरियार पुकारा।
परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा, का निचिंत माटी कर भाँड़ा।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ काँचे, आएउ रहै न फिर होइ बाँचे।
घरी जो भरी घटी तुम आऊ, का निचिंत होइ सोउ बटाऊ।
पहरहिं पहर गजर निति रोई, हिया बजर मन जाग न सोई।

मुहमद जीवन-जल भरन, रहँट-घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति।

इसी प्रकार पदमावती की उस समय की इस वेदना में परलोक की ओर भी संकेत है जिस समय राजा रतनसेन को बन्दी करके अलाउद्दीन दिल्ली ले गया था—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू, कोइ न बहुरा कहै सँदेसू।
जो गवनै सो तहाँ कर होई, जो आवै किछु जान न सोई।

हीरामन के पिंजरे से उड़ जाने पर पदमावती उसके लिए व्याकुल हुई। उसने सखियों से उसका पता लगाने को कहा। उन लोगों ने जो बातें कहीं उनसे संकेत द्वारा शरीर को छोड़ कर उड़ गये प्राणों का भी अर्थ ग्रहण किया जाना अभिप्रेत है—

चहूँ पास समुझावहिं सखी, कहाँ सो अब पाउब गा पँखी।
जौ लहि पींजर अहा परेवा, रहा बंदि महँ कीन्हेसि सेवा।
तेहि बंदि हुति छुटै जो पावा, पुनि फिरि बंदि होइ कित आवा।
वै उड़ान फर तहियै खाए, जब भा पंखि पाँख तन आए।
पींजर जेहिक सौंपि तेहि गएऊ, जो जाकर सो ताकर भएऊ।
दस दुवार जेहि पींजर माँहा, कैसे बाँच मँजारी पाहाँ।
यह धरती अस केतन लीला, पेट गाढ़ अस बहुरि न ढीला।

जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि।
तेहि बन सुअटा चलि बसा, कौन मिलावै आनि।

ऐसे अन्य अनेक स्थलों में जायसी ने प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की योजना करके परोक्ष की ओर संकेत किये हैं।

अलंकृति

जायसी ने पदमावत में जो वर्णन किये हैं उनमें कुछ ऐसे प्रसङ्ग हैं जिनमें कवित्व का मनोरम रूप प्रदर्शित हुआ है। उसमें वर्ण्य-विषय के सौन्दर्य, प्रभाव और रूप का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए उपयुक्त उपमानों का प्रयोग किया गया है। इसी से उनके दृश्य व्यापार भाव आदि के वर्णन निखर उठे हैं। इन उपमानों में काव्य में परम्परा से प्रयुक्त हो रहे उपमान हैं और ऐसे भी हैं जिन्हें हम जायसी के देखे और जाने-माने उपमान कह सकते हैं। नारी के शरीर के अंग-प्रत्यंग में जो आकर्षक सुषमा पुरुष की आँख देखती है वह इस सूफ़ी फ़कीर की आँख से बच नहीं सकी। उसे देख कर लोक-प्रसिद्ध उपमान उनके ध्यान में न आयें यह कैसे हो सकता है। कारण, वह सहृदय और रसिक जो ठहरे। पदमावती के नखशिख के वर्णन के समय उन्होंने उनका बहुत अच्छा प्रयोग किया है। जान पड़ता है जायसी ने काव्य शास्त्रों से ये उपमान नहीं चुने थे, किन्तु सरस काव्यों के मर्मज्ञ होने के नाते उनसे परिचित हुए थे। इसी से उनके प्रयोग में नितान्त स्वाभाविकता है। कुछ चुने हुए उपमानों का प्रयोग देखिये। ये सब पदमावती के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुए हैं।

केश—भौंर केस वह मालति रानी, बिसहर लुरे लेहिं अरघानी।

माँग (कुमारावस्था में)—

कंचन रेख कसौटी कसी, जनु घन महँ दामिनि परगसी।

(सौभाग्यवती हो जाने पर)—

सेंदुर रेख जो ऊपर राती, बीरबधूटिन्ह कै जसि पाँती।

नेत्र—राते कँवल करहिं अलि भवाँ, घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।

बरुनी—बरुनी का बरनौं इमि बनी, साधे बान जानु दुइ अनी।

नासिका—अधर दसन पर नासिक सोभा, दारिउँ बिंब देखि सुक लोभा।

अधर—अधर सुरंग अमी रस भरे, बिंब सुरंग लाजि बन फरे।

दशन—दसन चौक जनु बैठे हीरा।

ग्रीवा—बरनौं गीउ कंबु कै रीसी, कंचन तार लागि जनु सीसी।

कमर—लंब पुहुमि अस आहि न काहू, केहरि कहौं न ओहि सर ताहू।

अब कुछ ऐसे उपमान भी देख लेने चाहिये जो जन-जीवन के मध्य से जायसी की सारग्राहिणी दृष्टि ने ग्रहण किये थे। ये सब नागमती के वियोग-वर्णन से चुने गये हैं —

सावन में—बाट असूझ अथाह गँभीरी, जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी।

भादों में—बरसै मघा झकोरि झकोरी, मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी।

अगहन में—अब यहि बिरह दिवस भा राती, जरौं बिरह जस दीपक बाती।

माघ में—नैन चुवहिं जस महवट नीरू, तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू।

टपटप बूँद परहिं जस ओला, बिरह पवन होइ मारै झोला।

वैशाख में—लागिउँ जरै जरै जस भारू, फिरि फिरि भूँजेसि तजेउँ न बारू।

इन उद्धरणों से यह सूचित होता है कि जायसी सादृश्य-विधान की कला में निष्णात थे। इसी से पदमावत के सादृश्य-

मूलक अलङ्कारों की रमणीकता का समकक्ष ढूँढ निकालना सहज नहीं जान पड़ता। जायसी को उत्प्रेक्षा बहुत ही प्रिय थी। वस्तूत्प्रेक्षा के द्वारा पदमावती के लावण्य की व्यञ्जना देखिये। उसकी घुँघराली लटों का सौंदर्य—

कोंवल कुटिल केस नग कारे, लहरन्हि भरे भुअँग बैसारे।
बेधे जनौं मलयगिरि बासा, सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा।

पदमावती की मोतियों से भरी माँग के लिए अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा देखिये—

तेहि पर पूरि धरे जो मोती, जमुना माँझ गंग कै सोती।

पदमावती की ग्रीवा के विषय में वस्तूत्प्रेक्षाओं की यह माला कितनी सुहावनी है—

बरनौं गीउ कँबु कै रीसी, कंचन तार लाग जनु सीसी।
कुंदै फेरि जानु गिउ काढ़ी, हरी पुछार ठगी जनु ठाढ़ी।
जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा, तेहि तै रुचिक भाव गिउ बाढ़ा।
चाक चढ़ाइ साँच जनु कीन्हा, बाग तुरंग जानु गहि लीन्हा।

पदमावती की कमर की क्षीणता का आतिशय्य प्रकट करने के लिए जायसी ने वस्तूत्प्रेक्षा की कि

भृंग-लंक जनु माँझ न लागा, दुइ खँड-नलिन माँझ जनु तागा।

पदमावती के मुँह से वचन निकलने पर उसकी शोभा की ये उत्प्रेक्षाएँ अवलोकनीय हैं—

ससि-मुख जबहिं कहै किछु बाता, उठत ओठ सूरज जस राता।
दसन दसन सौं किरिन जो फूटहिं, सब जग जनहुं फुलझरी छूटहिं।
जानहुँ ससि महँ बीजु देखावा, चौंकि परै किछु कहै न आवा।

कौंधत अह जस भादौं-रैनी , साम रैनि जनु छलै उड़ैनी।
जनु बसन्त ऋतु कोकिल बोली , सुरस सुनाइ मारि सर डोली।

हेतु फल और क्रिया की उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग भी जायसी ने किया है किन्तु उनकी वस्तूत्प्रेक्षाओं में ही सबसे अधिक रमणीयता है।

पदमावती के सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने व्यतिरेक के द्वारा उपमेय का उत्कर्ष प्रकट करने में अच्छी सफलता पाई है।

उसके गौर कान्त शरीर की तुलना बारहबानी खरे सोने से करने के बाद जायसी व्यतिरेक द्वारा उसको सोने से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए कहते हैं—

वह पदमिनि चितउर जो आनी , काया कुंदन द्वादसबानी।
कुंदन कनक ताहि नहिं बासा , वह सुगंध जस कँवल बिगासा।
कुंदन कनक कठोर सो अंगा , वह कोमल रँग पुहुप सुरंगा।

उसके ललाट के सामने उपमानों की हीनता देखिये—

कहौं लिलार दुइज कै जोती , दुइज हि जोति कहाँ जग ओती।
सहस किरिन जो सुरुज दिपाई , देखि लिलार सोउ छपि जाई।
का सरवरि तेहि देउँ मयंकू , चाँद कलंकी वह निकलंकू।
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा , वह बिनु राहु सदा परगासा।

पदमावती की जो चाल देख राघवचेतन अचेत हुआ था उसका उसने व्यतिरेक के द्वारा अलाउद्दीन के सामने यों वर्णन किया था—

अछरी लाजि छपीं गति ओही , भईं अलोप न परगट होहीं।
हंस लजाइ मानसर खेले , हस्ती लाजि धूरि सिर मेले।

जायसी ने सौन्दर्य का वर्णन करने में रूपकातिशयोक्ति का

भी सहारा लिया है। मानसरोवर में पदमावती अपनी सहेलियों के साथ जलक्रीड़ा करती थी। उस दृश्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि

करिल केस बिसहर बिस भरे, लहरें लेहिं कँवल मुख धरे।

अलाउद्दीन ने दर्पण में पदमावती का प्रतिबिम्ब देख कर उस सौन्दर्य के सम्बन्ध में यह रूपकातिशयोक्ति की थी—

देखि एक कौतुक हौं रहा, रहा अँतरपट पै नहिं अहा।
सरवर देख एक मैं सोई, रहा पानि पै पान न होई।
सरग आइ धरती महँ छावा, रहा धरति पै धरत न आवा।
तिन्ह महँ पुनि एक मंदिर ऊँचा, करन्ह अहा पर कर न पहूँचा।
तेहि मंडप मूरति मैं देखी, बिन तन बिनु जिउ जाइ बिसेखी।
पूरन चंद होइ जनु तपी, पारस रूप दरस देइ छपी।
अति बिचित्र देखा सो ठाढ़ी, चित कै चित्र लीन्ह जिउ काढ़ी।
सिंघ-लंक कुंभस्थल जोरू, आँकुस नाग महाउत मोरू।
तेहि ऊपर भा कंवल बिगासू, फिरि अलि लीन्ह पुहुप मधु-बासू।
दुइ खंजन बिच बैठेउ सूआ, दुइज क चाँद धनुक लेइ ऊआ।
मिरिग देखाइ गवन फिरि किया, ससि भा नाग सूर भा दिया।

इसी प्रकार उपमा रूपक आदि के प्रचुर प्रयोग भी कवि ने किये हैं। साथ ही तद्गुण, निदर्शना, विनोक्ति, प्रत्यनीक, अर्थान्तर-न्यास, दृष्टान्त, विशेषोक्ति, विरोध, भ्रम, परिणाम, विभावना, परिकरांकुर, विषादन, अनुप्रास, यमक, श्लेष, मुद्रा आदि अलंकार भी पदमावत में प्रयुक्त हुए हैं।

जायसी ने प्रस्तुत की उत्कर्ष बढ़ाने के लिए अलंकारों का

प्रयोग अधिक किया है, किन्तु कहीं कहीं उन्होंने ऐसे श्लेष, मुद्रा और रूपक गढ़े हैं जो कविता के मर्मज्ञों को अरुचिकर प्रतीत होते हैं। नागमती का बारहमासा सहृदयों का कंठहार है। परन्तु उसे समाप्त करने के पूर्व कवि ने लिखा कि नागमती जब अपने पति के सम्बन्ध में मनुष्यों से पूछ कर थक गई तब वह पक्षियों से पूछने निकली—"मानुष घर घर बूझि कै बूझै निसरी पंखि।" फिर क्या था, जायसी का सहृदय मन श्लेष और मुद्रा के खेलवाड़ में जा उलझा। देखिये न—

भई पुछार लीन्ह बनवासू, बैरिनि सवति दीन्ह चिलवाँसू।
होइ खर बान बिरह तनु लागा, जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा।
हारिल भई पंथ मैं सेवा, अब तहँ पठवौं कौन परेवा।
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ, जौं चित रोख न दूसर ठाऊँ।
जाहि बया होइ पिउ कँठ लवा, करै मेराव सोइ गौरवा।
कोइल भई पुकारति रही, महरि पुकारै लेइ लेइ दही।
पियरि, तिलौरी औ जलहंसा, हिरदय पैठि बिरह कठनंसा।

यहाँ पुछार (मोर), खरबान, हारिल, धौरी (धवल), पंडुक (पड़की, फाख्ता), चितरोख (चितरोखा), बया, लवा, गौरवा, महरि (ग्वालिन), पियरि (पीलक), तिलौरी (तेलिया), जलहंस और कठनंसा (नीलकंठ)—इन पक्षियों के नामों के कारण मुद्रा अलंकार में श्लेष द्वारा चमत्कार का प्रदर्शन मात्र है, कुछ कवित्व का सौन्दर्य नहीं।

ऐसे ही अलाउद्दीन की सेना के प्रयाण का वर्णन करते समय तोप का नारी के रूप में निम्नांकित वर्णन भी श्लेष जन्य कुतूहल

उत्पन्न करके ही रह जाता है—

चलीं कमानै जिन्ह मुख गोला, आवहिं चली धरति सब डोला।
सौ सौ मन वै पीयहिं दारू, लागहिं जहाँ सो टूट पहारू।
माती रहहिं रथन्ह पर परी, सत्रुन्ह महँ ते होहिं उठि खरी।
कहौं सिंगार जैसि वै नारी, दारू पियहिं जैसि मतवारी।
उठै आगि जौ छाँड़हिं साँसा, धुआँ जौ लागै जाइ अकासा।
सेंदुर-आगि सीस उपराहीं, पहिया तरिवन चमकत जाहीं।
कुच गोला दुइ हिरदय लाए, चंचल धुजा रहहिं छिटकाए।
रसना लूक रहहि मुख खोले, लंका जरै सो उनके बोले।
अलक जँजीर बहुत गिउ बाँधे, खींचहिं हस्ती टूटहिं काँधे।
वीर सिंगार दोउ एक ठाऊँ, सत्रुसाल गढ़भंजन नाऊँ।
तिलक पलीता माथे, दसन बज्र के बान।
जेहि हेरहिं तेहि मारहिं, चुरकुस करहिं निदान।

जायसी जैसे सहृदय कवि के द्वारा पदमावत में इस प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शक अलंकारों की योजना ठीक नहीं जान पड़ती। ऐसा लगता है कि चमत्कार-प्रेमी साधारण जनों के मनोरंजन के लिए इनकी अवतारणा हुई होगी।

'जायसी की जानकारी'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि जायसी "बहुश्रुत थे, बहुत प्रकार के लोगों से उनका सत्संग था······यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने काव्यों और रीति-ग्रन्थों का क्रमपूर्वक

अध्ययन किया था।[१]......छंद और रीति आदि के परिज्ञान के लिए भाषा कविजन प्राकृत और अपभ्रंश का सहारा लेते थे। ऐसे ही किसी कवि से जायसी ने काव्य-रीति सीखी होगी।......'पारथ' ऐसे अप्रचलित शब्दों का जो कहीं कहीं उन्होंने व्यवहार किया है वह इसी जानकारी के बल से, न कि संस्कृत के अभ्यास के बल से।"[२]

अपने इस निष्कर्ष का उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। उनके अनुकरण पर जायसी को बहुश्रुत मानने की परिपाटी सी पड़ गई है। परन्तु हमारा विचार है कि जायसी ने संस्कृत और प्राकृत के साहित्य का विशद अध्ययन किया होगा। अलंकार शास्त्र का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत के कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिससे यह अनुमान होता है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। देखिए—

तब उदंत छाला लिखि दीन्हा—

उदंत संस्कृत शब्द है, हिन्दी काव्य में इसका प्रचलन नहीं है। प्रामाणिक शब्दकोश के संपादक इसका मूल नहीं खोज पाये। उन्होंने इस पर [?] लगा दिया है। अमरकोश के अनुसार इसका अर्थ है—'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदान्तः स्यात्'। संस्कृत काव्य में इसका अधिकतर प्रयोग आलंबन के वृत्तान्त के लिए होता है; यथा—

श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्संगमोत्सुकः,
महार्णवपरिक्षेपं लंकायाः परिखालघुम्।[३]

---

१. जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृष्ठ १७४।

२. वहीं, पृष्ठ १७५।

३. रघुवंश, १२।६६।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
स्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव ।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात्किंचिदूनः ॥[1]

नृपतिरवदत्—एतद्भूषणयुगलं प्रतिभूप्रायमस्मत्पार्श्वे मुञ्च । स्वयं पुनर्भवान् देव्युदन्तोपलब्धये हिण्डतां महीमण्डलम् ।[2]

यही सातवाहन प्रबन्ध जिनप्रभसूरिकृत तीर्थकल्प में भी आया है। इस तीर्थकल्प में कुछ कल्प संस्कृत में हैं, कुछ प्राकृत में। इसी में 'सच्चउर कल्प' में गुजरात के राजा कर्ण के मंत्री माधव की प्रेरणा से उलुगखाँ की गुजरात-चढ़ाई का उल्लेख है। यह ग्रंथ अलाउद्दीन की मृत्यु के १६ वर्ष बाद दिल्ली में मुहम्मद तुगलक के प्रशासन में वि० संवत् १३८६ में पूर्ण हुआ और प्रबंधकोश भी वि० संवत् १४०५ में दिल्ली में ही लिखा गया। जायसी की पदमावत का पात्र राघवचेतन माधव के साँचे में ढला है, यह हम देख चुके हैं। जायसी ने तीर्थकल्प अवश्य पढ़ा होगा।

जायसी ने अकूट शब्द का भी प्रयोग किया है—

कै अस्तुति जब बहुत मनावा, सबद अकूट मँडप महँ आवा।

'अकूट' शब्द का अर्थ पदमावत के टीकाकार नहीं कर पाये हैं। यह भी शुद्ध संस्कृत शब्द है। नञ् पूर्वक 'कूट' शब्द से 'अकूट'

---

१. मेघदूत, उ० मे०, ३७।

२. श्री राजशेखरसूरिकृत प्रबन्धकोश (शान्ति निकेतन) सातवाहन प्रबन्ध, पृ० ७०।

बना। 'कूट' शब्द का प्रयोग हिन्दी काव्य में बहुत मिलता है। परन्तु 'अकूट' का नहीं। अमरकोश के अनुसार इसका अर्थ है—

मायानिश्चलयंत्रेषु कैतवानृतराशिषु,
अयोघने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम्।

इस प्रकार 'अकूट' का अर्थ हुआ छल-छंद-रहित सच्चा शब्द। और यह अर्थ जायसी ने अमरकोश के अभ्यास से जाना होगा यह अनुमान करना असंगत न होगा।

पदमावती गोरा-बादल की जिन लोक-प्रसिद्ध वीरों से उपमा देती है, उनमें जगद्देव भी एक है—

तुम वलवीर जैस जगदेऊ, तुम सङ्कर औ मालकदेऊ।

यह प्रसिद्ध वीर जगद्देव कौन है? श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने खंड काव्य 'सिद्धराज' में जगद्देव की कहानी दी है और फिर वही कहानी डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल की 'पदमावत मूल और संजीवनी व्याख्या' के परिशिष्ट में दोहराई गई है। परन्तु यह निरा तोता-मैना का क़िस्सा है।

श्री मेरुतुंगाचार्यविरचित प्रबन्धचिन्तामणि में जगद्देव के शौर्य और दान का बड़ी फड़कती भाषा में वर्णन किया गया है—

अथ जगद्देवनामा क्षत्रियः त्रिविधामपि वीरकोटीरतां बिभ्रत्, श्रीसिद्धचक्रवर्तिना सम्मान्यमानोऽपि तद्गुणमंत्रवशीकृतेन नृपतिना परमर्द्दिश्रीपरमर्द्दिना समाहूतः सोपरोधं पृथ्वीपुरन्ध्रीकुन्तल-कलापकल्पं कुन्तलमण्डलमवाप्य यावत्तदागमं श्रीपरमर्द्दिने द्वाःस्थो निवेदयति तावत्तत्सदसि काचिद्विटवनिता विवसना पुष्पचलच्चलनकां नृत्यन्ती तत्कालमेवोत्तरीयं समादाय सापत्रपा सा तत्रैव निषसाद।

अथ राजदौवारिकप्रवेशिताय श्रीजगद्देवाय परिरम्भप्रियालाप-प्रभृति सम्मानदानादनु प्रधानपरिधानदुकूलं लक्ष्यमूल्यातुल्योद्भट-पटयुगं प्रासादीकृत्य तस्मिन् महार्हासननिविष्टे सभासम्भ्रमे भग्ने सति नृपस्तामेव विटनटीं नृत्यायादिदेश। अथ सा औचित्य-प्रपञ्चचञ्चुश्चञ्चच्चातुर्यधुर्या 'श्रीजगद्देवनामा जगदेकपुरुषः साम्प्रतं समाजगाम। तत्तत्र विवसनाहं जिह्रेमि। स्त्रियः स्त्रीष्वेव यथेष्टं चेष्टन्ते' इति तस्या लोकोत्तरया प्रशंसया प्रमुदितमानसस्तं नृपप्रसादीकृतं वसनयुगं तस्यै वितीर्णवान्।

× × ×

अथ श्रीपरमर्द्दिमेदिनीपतेः पट्टमहादेवी श्रीजगद्देवस्य प्रति-पन्नजामिः। कदाचिद्राज्ञा सीमालभूपालपराजयाय प्रहितः श्रीजगद्देवो देवार्चनं कुर्वन् छलघातिना परबलेन निजं सैन्यमुपद्रुतं शृण्वन् तमेव देवतावसरं न मुमोच। तस्मिन्नवसरे प्रणिधि-पुरुषमुखाज्जगद्देवपराजयमश्रुतपूर्वमवधार्य महिषीं श्रीपरमर्द्दी प्राह—'भवद्भ्राता संग्रामवीरताऽहंयुतां बिभ्राणोऽपि रिपुभिराक्रान्तः पलायितुमपि न प्रभूष्णुरजनि'। इति नृपतेर्मर्माविधं नर्मोक्तिमाकर्ण्य प्रत्यूषसन्ध्याकाले सा राज्ञी प्रतीचीं दिशामवलोकितवती, राज्ञा 'किमवलोकसे ?' इत्यादिष्टे 'सूर्योदयम्' इति; 'मुग्धे ! किं सूर्योदयोऽपरस्यां दिशि कदाचिज्जाघटीति ?' सा तु 'विरञ्चिप्रपञ्चप्रतीपः प्रतीच्यामपि प्रद्योतनोदयो दुर्घटोऽपि घटते परं क्षत्रियदेवजगद्देवस्य भङ्गस्तु न' इति दम्पत्योः प्रियालापे, देवार्चनानन्तरं जगद्देवः पञ्चशत्या सुभटैः समं समुत्थितचण्डांशुरिव तमस्काण्डम्, केसरि-किशोर इव गजयूथम्, वात्यावर्त इव घनाघनमण्डलं निखिलमपि

प्रत्यर्थिपार्थिवकुबलं हेलयैव तद्दलयामास ।[1]

इस जगदेकवीर जगद्देव के दान की प्रशंसा के कई श्लोक भी श्रीमेरुतुङ्गाचार्य ने दिये हैं। इस वीर जगद्देव का आख्यान हिन्दी में नहीं मिलता। इसलिए यह अनुमान करना गलत न होगा कि जायसी ने प्रबंध-चिन्तामणि पढ़ा होगा।

जायसी की संस्कृत की अभिज्ञता के और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। उन्होंने सृष्टि कर्त्ता की स्तुति करते हुए कहा है—

अति अपार करता कर करना, बरनि न कोई पावै बरना।
सात सरग जौ कागद करई, धरती समुद दुहूं मसि भरई।
जावत जग साखा बनढाखा, जावत केस रोंव पँखि-पाखा,
जावत खेह रेह दुनियाई, मेघबूँद ओ गगन तराई।
सब लिखनी कै लिखु संसारा, लिखि न जाइ गति-समुद अपारा।

इसे पढ़ते समय पुष्पदन्ताचार्य के शिवमहिम्नस्तोत्र का यह श्लोक सहसा स्मरण हो आता है—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखालेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।

जायसी ने इस श्लोक से वर्णन करने वाली शारदा का नाम साभिप्राय ही हटा दिया और अपनी ओर से कुछ नई वस्तुओं की योजना

---

१. श्री मेरुतुंगाचार्य—प्रबन्धचिन्तामणि (शान्तिनिकेतन) पृष्ठ ११४–१६.

करके अपनी रची स्तुति में स्वतन्त्र विचार करने की निजी क्षमता भी प्रदर्शित की।

ऐसे ही जब पदमावती रतनसेन से कहती है कि 'बन-बन बिरिछ न चंदन होई, तन तन बिरह न उपनै सोई' तब संस्कृत की नीतिपरक यह प्रसिद्ध सूक्ति भी उनके ध्यान में रही हो तो आश्चर्य न करना चाहिये—

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने।

जायसी जागरूक भी थे। समकालीन घटनाओं और साहित्य की भी उन्हें पूरी जानकारी थी।

तू राजा जस विक्रम आदी।

की टिप्पणी में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं—

'विक्रम आदी—यह ज्ञातव्य है कि जायसी के समय में विक्रमादित्य के लिये विक्रमादी रूप भी चालू था। राणा संग्रामसिंह के कनिष्ठ पुत्र राणा विक्रमादित्य (१५३२-३६) के सिक्कों पर उन्हें विक्रमादी कहा गया है (जर्नल आव दि न्यूस्मैटिक सोसाइटी, भाग १६, अंक २, पृ० २८४, फलक ५)।'

राणा संग्रामसिंह के द्वितीय पुत्र और उत्तराधिकारी राणा रत्नसिंह और बूँदी के हाड़ा सूरजमल के द्वंद्व की छाया जायसी के रत्नसेन-देवपाल-द्वन्द्व में हम ऊपर देख चुके हैं। राणा संग्रामसिंह का तीसरा पुत्र विक्रमादित्य उसी रत्नसेन की मृत्यु के बाद मेवाड़ का राणा बना था। मेवाड़ राज्य की तत्कालीन घटनाओं से जायसी परिचित थे। वे विक्रमादित्य का विक्रमादी नाम अवश्य जानते

होंगे। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि पदमावत १५३२ ई० के बाद (१५४० ई० में) रची गई; १५३२ से पहले (१५२० में) नहीं।

तुलसी को जायसी की देन

पदमावत के पहले दोहा चौपाई में आख्यान काव्य प्राकृत और अपभ्रंश में लिखे जाते थे। यह उन्हीं की परम्परा में अवध की जनभाषा में रचा गया। इससे हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों की गणना में सर्वप्रथम न होते हुए भी श्रेष्ठों में सर्वप्रथम अवश्य है। इसके ३४ वर्ष पीछे संवत् १६३१ वै० में तुलसी ने अपना रामचरितमानस इसी की शैली में रचा। उसमें यद्यपि दोहा-चौपाई के अतिरिक्त बहुत से अन्य छन्दों का भी प्रयोग हुआ फिर भी इन दो छन्दों की प्रधानता और प्रचुरता है। अतः दोहा-चौपाई में 'मानस' से पूर्व इतना विशाल और प्रौढ काव्य रचने का श्रेय जायसी को मिलता है। आश्चर्य नहीं कि उन्हें जैसे विविध छन्दों में अपने विभिन्न काव्यों की रचना करने की प्रेरणा अपने पूर्ववर्ती अन्य कवियों से मिली हो वैसे ही पदमावत से मानस की शैली का सुझाव मिला हो। 'साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान' के द्वारा गोस्वामी जी 'किहनी उपाख्यान' रचयिता सूफी कवियों की ओर संकेत तो करते ही हैं, आश्चर्य नहीं कि इससे उनका अभिप्राय जायसी से ही हो, जैसे 'साखी सबदी दोहरा' के द्वारा स्पष्ट ही कबीर का निर्देश है। और यह अनुमान भी सम्भव है सच निकले कि तुलसीदास ने पदमावत का अध्ययन किया था।

हमारे इस अनुमान के लिए कुछ आधार भी मिलता जान पड़ता है। मानस में कुछ ऐसी घटनाएँ और बातें वर्णित हैं जिनका मूल सूत्र पदमावत में हो सकता है। हीरामन से रत्नसेन के सिंहल आने की बात सुन कर पदमावती ने कहा कि 'आव वसंत कुसल जौं पावौं, पूजा मिस मंडप कहँ आवौं।' वसन्त पञ्चमी आने पर वह किस प्रकार वहाँ गई और उसने कैसे महादेव की पूजा करके, प्रार्थना की और क्या वरदान माँगा, वहाँ आकाशवाणी में क्या सुना तथा अन्त में राजा से कैसे मिली—ये सब बातें जायसी ने बड़े ब्योरे के साथ लिखी है। उस प्रसङ्ग को थोड़े में यहाँ सङ्कलित करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है—

दैउ दैउ कै सिसिर गँवाई, सिरी पंचमी पहुँची आई।
पदमावति सब सखी हँकारी, जावत सिंघलदीप कै बारी।
सबै सुरूप पदमिनी जाती, पान फूल सेंदुर सब राती।
करहिं किलोल सुरंग-रँगीली, औ चोवा चंदन सब गीली।
चलीं पउनि सब गोहने फूल डार लेइ हाथ।
बिस्वनाथ कै पूजा पदमावति के साथ।
बाजहिं ढोल दुंदुभी भेरी, मादर तूर झाँझ चहुँ फेरी।
पदमावति गै देव दुवारा, भीतर मँडप कीन्ह पैसारा।
फर फूलन्ह सब मँडप भरावा, चंदन अगर देव नहवावा।
लेइ सेंदुर आगै भै खरी, परसि देव पुनि पायन्ह परी।
और सहेली सबै बियाहीं, मो कहँ देव कतहुँ बर नाहीं।
हौं निरगुनि जेइ कीन्ह न सेवा, गुनि निरगुनि दाता तुम देवा।
बर सँजोग मोंहि मेरवहु, कलस जाति हौं मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै, बेगि चढ़ावहुँ आनि।

हौंछि हौंछि बिनवा जस जानी, पुनि कर जोरि ठाढ़ि भइ रानी।
उतरु को देइ देव मरि गएऊ, सबद अकूट मँडप महँ भएऊ।

कुछ देर में

× × ×

ततखन एक सखी बिहँसानी, कौतुक आइ न देखहु रानी।
पुरुब द्वार मढ़ जोगी छाए, न जनौं कौन देस तें आए।
उन्ह महँ एक गुरू जो कहावा, जनु गुर दै काहू बौरावा।
कुँवर बतीसौ लच्छन राता, दसएँ लछन कहै एक बाता।

और तब

सुनि सो बात रानी रथ चढ़ी, कहँ अस जोगी देखौं मढ़ी।
लेइ सँग सखी कीन्ह तहँ फेरा, ...।

इसके अनन्तर उसे देखते ही राजा अचेत हो गया—

परा माति गोरख कर चेला, ...।

तब पदमावती ने उसे चेत में लाने के उपाय किये। जब उनमें सफल न हो सकी तब जोगी रतनसेन की छाती पर अपना सन्देश लिख कर चली गई—

मेलेसि चंदन मकु खिन जागा, अधिकौ सूत सीर तन लागा।
तब चंदन आखर हिय लिखे, भीख लेइ तुइ जोग न सिखे।

अब आप देखिये 'मानस' में जनक की फुलवारी का दृश्य। यहाँ राजा योगमार्ग द्वारा सिद्धिरूपिणी पदमावती के लिए शिव-मन्दिर में डेरा डाले था, तो वहाँ गुरु की पूजा के लिए राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ मालियों से पूछ कर वाटिका में फूल चुन रहे थे—

तेहि अवसर सीता तहँ आई, गिरिजा पूजन जननि पठाई।
संग सखी सब सुभग सयानी, गावहिं गीत मनोहर बानी।

पदमावती के साथ रूपवती सहेलियाँ थीं और बाजे बज रहे थे तो जानकी के साथ सुभग सखियाँ गीत गाती जा रही थीं। वहाँ पदमावती स्वतः महादेव पूजने चली थी, तो यहाँ सीता महादेव की अर्द्धांगिनी गिरिजा को पूजने अपनी माँ के द्वारा प्रेषित हो कर आई थीं। पदमावती ने महादेव को पूज कर अपने लिए खुल कर वरदान माँगते हुए कहा था कि मेरा वर-संयोग मिला दोगे तो तुम्हें कलश चढ़ाऊँगी। परन्तु जानकी मर्यादा की देवी ठहरीं। उन्होंने 'पति देवता सुतीय महुँ...प्रथम' गिरिजा की स्तुति कर के जी खोल कर कुछ नहीं कहा। इतना ही कहा कि "मोर मनोरथु जानहु नीकें।" उन्हें भी पति की चाह थी। स्वयंवर के पूर्व वह आगन्तुक राजाओं में अपने मन का पति ही तो चाह सकती थीं। पर उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपना अभिलाष प्रकट नहीं किया। सगुणोपासक तुलसी की गिरिजा-मूर्ति ने विनय और प्रेम के वश में हो कर सीता को आशीर्वाद दिया कि—

सुनु सिय सत्य असीस हमारी, पूजहि मन कामना तुम्हारी।
नारद वचन सदा सुचि साचा, सो बरु मिलहि जाहिं मनु राचा।

इसके पहले ही

एक सखी सिय संगु बिहाई, गई रही देखन फुलवाई।
तेहिं दोउ बन्धु बिलोके जाई, प्रेम बिवस सीता पहिं आई।

उसने आ कर सीता से राम के सौन्दर्य का वर्णन किया। सीता उन्हें देखने के लिए उत्सुक हुई। अन्य सखियों ने भी कहा कि

'अवसि देखिअहिं देखन जोगू ।' तब वे राम को देखने के लिए— 'चली अग्र करि प्रिय सखि सोई ।' सम्भव है यह योजना जायसी के उपर्युक्त सखी के द्वारा पदमावती के योगी के पास पहुँचने के सुझाव से ही तुलसी ने अपनाई हो।

और महादेव के मण्डप का अकूट शब्द ही तो कहीं उस 'मन्दिर माँझ भई नभवाणी' का प्रेरक नहीं है जो रामचरितमानस में कागभुशुण्डि को अपने पूर्व जन्म में उज्जैन के (महाकाल) शिव के मन्दिर में गुरु का अपमान करने पर सुनाई पड़ी थी ?

पदमावत का एक और प्रसङ्ग देखिये। चित्तौड़ पर घेरा डाले अलाउद्दीन पड़ा था। उधर रतनसेन एक दिन नाचरंग में मग्न था—

तबहूँ राजा हिये न हारा, राज-पौरि पर रचा अखारा।
सोह साह कै बैठक जहाँ, समुहें नाच करावै तहाँ।

पातुरें नाच रही थीं, बाजे बजते थे, गुणीजन राग अलापते थे।

जहँवाँ सौंह साह कै दीठी, पातुरि फिरत दीन्हि तहँ पीठा।
देखत साह सिंघासन गूँजा, कब लगि मिरिग चाँद तोहि भूजा।

इस पर गढ़ के ऊपर बाण चलने लगे। कन्नौज के राजा जहाँ-गीर का वाण उस वेश्या की जाँघ में लगा। वह गिर पड़ी। और

उड़सा नाच नचनिया मारा, रहसे तुरुक बजाइ कै तारा।

इसी से मिलता जुलता दृश्य रामचरितमानस में अङ्कित है। रामचन्द्र समुद्र पर पुल बना कर ससैन्य सुबेल पर्वत के ऊपर शिविर बना कर आसीन थे। वे विभीषण से बोले—देखो दक्षिण दिशा में बादल घुमड़ते हैं, बिजली चमकती है, कहीं ओले तो न गिरेंगे।

कहत विभीषन सुनहु कृपाला, होइ न तड़ित न बारिदमाला।
लङ्का सिखर उपर आगारा, तहँ दसकंधर देख अखारा।
छत्र मेघडंबर सिर धारी, सोइ जनु जलद घटा अति कारी।
मन्दोदरी श्रवन ताटङ्का, सोइ प्रभु जनु दामिनी दमङ्का।
बाजहिं ताल मृदङ्ग अनूपा, सोइ रव मधुर सुनहु सुर भूपा।

यह सुन रामचन्द्र ने रावण का गर्व चूर्ण करने के लिए 'चाप चढ़ाइ बान संधाना' और

छत्र मुकुट ताटंक तव हते एकहीं बान।
सबकें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥

तब रावण की सभा में रसभङ्ग उपस्थित हुआ।

अब आप स्वयं देखिये कि क्या इन दोनों अखाड़ों में विचित्र सादृश्य नहीं है? क्या जायसी ने तुलसी को इस प्रसङ्ग की उद्भावना करने की सूझ नहीं दी? हमारे देखने में तो संस्कृत रामायणों में ये प्रसंग इस रूप में नहीं आये और हम इन्हें तुलसी की मौलिक सूझ ही मानते थे। परन्तु क्या यह संभव नहीं कि जायसी की उपर्युक्त प्रसङ्गों की उद्भावना उस कवि के लिए पथ-प्रदर्शक रही हो जिसकी अमर रचना रामचरितमानस के सामने जायसी की पदमावत को लोग भूल ही गये।

पदमावती के विवाह के समय जिस रंग महल की रचना हुई थी उसमें खंभों में गढ़ कर बनाई पुतलियों का वर्णन जायसी ने विस्तार से किया है—

पुतरी गढ़ि गढ़ि खंभन काढ़ी, जनु सजीव सेवा सब ठाढ़ी।
काहू हाथ चंदन कै खोरी, कोइ सेंदुर कोइ गहे सिंघोरी।

काहू कुहुंकुहुं केसर लिहे रहै, लावै अङ्ग रहसि जनु चहै।
कोई लिहे कुमकुमा चोवा, धनि कब चहै ठाढ़ि मुख जोवा।
कोई बीरा कोइ लीन्हे बीरी, कोइ परिमल अति सुगँध समीरी।
काहू हाथ कस्तूरी मेदू, कोइ किछु लिहे लागु तस भेदू।

अब तुलसी के मानस में गुणियों के द्वारा निर्मित वितान में मणियों के फूल पत्तों बेलों आदि के अतिरिक्त खम्भों में बनी देवताओं की प्रतिमाएँ देखिये जो हाथ में मंगल द्रव्य लिये हुए खड़ी की गई थीं।

सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं, मङ्गल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ीं।

जायसी ने विलास-भवन की उपयुक्त वस्तुएँ पुतलियों के हाथ में रखवाई थीं। यहाँ तुलसी ने विवाह के समय अपेक्षित मांगलिक द्रव्य हाथ में लिये देव-विग्रहों की पच्चीकारी तैयार करवाई।

जायसी ने रतनसेन के योगी हो कर सिंहल के लिए प्रयाण करने पर इन शकुनों का उल्लेख किया है—

आगे सगुन सगुनियै ताका, दहिने माछ रूप के टाँका।
भरे कलस तरुनी जल आई, दहिउ लेहु ग्वालिनि गोहराई।
मालिनि आव मौर लिए गाँथे, खंजन बैठ नाग के माथे।
दहिने मिरिग आइ बन धाएँ, प्रतीहार बोला खर बाएँ।
बिरिख सँवरिया दहिने बोला, बाएँ दिसा चाषु चरि डोला।
बाएँ अकासी धौरी आई, लोवा दरस आइ दिखराई।
बाएँ कुररी दहिने कूचा, पहुँचै भुगुति जैस मन रूचा।

अब देखिये राजा दशरथ जिस समय बरात ले कर जनकपुर चले उस समय इनमें कितने शकुन ज्यों के त्यों हुए

बनइ न बरनत बनी बराता, होहिं सगुन सुंदर सुभदाता।

चारा चाषु बाम दिसि लेई, मनहुँ सकल मंगल कहि देई।
दाहिन काग सुखेत सुहावा, नकुल दरसु सब काहूँ पावा।
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी, सघट सबाल आव बर नारी।
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा, सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा
मृगमाला फिरि दाहिनि आई, मंगल गन जनु दीन्हि देखाई।
छेमकरी कह छेम बिसेखी, स्यामा बाम सुतरु पर देखी।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना, कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना।

यदि इन उद्धरणों से जायसी को तुलसी के प्रेरक मानने में किसी को हिचकिचाहट हो तो उसे यह मानने में तो संकोच न करना चाहिये कि जिन प्रसङ्गों की सृष्टि तुलसी ने रामचरितमानस में की थी उनसे अत्यन्त मिलते-जुलते प्रकरण उनके पहले जायसी पदमावत में लिख गये थे।

पदमावत में कुछ खटकनेवाली बातें

तुलसी के रामचरितमानस में कथा-प्रबन्ध की बड़ी भारी विशेषता यह है कि उसमें कोई प्रसङ्ग अवसर उपस्थित होने पर दोहराया नहीं गया। केवल संकेत के द्वारा सूचित करके कथानक का प्रवाह आगे बढ़ाया गया है। हनुमान के द्वारा परिचय पूछे जाने पर रामचन्द्र ने अपनी सारी कथा तीन अर्द्धालियों में कह सुनाई—हम कोशलेश दशरथ के पुत्र हैं, पिता के वचन मान कर वन आये हैं। राम लक्ष्मण हमारा नाम है। हमारे साथ सुकुमारी नारी था। उसे यहाँ राक्षस हर ले गये। हम उसे ही खोजते फिरते हैं। और जब सीताजी से अशोक वाटिका में हनुमान ने अपने को राम का दूत कह

कर शपथ खाई और कहा कि यह मुद्रिका मैं लाया हूँ, रामचन्द्र ने तुम्हें सहिदानी (मेरी पहिचान के लिए चिह्न रूप में) दी है तब सीता ने पूछा 'नर बानरहिं संग कहु कैसे'- और जिसके उत्तर में वाल्मीकि ने कई सर्ग रच कर पूरी घटनाएँ फिर से कह सुनाई थीं वहाँ तुलसीदास ने पुनरुक्ति से बचने के लिए केवल इतना कहा कि हनुमान ने 'कही कथा भइ संगति जैसे'।

परन्तु तुलसी के पूर्ववर्ती अवधी के इस श्रेष्ठ कवि ने तो अनेक उक्तियाँ और वर्णन ही नहीं, पूरे विवरण तक दोहराने में आनाकानी न की। पदमावती के शिख से नख पर्यन्त सौन्दर्य का निरूपण पदमावत में दो बार हुआ है। प्रयुक्त उपमानों और कल्पनाओं में उन दोनों में कहीं थोड़ा बहुत भेद भले ही हो परन्तु वैसे पूरा सादृश्य है; बात भी वही और उसके कहने का ढंग भी वही, तथा शब्द भी प्रायः वही। उसके जिन-जिन अवयवों का वर्णन हीरामन ने रतनसेन को जिस ढंग से सुनाया था राघवचेतन ने अलाउद्दीन को उसी क्रम से उनका परिचय दिया। दोनों वर्णनों में प्रयुक्त उत्प्रेक्षाएँ और अन्य अलंकारोक्तियाँ प्रायः एक सी हैं। उदाहरण के लिए दो चार स्थलों के कुछ अंश देखिये। हीरामन ने पदमावती की वेणी के विषय में कहा—

बेनी छोरि झार जौं बारा, सरग पतार होइ अँधियारा।
कोंवल कुटिल केस नग कारे, लहरन्हि भरे भुअंग बैसारे।
बेधे जनौं मलयगिरि बासा, सीस चढ़े लोटहिं चहुं पासा।

यही बात, इन्हीं शब्दों में राघवचेतन ने भी कही—

बेनी छोरि झार जौ केसा, रैन होइ जग दीपक लेसा।

सिर हुंत बिसहर परे भुइँ बारा, सगरौं देस भएउ अँधियारा।
सकपकाहिं बिष-भरे पसारे, लहरि-भरे लहकहिं अति कारे।
जानहुं लोटहिं चढ़े भुअंगा, बेधे बास मलयगिरि-अंगा।

नीचे उन दोनों के किये पदमावती के कुछ अन्य अङ्गों के वर्णन उद्धृत किये जाते हैं, जिनका साम्य स्वतः स्पष्ट है—

हीरामन—भौंहैं स्याम धनुक जनु ताना, जा सहुँ हेर मार विष बाना।

राघवचेतन—भौंहैं स्याम धनुक जनु चढ़ा,······

जा सहुँ हेर जाइ सो मारा।

हीरामन—अधर सुरंग अमी रस भरे, बिंब सुरंग लाजि बन फरे।

राघव—अधर सुरंग पान अस खीने, राते रंग अमिय रस भीने।

हीरामन—कुंदै फेरि जानु गिउ काढ़ी, हरी पुछार ठगी जनु ठाढ़ी।

राघव—गीउ मयूर केरि जस ठाढ़ी, कुंदै फेरि कुंदेरै काढ़ी।

इसी प्रकार कुछ अन्य स्थलों में एक ही बात अनेक बार कही गई है। वियोग के कारण हृदय के विदीर्ण होने का बड़ा ही मार्मिक और प्रभावशाली रूप जायसी ने इस रूपक के द्वारा प्रस्तुत किया है। नागमती कहती है—

सरवर हिया घटत निति जाई, टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका, दीठि दवँगरा मेरवहु एका।

रतनसेन के बन्दी हो जाने पर पदमावती ने विलाप करते समय भी इसी रूपक का प्रयोग यों किया—

नीर गँभीर कहाँ हो पिया, तुम्ह बिनु फाटै सरवर हिया।

पदमावत में कुछ ऐसे विस्तृत वर्णन आते हैं जो कथा-प्रसङ्ग में केवल अनावश्यक विस्तार और भरती के कहे जा सकते हैं। जैसे,

रतनसेन के सिंहल से विदा होते समय यात्रा-विचार के विस्तृत वर्णन में फलित ज्योतिष के अनुसार दिक-शूल और उसके निवारण के सम्बन्ध की बातों के अतिरिक्त, तिथि, लग्न, राशि, नक्षत्र आदि के लम्बे चौड़े ब्योरे का समावेश कवि ने केवल अपनी विज्ञता जताने के लिए किया है। इसी प्रकार हस्तिनी, शंखिनी, चित्रिणी और पद्मिनी नारियों के विवरण से इतना ही तो जाना जाता है कि जायसी उनके भेदोपभेद से परिचित थे। अलाउद्दीन के भोज के लिए रतनसेन ने जो नाना प्रकार के भोजन बनवाये थे पदमावत में उनका बहुत ही विस्तृत वर्णन है। जायसी कोरे फकीर न थे, पाक-शास्त्र के ज्ञाता थे; सम्भवतः विविध व्यंजनों के प्रस्तुत कर सकने में भी प्रवीण थे; यही तो उनके इस ब्योरे से सूचित होता है। ऐसे ही घोड़ों तलवारों आदि की लम्बी सूची प्रस्तुत करके जायसी ने अपनी जानकारी ही प्रकट की है। परन्तु यह सब अरोचक वर्णन हैं। पदमावत प्रेम काव्य है, विविध प्रकार की जानकारी की पोथी नहीं।

पदमावत में निरर्थक और प्रसङ्ग से बाहर के वाद-विवाद भी बहुधा रस-भंग में सहायक हुए हैं। पदमावती और नागमती एक दूसरे के प्रति क्रुद्ध थीं सौतिया डाह के कारण। जब उनमें लड़ाई-झगड़ा हुआ तब पदमावती फुलवारी के विविध पेड़-पौधों और फूलों के नाम ले कर श्लेष के द्वारा उसकी निन्दा करने लगी। मुद्रा अलंकार के इन बहुत ही विस्तृत प्रयोगों को पढ़ते समय जी ऊब जाता है। इसी प्रकार राजा रतनसेन जब सिंहल में विवाह के अवसर पर भोजन करने बैठा तब सब कुछ परोसा जाने पर चुप बैठा रहा। उसे भोजन करने से विरत देख जब ऐसा करने का कारण पूछा गया

तब पता चला कि बीन नहीं बजी, इसीसे राजा भोजन नहीं करता। पंडितों ने उससे भोजन करने का अनुरोध किया। बस फिर क्या था—नाद और वेद की सापेक्ष श्रेष्ठता के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ छिड़ गया। पंडित वेद के समर्थक थे और राजा नाद का। बड़ी देर तक यह चों-चों होती रही। तब तक ज्योनार रुकी रही। ज्योनार भले ही रुकी रहे, लोग सामने परोसा भोजन भले ही न कर पायें, परन्तु वेदमार्ग से योग मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का अवसर हाथ लग जाने पर कैसे छोड़ा जाय!

यह तो हुई पदमावत में वर्णित काव्य के रसास्वादन में बाधा पहुँचाने वाले कुछ प्रसंगों की बात। अब दो एक ऐसी त्रुटियों को देखते चलिये जो कवि की असावधानता सूचित करती हैं। जिस समय रतनसेन योगी हो कर सिंहल के लिए निकला था उस समय उसके साथ सोलह सहस्र राजकुमार भी योगी हो कर चल पड़े—'राय रान सब भए बियोगी, सोरह सहस कुँवर भए जोगी', और 'सोरह सहस कुँवर भए चेला' परन्तु जब राजा सिंहलद्वीप पहुँच कर महादेव के मंदिर में डेरा लगाता है तब ये 'सोरह सहस कुँवर' 'तीस सहस' हो जाते हैं—'राजा बाउर बिरह-बियोगी, चेला सहस तीस संग जोगी। पदमावति के दरसन आसा, दँडवत कीन्ह मँडप चहुँ पासा।'

राजा गजपति ने रतनसेन से कहा था कि बीच में 'सात समुद्र असूझ अपारा' होने से सिंहल द्वीप वही पहुँच सकता है जो अपने प्राण हथेली में लिये हो। उसने फिर उन सात समुद्रों के नाम गिनाये जिन्हें पार कर के वहाँ पहुँचना बड़े बूते का काम है। उसने कहा—

खार, खीर, दधि, जल उदधि, सुर, किलकिला अकूत

को चढ़ि नांघै समुद ए, है काकर अस बूत ?

इसमें सातवें समुद्र मानसर का नाम देना कवि भूल गया है, परन्तु उसने आगे उसका वर्णन किया है।

जायसी से एक भूल ऐसी हुई जान पड़ती है जो उनके जैसे जानकार से न होनी चाहिये थी। हीरामन ने रतनसेन से पदमावती के नखशिख का वर्णन कर के अन्त में उसके चरणों के विषय में कहा कि

अनवट बिछिया नखत तराईं, पहुंचि सकै को पायंन ताईं।

अँगूठे में पहने जाने वाला छल्ला अनवट (औंठा) और अँगुलियों के छल्ले बिछिया विवाह के बाद ही नारी पहनती है। ये आभूषण सधवा के हैं। कुमारी पदमावती के अँगूठे और अँगुलियों में नक्षत्र और तारे बन कर कैसे चमके होंगे?

प्रकृति निरीक्षण की छोटी सी भूल देखिये! 'राजा रतनसेन सती खंड' में कहा है—'कहाँ सो देस दरस जेहि लाहा, जौ सुबसंत करीलहि काहा।' ऐसा मालूम होता है कि जायसी ने करील का जंगल कभी देखा न होगा। यदि देखा होता तो यह अर्धाली न लिखते और 'औ मजीठ टेसू बन राता' के स्थान पर शायद 'औ करील टेसू बन राता' लिखते। टेसू के वन को देख कर मुग्ध होने वाला कवि वसंत में बाटे* से लाल हुई करील की झाड़ियों को देख कर मुग्ध हुए बिना न रहता।

---

* जैसे पलाश के फूल को 'टेसू' कहते हैं ऐसे ही करील के फूल को 'बाटा' कहते हैं।

जायसी के प्रबंध में सबसे अधिक खटकने वाली बात यह है कि जब अलाउद्दीन की सेना के चित्तौड़ की ओर प्रयाण की सूचना राजा रतनसेन को दूतों से मिली तब

सुनि राजा दौराई पाती, हिन्दू नाँव जहाँ लगि जाती।
चितउर हिन्दुन कर अस्थाना, सत्रु तुरुक हठि कीन्ह पयाना।
आव समुद्र रहै नहिं बाँधा, मैं होइ मेड़ भार सिर काँधा।
पुरवहु साथ तुम्हारि बड़ाई, नाहिं त सत को पार छँडाई।
जौ लहि मेड़ रहै सुख साखा, टूटे वारि जाइ नहिं राखा।

परन्तु यह 'पाती' रतनसेन के सबसे निकट आत्मीय चक्रवर्ती राजा गंधर्वसेन के पास नहीं भेजी जाती। आठ वर्ष तक घिरा रहने पर भी राजा रतनसेन और सब हिन्दू राजाओं से सहायता माँगता है पर गंधर्वसेन से सहायता नहीं माँगता। चित्तौड़ के व्यापारी प्रतिवर्ष सिंहल जाते थे, वे सूचना पहुँचा सकते थे, या हीरामन ही चित्तौड़ के घेरे की खबर पहुँचा सकता था। परन्तु जोगी रतनसेन की शनाख्त के बाद हीरामन की जायसी को आवश्यकता न रही थी, वह काव्य से लुप्त हो जाता है।

ऐसी ही चूक हम मानस में भी पाते हैं। रामचन्द्र के अभिषेक का निश्चय होने पर भरत को इसकी सूचना नहीं दी जाती। वाल्मीकि के कथानक में उसका कारण बताया गया है। दशरथ ने स्पष्ट कहा कि जब तक भरत ननिहाल में है तभी तक राम का अभिषेक हो जाना चाहिए। सब राजाओं को राम के अभिषेक का निमंत्रण भेजा जाता है, परन्तु दशरथ सावधान कर देता है कि राजा जनक और केकयराज इस प्रिय वृत्तान्त को बाद में सुनें। तुलसी इस प्रकार का

कारण नहीं बता सके। तुलसी ने भरत के जिस अलौकिक चरित्र की सृष्टि की थी, वाल्मीकि का दिया कारण मानस में भी देने पर भरत के उस अनुपम चरित्र में कलंक लग जाता; इसलिए तुलसी ने इस प्रसंग में मौन साध लिया।

इसी प्रकार का एक और भी प्रबंध दोष है। जब भाट (महादेव) ने जोगी रतनसेन को चित्तौड़ का राजा बताया और कहा

हीरामन जो तुम्हार परेवा, गा चितउर औ कीन्हेसि सेवा।
तेहि बोलाइ पूछहु वह देसू, दहुँ जोगी की तहाँ नरेसू।
हमरे कहत न जौं तुम्ह मानहु, जो वह कहै सोइ परवाँनहु।

× × ×

राजे जब हीरामन सुना, गएउ रोस हिरदय महँ गुना।
अज्ञा भई बालावहु सोई, पंडित हुँतै धोख नहि होई।
एकहि कहत सहस्रक धाए, हीरामनहिं बेगि लेइ आए।
खोला आगे आनि मंजूसा, मिला निकसि बहु दिन कर रूसा।
अस्तुति करत मिला बहु भाँती, राजै सुना हिये भइ साँती।

परन्तु हीरामन तो रतनसेन और पदमावती के पत्र एक दूसरे के पास पहुँचा रहा था, वह मंजूषा (पिंजरे) में बन्द न था। असावधानतावश जायसी 'खोला आगे आनि मँजूसा' लिख गये। और इसके आधार पर डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'रतनसेन सूली खंड' के कुछ छन्दों को प्रक्षिप्त माना है। जिन छंदों के प्रक्षिप्त होने के अन्य प्रमाण भी हों उन्हें भले ही प्रक्षिप्त माना जाय। परन्तु यदि केवल इस तर्क पर कि हीरामन को मंजूषा में से गंधर्वसेन के सामने निकाला गया इसलिए इससे पहले जिन छंदों में उसके मंजूषा से

बाहर होने का उल्लेख है उन्हें प्रक्षिप्त माना जायगा तो 'गंधर्वसेन मंत्री खंड' के अधिकांश भाग को प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा। यह जायसी की चूक मात्र है और कुछ नहीं।

परन्तु इन दोषों के कारण पदमावत के सरस कथा-प्रवाह में विशेष बाधा नहीं पड़ती।

पदमावत से उपलब्ध कुछ विशेष जानकारी

पदमावत में राजा रतनसेन और बादशाह अलाउद्दीन में मेल हो जाने पर बादशाह ने कहला भेजा कि कल मैं चित्तौड़ गढ़ देखने आऊँगा। इस पर राजा ने बादशाह के स्वागत की तैयारी की, उसके भोजन का प्रचुर आयोजन किया।

भा आयसु अस राज कर बेगहि करहु रसोइ।
ऐस सुरस रस मेरवहु जेंहि सौं प्रीति रस होइ॥

आज सामान्यतः हिन्दू मुसलमान के साथ खाना नहीं खाता; जो खाता भी है वह व्यक्ति के रूप में, सामाजिक चलन के रूप में नहीं। परन्तु जायसी के वर्णन में हम ऐसी बात नहीं पाते। उलटे राजा रसोई में प्रीति रस मिलाने का आदेश देता है। दूसरे दिन बादशाह गढ़ में आता है। उसके साथ सरजा और राघवचेतन भी हैं। राजा बादशाह का गढ़ के फाटक पर स्वागत कर उसे अपने साथ राजमहल में लाता है। गोरा-बादल रूठ कर अपने घर चले जाते हैं, परन्तु अन्य सब सरदार राजा के साथ हैं। फिर शाह खाने बैठता है। राजा की चौरासी दासियाँ खाना परोसती हैं।

सेव करैं दासी चहुँ पासा, अछरी मनहुँ इंद्र कविलासा।

कोउ परात कोउ लोटा लाई, साह सभा सब हाँथ धोवाई।

शाह के और सारी सभा के हाथ धुलाये जाते हैं। फिर

भइ जेवनार फिरा खँडवानी, फिरा अरगजा कुहकुह-पानी।
नग अमोल जो थारहि भरे, राजै सेव आनि कै धरे।

और पहले अधीनता मानने की जो प्रार्थना उसने दूतों द्वारा की थी अब वह स्वयं उपस्थित की—

बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा, ए जगसूर सीउ मोहिं लागा।
ऐगुन-भरा काँप यह जीऊ, जहाँ भानु तहँ रहै न सीऊ।
चरिउ खंड भानु अस तपा, जेहि के दिस्टि रैनि-मसि छपा।
औ भानुहि अस निरमल कला, दरस जो पावै सो निरमला।
कँवल भानु देखे पै हँसा, औ भा तेहु चाहि परगसा।

रतन साम हौं रैनि-मसि, ए रवि तिमिर सँघार।
करु सो कृपा-दिस्टि अब, दिवस देहि उजियार॥

सुनि बिनती बिहँसा सुलतानू, सहसौ करा दिया जस भानू।
ए राजा तुइ साँच जुड़ावा, भइ सुदिस्टि अब सीउ छुड़ावा।
भानु क सेवा जो कर जीऊ, तेहि मसि कहाँ कहाँ तेहि सीऊ।
खाहु देस आपन करि सेवा, और देउँ माँडौ तोहि देवा।
लीक-पखान पुरुष कर बोला, धुव सुमेरु ऊपर नहि डोला।
फेरि पसाउ दीन्ह नग सूरू, लाभ देखाइ लीन्ह चह मूरू।
हँसि हँसि बोलै टेकै काँधा, प्रीति भुलाइ चहै छल बाँधा।

माया-बोल बहुत कै, साह पान हँसि दीन्ह।
पहिले रतन हाथ कै, चहै पदारथ लीन्ह॥

मया सूर परसन भा राजा, साहि खेल सतरँज कर साजा।
राजा है जौ लगि सिर घामू, हम तुम घरिक करहिं बिसरामू।

शाह राजा को पान देता है, फिर कहता कि जब तक धूप है जरा विश्राम कर लें और दोनों शतरंज खेलने बैठ जाते हैं। राजा लगातार शाह के साथ है, उसने शाह के हाथ से पान तो खाया ही है, खाना भी उसके साथ ही बैठ कर खाया होगा। शाह के साथ केवल सरजा और राघवचेतन आये हैं, राजा के साथ उसके दरबारी भी खाने बैठे होंगे, शिष्टाचार के खयाल से भी और चौरासी दासियाँ परोसने को चुनी गईं तो खाने वाले पन्द्रह बीस तो होंगे ही। यहाँ हम हिन्दू मुसलमान को एक साथ बैठ कर खाना खाते देखते हैं।

जायसी से लगभग एक शताब्दी पहले के इतिहास-लेखक जोनराज एक कदम आगे बढ़े हुए हैं। जायसी काव्यकार थे, जोनराज इतिहास-लेखक।

दूसरी राजतरंगिणी में कश्मीर के सुलतान दिग्विजयी शहाबुद्दीन के प्रशासन का आख्यान जोनराज ने यों शुरू किया है—

मन्दराजकथाख्यानाज्जाड्यं मद्वाचि संस्तुतम्।
तीक्ष्णप्रतापशाहावादीनाख्याद्विनश्यतु ॥
राज्ञि शाहवदीनेऽथ स्मरणं क्षितिरत्यजत्।
ललितादित्यसंपत्तिविपत्ति-सुख-दुःखयोः ॥
श्रीमान् शाहावदीनोथ प्राज्यं साम्राज्यमग्रहीत्।
येन राजन्वती भूर्यामहसत्तद्यशोमिषात् ॥

इन श्लोकों का श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार ने यह अर्थ किया है—

"मन्द राजाओं की कथा कहने से मेरी वाणी में जडता आ गई है, तीक्ष्ण-प्रताप शहाबुद्दीन के आख्यान से वह नष्ट हो जाय। राजा शाहावदीन के समय (इस) भूमि ने ललितादित्य (के समय)

की संपत्ति विपत्ति और सुख दुःख का स्मरण (कर तरसना) छोड़ दिया। श्रीमान् शाहावदीन ने भरपूर साम्राज्य को हाथ में लिया, तब राजन्वती (अच्छे राजा वाली) भूमि अन्तरिक्ष पर हँसने लगी—यह हँसी उस (राजा) का यश था।"[1]

यह तीक्ष्ण-प्रताप शहाबुद्दीन जब युवराज था तब उसका नाम शीराशामक या शिरःशाटक था।

राजपुत्रः स वाक्पुष्टाटवीं लीलारसादटन्।
योगिनीचक्रमद्राक्षीत् कदाचिद्गिरिगह्वरे॥
उदयश्रीस्तथा चन्द्रडामरश्चास्य वल्लभौ।
....

इति तेऽश्वादवारोहन्..................
शनैः शनैस्ततो यान्तो मौनपूर्वं महाशयाः।
योगिनीनिकटं प्रापुः.................॥
योगिनीनायिका दूरात् परिज्ञाय नृपात्मजम्।
साशिषं सीधुचषकं प्राहिणोन्मन्त्रितं ततः॥
चन्द्रस्तदमृतं तृप्तिभाजा राज्ञावशेषितम्।
उदयश्रीमुखापेक्षो न संतृप्तस्त्वशेषयत्॥
भवितव्यबलादश्वपालं सपदि विस्मरन्।
उदयश्रीरशेषं तत्पीत्वा तृप्तिं परामगात्॥
आश्चर्यातृप्तनेत्रेषु तेषु तृप्तेषु योगिनी।
निमित्तज्ञावदद्राजपुत्रं बद्धाञ्जलिं ततः॥
अखण्डं भावि ते राज्यं चन्द्रस्तद्विभवांशभाक्।

---

१. भारतीय राष्ट्र का विकास ह्रास और पुनरुत्थान, पृ० ४४२।

आजीवमुदयश्रीश्च मण्डितोखण्डया श्रिया ।।
अश्वपालस्त्वसावस्मदनुग्रहविवर्जितः ।
अचिरेणैव कालेन नूनं प्राणैर्वियुज्यते ।।
भविष्यत्सूचयित्वैवं योगिनीभिः समन्विता ।
सान्तर्दधे पुरः प्राणाः पश्चात्तुरगपालिनः ।।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने इन श्लोकों की व्याख्या यों की है—

" 'उस राजपुत्र ने कभी लीलारस से वाभ्रपुष्टा वन में घूमते हुए पहाड़ की गुफा में योगिनीचक्र देखा। उदयश्री और चन्द्र डामर उसके प्रिय (साथी)......' भी उसके साथ थे। वे घोड़ों से उतर कर धीरे-धीरे मौन-पूर्वक योगिनियों के पास पहुँचे। 'तब योगिनी नायिका ने दूर से ही राजा के बेटे को पहचान कर असीस सहित मंत्र फूँका हुआ शराब का प्याला भेजा। राजा (=राजपुत्र) ने तृप्त हो कर जो बचाया उसे चन्द्र ने तृप्त हुए बिना उदयश्री को देखते हुए कुछ बचा दिया (अर्थात् कुछ पिया कुछ बचा दिया)। भवितव्य के बल से उदयश्री अश्वपाल को एकदम भूल कर वह सारा पी कर बहुत तृप्त हुआ। वे तृप्त हो गये, पर उनके नेत्रों में आश्चर्य और अतृप्ति थी; निमित्त पहचानने वाली योगिनी ने हाथ जोड़े खड़े राजपुत्र को तब कहा—तेरा राज्य अखंड होगा, चंद्र तेरे वैभव का अंश पायगा, उदयश्री भी जीवन भर अखंड श्री से भूषित होगा, यह अश्वपाल हमारे अनुग्रह से वर्जित है, इसके प्राण जल्दी ही छूटने को हैं। यों भविष्य की सूचना दे कर योगिनियों के साथ वह अन्तर्धान हो गई और उसके पीछे-पीछे अश्वपाल के प्राण पखेरू उड़ गये।'

"वाक्पुष्टा कश्मीर के राजा तुंजीन १म की रानी थी। अपने पति को पीछे जिस वन में वह सती हुई उसका नाम वाक्पुष्टाटवी पड़ा (कल्हण, राजतरङ्गिणी २, ५७)। उस वन की पहचान नहीं हो सकी। शाहमेर वंश के सुलतानों के मंत्री और प्रमुख राज्याधिकारी हिन्दू ही होते रहे। उदयश्री और चन्द्र डामर शीराशामक के प्रिय साथी रहे। और हमने देखा कि मुस्लिम राजा के साथ एक ही प्याले में पीने में वे विशेष जूठ-सुच नहीं मानते रहे।"[1]

हिन्दू मुसलमानों का एक साथ खानपान उस युग में क्या अभिजात वर्ग में ही सीमित था या जन-साधारण में भी प्रचलित था ?

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में 'पदमावत की कथा' देते हुए लिखा है—

'उन्होंने (गोराबादल ने) सोलह सौ ढकी पालकियों के भीतर तो सशस्त्र राजपूत सरदारों को बिठाया और जो सबसे उत्तम और बहुमूल्य पालकी थी, उसके भीतर औजार के साथ एक लोहार को बिठाया।'[2]

परन्तु पदमावत में 'राजपूत' शब्द कहीं नहीं है। शुक्लजी ने प्रचलित धारणावश यह भूल की है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा है—

"प्रचलित धारणा है कि राजपूत जात छठी शताब्दी से थी जब से कि हम चालुक्य गुर्जर आदि नाम सुनने लगते हैं, और कि १२वीं

---

१. भारतीय राष्ट्र का विकास ह्रास और पुनरुत्थान, पृष्ठ ४४१-२

२. पृष्ठ २०।

शताब्दी तक उसके ३६ कुल बन चुके थे जैसा कि पृथ्वीराजरासो में लिखा है। पर रासो १६वीं शताब्दी की रचना है। यदि १२वीं शताब्दी में राजपूतों के ३६ कुल गिने गये होते तो गाहड्वाल, सेन पाल चोळ गंग आदि के नाम उनमें होते। प्रकट है कि रासो जब लिखा गया तब इन राजवंशों की याद भी मिट चुकी थी।......

"राजपूत इतिहास के सबसे बड़े विद्वान् पं० गौ० ही० ओझा ने, 'जिनसे बढ़ कर कि' (जर्मन विद्वान् कीलहार्न के शब्दों में) 'कोई अपने देश के इतिहास को नहीं जानता' था, दिखाया है कि गुर्जर प्रतिहारों की तरह ब्राह्मण प्रतिहार भी थे, कि गुर्जर प्रतिहार का अर्थ गुर्जर देश के प्रतिहार था। प्रतिहार का अर्थ है द्वारपाल। प्रतिहार वंश का स्थापक पहले किसी राजा का प्रतिहार रहा होगा; उसका उपनाम वंश का नाम हो गया। इसी प्रकार राष्ट्रकूट (राठोड) जिसका अर्थ था प्रदेश-शासक। केवल इन उपनामों के प्रयोग से कुछ सिद्ध नहीं होता। असल प्रश्न यह है कि इन उपनामों वाले वंश जात कब से बने। राजपूत शब्द जाति के अर्थ में १६वीं शताब्दी तक हमारे इतिहास या वाङ्मय में कहीं नहीं मिलता। अलबरूनी या कल्हण उसे कहीं नहीं बर्तते। पर चोथी राजतरंगिणी में, जो अकबर के प्रशासन में लिखी गई उसका उस अर्थ में प्रयोग है। 'यह शब्द जाति-सूचक हो कर मुगलों के समय अथवा उसके पूर्व सामान्य रूप से प्रचार में आने लगा[1]।'"[2]

---

१. गौ० ही० ओझा (१६२५)–राजपूताने का इतिहास १, १ पृष्ठ ३६-३७।

२. जयचंद्र विद्यालंकार (१६५५)–भारतीय कृष्टि का क ख, पृष्ठ २२८, २२६–२३०।

पहले दो मुगलों (बाबर और हुमायूँ) के समकालीन कवि जायसी की कृति पदमावत में भी 'राजपूत' शब्द हमें नहीं मिलता। इसके द्वारा ओझा जी की स्थापना की पुष्टि होती है।

रतनसेन के सहायक हिन्दू राजाओं के नाम जायसी ने इस प्रकार गिनाये हैं—

रतनसेन चितउर महँ साजा, आइ बजाइ बैठ सब राजा।
तोंवर बैस पँवार सो आए, औ गहलौत आइ सिर नाए।
पत्ती औ पंचबान बघेले, अगरपार चौहान चँदेले।
गहरवार परिहार जो कुरे, औ कलहंस जो ठाकुर जुरे।
आगे ठाढ़ बजावहिं ढाड़ी, पाछै धुजा मरन कै काढ़ी।

गाहड्वालों (गहरवारों) और कुरुदेश के बैस राजवंश की भी याद जायसी के काल तक बनी हुई थी।

पदमावत का सिंहलद्वीप

सिंहलद्वीप भारत के दक्षिण में है। आजकल इसका नाम श्रीलङ्का है। प्रचलित विश्वास के अनुसार इसे रावण की लङ्का भी माना जाता है यद्यपि वाल्मीकि रामायण के अनुसार सिंहल रावण की लङ्का नहीं है।

रतनसेन ने सिंहल द्वीप जा कर महादेव के मंदिर के पूर्व द्वार पर तप किया था। जब वह अपने तन में आग लगा कर जलने को प्रस्तुत हुआ तब

हनुवंत वीर लंक जेइँ जारी, परबत ओहि रहा रखबारी।

बैठि तहाँ होइ लंका ताका, छठएँ मास देइ उठि हाँका।
तेहि कै आगि उहौ पुनि जरा, लंका छाड़ि पलंका परा।

यहाँ जायसी ने लङ्का और सिंहल को एक कर दिया है ; परन्तु अन्यत्र सर्वत्र ही उन्होंने लंका और सिंहल को भिन्न भिन्न द्वीप माना है। 'सिंहल द्वीप वर्णन खंड' में कहा है—

जम्बू दीप कहौं तस नाहीं, लंक दीप सरि पूज न छाहीं।
लंक दीप कै सिला अनाई, बाँधा सरवर घाट बनाई।

आगे चल कर जब राजा सिंहल को प्रस्थान करता है तब—

एक बार गइ सिंघल दूसरि लङ्क समीप।
हैं आगे पथ दूश्रौ, दहुँ गौनब केहि दीप।

और जब राजा पदमावती को ले कर सिंहल से लौटता है तब—

बोहित चले जो चितउर ताके, भए कुपंथ लंक दिसि हाँके।

इस प्रकार जायसी का सिंहल लंका से भिन्न है, वह आज का श्रीलंका या सिंहल नहीं है। वह कोई कल्पित द्वीप है और पूर्व समुद्र में कहीं है। सिंहल जाने के लिए राजा उड़ीसा में किसी घाट पर जहाज में चढ़ा था और वहाँ से लौटते हुए जगन्नाथ पुरी आ कर उतरा था।

पदमावती की सखी ने उसके स्वप्न का विचार कर के कहा था—

पच्छिउं खँड कर राजा कोई, सो आवा बर तुम्ह कहँ होई।

और रतनसेन के योगी वेश छोड़ने पर

पच्छिउं कर बर पुरुब क बारी, जोरि लिखी न होइ निनारी।

आज का सिंहल चित्तौड़ से ५° देशान्तर पूर्व में होने पर भी

चित्तौड़ के दक्षिण में कहा जायगा, पूर्व नहीं। चित्तौड़ की स्थिति ७४·४२° पू० (देशान्तर) और २४·५४° उ० (अक्षांश) है। ८०° पू० देशान्तर रेखा सिंहल के पच्छिमी भाग में से और १०° उ० अक्षांश रेखा सिंहल की उत्तरी नोक के ठीक ऊपर से गुज़रती है। इस प्रकार सिंहल को चित्तौड़ के दक्षिण में कहा जा सकता है, पूर्व में नहीं। परन्तु जायसी का सिंहल पूर्व में कहीं है, वह कोई कल्पित द्वीप है।

चित्तौड़ से उड़ीसा में समुद्र तट तक जाने का जायसी का रास्ता बिलकुल ठीक है। यह चित्तौड़ से उज्जैन खँडवा जबलपुर बिलासपुर हो कर जाने वाले आजकल के रेल-पथ के दायें बायें हो कर जाता है। जायसी ने रतनपुर हो कर जाने की बात लिखी है। रतनपुर बिलासपुर से १५-२० मील उत्तर पूर्व है।

पाठ-निर्धारण

हिन्दी भाषी प्रदेश में तुलसीदास के रामचरितमानस का घर घर प्रचार है। मानस का प्रचार होने पर पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की परंपरा उठ गई, परवर्ती साहित्य उसके सामने टिक न सका। मानस के सामने टिकी रह सकीं या तो कालिदास की कृतियाँ या श्रीमद्भगवद्गीता। अन्य सभी ग्रन्थ—क्या वेद और क्या उपनिषद, क्या महाभारत, क्या वाल्मीकि रामायण, लुप्तप्राय हो गये। और सबके साथ जायसी की पदमावत भी मानस के सामने टिक न सकी।

१६२०ओं में विश्वविद्यालयों में हिन्दी को स्थान मिला। तब बी० ए०-एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए पाठ्यग्रन्थों की खोज हुई। हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० और एम० ए० दोनों परीक्षाओं के लिए पदमावत पाठ्य पुस्तक नियत की गई। विद्यार्थियों के पाठ्य-ग्रन्थ रूप में १६२४ में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' का पहला संस्करण प्रकाशित किया। यद्यपि इसके पूर्व 'पदमावत' के कुछ संस्करण छप चुके थे किन्तु वे भ्रष्ट अथवा अधूरे थे। यों पदमावत को हिन्दी जगत् के सम्मुख सुसम्पादित रूप में लाने का श्रेय शुक्ल जी को है। शुक्ल जी द्वारा निर्धारित पाठ ही लगभग तीन दशकों तक प्रामाणिक माना जाता रहा। १६५२ में डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रन्थावली का संस्करण प्रकाशित किया। उसमें एक प्रकार से शुक्ल जी के पाठ को चुनौती दी गई। उसके प्रकाशकों ने लिखा—"डा० माताप्रसाद गुप्त वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार पाठ निर्धारण के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं।······उन्होंने अनेकानेक दुर्लभ प्राचीन प्रतियों के आधार पर बड़े ही परिश्रम के साथ जायसी की समस्त रचनाओं का पाठ स्थिर किया है।" १६५५ में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या) प्रकाशित हुई। अग्रवाल जी ने गुप्त जी के पाठ को प्रामाणिक माना। उन्होंने लिखा—"पदमावत के मूल पाठ पर जमी हुई काई को पाठ-संशोधन की वैज्ञानिक युक्ति से हटा कर श्री माताप्रसाद जी गुप्त ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्व-पूर्ण कार्य किया है।······उन्होंने उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों की छानबीन कर के पाठ-शोधन की वैज्ञानिक प्रणाली से पाठ का

निर्णय किया है।..."[1]

इस प्रकार इस समय पदमावत के दो पाठ मिलते हैं; एक शुक्लजी का, दूसरा गुप्तजी का। डा० मुंशीराम शर्मा ने पहले पाठ के अनुसार सन् १९४७ ई० में 'पदमावत का भाष्य" प्रकाशित किया और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने दूसरे पाठ को स्वीकार किया।

हमने इस संग्रह के संपादन में आँख मूँद कर किसी एक पाठ को नहीं लिया। अर्थ की दृष्टि से जो पाठ उत्कृष्ट मालूम हुआ उसी को ग्रहण किया है। हमारी पाठ-निर्धारण की एक मात्र कसौटी अर्थ-सौष्ठव रही है। दोनों पाठों के कुछ स्थलों के मिलान से यह बात स्पष्ट हो जायगी :

१. शुक्लजी—

एक दिवस पून्यो तिथि आई, मानसरोदक चली नहाई।
४।१।१

गुप्तजी—

एक देवस कौनिउँ तिथि आई, मानसरोदक चली अन्हाई।
५६।१

गुप्तजी को दो प्रतियों में 'कौनिउँ' के स्थान पर 'पून्यो' पाठान्तर मिला, फिर भी उन्होंने 'वैज्ञानिक पद्धति' से 'कौनिउँ' पाठ निर्धारित किया।

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल (१९५५)—पदमावत, प्राक्कथन, पृष्ठ ६।

'एक दिवस कौनिउँ तिथि आई' लिखने की कवि को क्या आवश्यकता थी? स्पष्ट है कि पाठ-निर्धारण की जिस वैज्ञानिक पद्धति का गुप्तजी ने प्रयोग किया है या तो उसी में कोई दोष है या उसके प्रयोग करने के तरीके में।

२. शुक्लजी—

अस फँदवार केस वै परा सीस गिउ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग सब अरुझ केस के बाँद॥
१०।१।८-६

गुप्तजी—

अस फँदवारे केस वै राजा परा सीस गियँ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग ओरगाने भै केसन्हि के बाँद॥
६६।८-६

डा० अग्रवाल ने उत्तरार्ध का अर्थ किया है :—

"अष्ट कुल के नागों के अधिपति मानो उन्हीं केशों में बंदी बने हुए थे।"

शुक्लजी के पाठ का अर्थ है 'उसके केशों के फंदे में आठों कुल के (सभी) नाग (अगणित) फँसे हुए थे।' अर्थात् पदमावती के केश बहुत घने थे। गुप्त जी के पाठ से केशों की गिनती हो गई, कुल आठ केश थे, यह कहना कवि को कदापि अभीष्ट न था।

३. शुक्ल जी—

टूटे मन नौ मोती, फूटे मन दस काँच।
लीन्ह समेटि सब अभरन, होइगा दुख कर नाच॥
१२।८।८-६

गुप्तजी—

टूट मनै नव मोती, फूट मनै दस काँच।
लीन्ह समेटि ओबरिन, होइगा दुख कर नाँच॥
१३३।८-९

डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ किया है—

"नौ मन मोती टूट गए और दस मन काँच की चूड़ियाँ फूट कर बिखर गईं। सब कोठरियों में समेट कर बहार दिया गया। दुःख का नाच समाप्त हो गया।"

और टिप्पणी दी है—

"ओबरिन = रनिवास की कोठरियाँ, कमरे। यह कठिन पाठ था, जिसे कई प्रकार से सरल किया गया—..............किन्तु ये पाठान्तर मूल की अपेक्षा निकृष्ट हैं। सं० अपवरक (= बैठने का भीतरी कमरा मोनियर विलियम्स संस्कृत कोष, पृ० ५२) प्रा० अपवरक, अववरक (पासद्द० पृ० १०४)।"

'क्लिष्ट पाठ' डा० अग्रवाल ने एक हौआ खड़ा किया है और उसके लिए बड़े बड़े कोशों को बीच में घसीटना उनकी कला है। 'ओवरी' कोई कठिन शब्द नहीं है, जिसका अर्थ शुक्लजी या पदमावत के अन्य सम्पादक न जानते हों। उसके लिए मोनियर विलियम्स के कोश के प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं है। हिन्दी के किसी भी साधारण से कोश में इसका अर्थ मिल सकता है। रनिवास के कमरे या बैठने के भीतरी कमरे को ही नहीं, किसी भी छोटी कोठरी को ओवरी कहते हैं। स्वयं जायसी ने जेल की काल कोठरी को भी ओबरी कहा है—

"घालि निगड़ ओबरी लेइ मेला, साँकरि औ अँधियार दुहेला।"

आधुनिक साहित्य में भी इसका प्रयोग मिलता है—

"रोती रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया[1]।"

और इसका संस्कृत मूल 'अपवरक' न हो कर 'विवर' होना भी संभव है। यह तो हुई डा० अग्रवाल के क्लिष्ट पाठ के हौए की समीक्षा। अब उनके अर्थ पर गौर कीजिए। मोती टूटे और चूड़ियाँ फूट गईं, सब कोठरियों में समेट कर बहार दिया गया—'बहार दिया गया' किसका अर्थ हुआ? कोठरियों में समेट कर बहारा क्यों जायगा? कोठरियों में तो समेट कर रखा जायगा। 'ओबरी' लाने के लिए 'बहारना' भी ऊपर से लाया गया। और 'दुःख का नाच समाप्त हो गया' तो हास्यास्पद अर्थ है 'समाप्ति' सूचक कोई शब्द जायसी के दोहे में है ही नहीं। वस्तुस्थिति यह है कि अब दुःख तो आरम्भ ही हुआ है।

जायसी ने सीधी सी बात कही थी कि (रानियाँ छाती पीट पीट कर रोईं जिससे) मोती टूट गये और चूड़ियाँ फूट गईं, उन्होंने गहने उतार कर रख दिये (स्त्रियाँ दुःख के समय गहने उतार देती हैं)। शुक्ल जी का पाठ अर्थ की दृष्टि से उत्तम पाठ है।

४. शुक्लजी—

कोई बोहित जस पौन उड़ाहीं, कोई चमकि बीजु अस जाहीं।
१५।६।१

---

1. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—'उसने कहा था'।

गुप्तजी—

कोइ बोहित जस पवन उड़ाहीं, कोई चमकि बीजु बर जाहीं।
१५७।१

डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ किया है :—

"कोई जहाज हवा की तरह उड़े जाते थे। कोई चमक कर मानो बिजली की शक्ति से चले जाते थे।"

आज भी जहाज बिजली के शक्ति से नहीं चलते, फिर भी आज का कवि बिजली तो क्या, अणु शक्ति से भी जहाज चलने की कल्पना कर सकता है। परन्तु फैराडे [१७६१–१८६७ ई०] के १८३१ के आविष्कार से पहले बिजली की शक्ति से जहाज चलाने की कल्पना कवि न कर सकते थे, जायसी ने भी न की होगी। 'बीजु अस जाहीं' इतनी उत्प्रेक्षा तो जायसी कर पाये होंगे, 'बीजु बर जाहीं', यह उत्प्रेक्षा उन्होंने न की होगी।

५. *शुक्लजी—*

(क) कै अस्तुति जब बहुत मनावा, सबद अकूत मँडप महँ आवा।
१७।२।१

(ख) उतरु को देइ, देव मरि गएउ, सबद अकूत मँडप महँ भएउ।
२०।१०।२

गुप्तजी—

(क) कै अस्तुति जौं बहुत मनावा, सबद अकूट मँडप महँ आवा।
१६६।१

(ख) उतर को देइ देव मरि गएऊ, सबद अकूट मँडप महँ भएऊ!
१६२।२

शुक्लजी ने 'अकूत' का अर्थ किया है :—

(क) 'अकूत = आप से आप, अकस्मात्'

(ख) 'अकूत = परोक्ष, आकाशवाणी'

और डा० अग्रवाल ने अर्थ किया है :—

(क) 'जब उसने इस प्रकार स्तुति कर के देवता को बहुत मनाया तब मंडप में दिव्य शब्द सुनाई दिया—

टिप्पणी :—"अकूट—यह विलष्ट पाठ था (और भी, १६२।२) जिसे सरल कर के अकूत (= अज्ञात) किया गया। अकूट < प्रा० अकुट्ट (प्रा० धातु कुट्ट = छेदन करना, काटना)। व्यक्ति के मुख से निकला हुआ शब्द खंडित या परिमित होता है किन्तु महाकाश का शब्द दिव्य और अखंड होता है। अथवा, कूट = भौतिक शरीर; अकूट अभौतिक, दिव्य।"

(ख) " 'उत्तर कौन दे, देवता तो मर गया है,' यह दिव्य शब्द मंडप में उत्पन्न हुआ।"

शुक्लजी ने 'अकूत' पाठ दिया है और गुप्तजी ने 'अकूट'। और डा० अग्रवाल ने उसके समर्थन में वही विलष्ट पाठ का हौआ खड़ा किया है। 'अकूट' शुद्ध पाठ होने पर भी डा० अग्रवाल उसका शुद्ध अर्थ नहीं कर पाये और न उसकी ठीक व्युत्पत्ति ही खोज पाये हैं। 'कूट' शुद्ध संस्कृत शब्द है :

"मायानिश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु।
अयोघने शैलशृंगे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम्[१]॥"

"कूट (वि०) = मिथ्या।

कूटः, कूटम् = १. कपट, छल, माया, धोखा। २. चालाकी,

---

१. अमरकोश।

जालसाजी। ३. विषम प्रश्न, क्लिष्ट रचना। ४. झूठ, मिथ्या। ५. पर्वत की चोटी या शिखर। ६. निकास, ऊँचाई। ७. माथे की हड्डी, शिखा। ८. सींग। ९. कोना, छोर। १०. प्रधान, मुख्य। ११. ढेर, समूह। १२. हथौड़ा, घन। १३. हल की फाल। १४. हिरन फँसाने का जाल। १५. गुप्ति। १६. कलसा, घड़ा। (पुं०) १७. घर, आवास-स्थल। १८. अगस्त्य का नाम।"[1]

"कूट--पुं० १. पहाड़ की ऊँची चोटी। शृङ्ग। जैसे—चित्रकूट। २. जानवर का सींग। ३. राशि। ढेर। जैसे—अन्नकूट। ४. छल। धोखा। ५. गुप्त रहस्य। ६. वह पद जिसमें क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग हो और इसीलिए जिसका अर्थ जल्दी सब लोगों की समझ में न आवे। जैसे—सूर के कूट। ७. वह हास्य या व्यंग जिसका अर्थ गूढ़ हो।

वि०—१. झूठा। मिथ्यावादी। २. धोखा देनेवाला। कपटी। छली। ३. कृत्रिम। बनावटी। नकली। जाली। जैसे कूट मुद्रा। ४. प्रधान। श्रेष्ठ। मुख्य।"[2]

यही 'कूट' शब्द चित्रकूट, अन्नकूट, सूरदास के कूट, कूटतुला, कूट-रचना, कूट-मान, कूट-साक्षी, कूट-युद्ध, कूट-नीति आदि शब्दों में विभिन्न अर्थों में है।

'नञ्' पूर्वक 'कूट' से 'अकूट' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'छल छन्द से रहित सत्य वचन'। इन दोनों स्थलों पर 'अकूट'

---

१. संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ।

२. प्रामाणिक हिन्दी कोश।

पाठ ही जायसी को अभिप्रेत था ।

६. शुक्लजी—

नैन ज्यों चक्र फिरै चहुँ ओरा, बरजै धाय समाहिं न कोरा ।
१८।६।१

गुप्तजी—

नैन जो चक्र फिरै चहुँ ओरां, चरचै धाइ समाइ न कोरां ।
१७३।१

डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ किया है—

"नेत्र चक्र की तरह चारों ओर घूमते थे । धाय चरचती (वर्जित करती) पर वे अपनी कोर में न समाते थे ।"

यद्यपि 'बरजै' और 'चरचै' दो भिन्न भिन्न पाठ हैं, डा० अग्रवाल ने 'चरचै' का अर्थ 'बरजै' ही कर दिया है । परन्तु 'चरचै' का यह अर्थ नहीं है । चरचना का अर्थ है—ताड़ना, भाँपना[1] । इस अर्धाली का अर्थ है—पदमावती के नेत्र चक्र की तरह चारों ओर फिरते हैं, अपनी कोरों में नहीं समाते—धाय इस बात को भाँप लेती है ।

यहाँ 'चरचै' उत्तम पाठ है ।

७ शुक्लजी—

तब उदंत छाला लिखि दीन्हा, वेगि आउ चाहे सिध कीन्हा ।
२३।२०।७

गुप्तजी—

तब उड़ंत छाला लिखि दीन्हा, बेगि आउ चाहौं सिध कीन्हा ।
२३६।७

---

१. रामचन्द्र वर्मा—प्रामाणिक हिन्दी कोश ।

शुक्लजी के पाठ का डा० मुंशीराम ने अर्थ किया है—

"तब उन्होंने सब वृत्तान्त इस पत्र में लिख दिया है और कहा है कि यदि सिद्धि प्राप्त करना चाहते हो तो शीघ्र आओ। (छाला = पत्र। उदंत = समाचार)"

और गुप्त जी के पाठ का डा० अग्रवाल ने अर्थ किया है— "उसने तुम्हारे लिए लिखा है—'उड़ंत छाल पर बैठ कर तुरन्त आओ मैं तुम्हें सिद्ध बनाना चाहती हूँ......

उड़ंत छाला—उड़ने वाली मृगछाला। मध्यकालीन विश्वास के अनुसार सिद्धि प्राप्त योगी मृगछाला पर बैठ कर आकाश मार्ग से चाहे जहाँ जा सकता था।"

इसका अर्थ यह हुआ कि हीरामन ने पदमावती का पत्र पढ़ कर सुनाया। भला हीरामन उस पत्र को क्यों पढ़ेगा? और उस पत्र में क्या लिखा है यह भी ऊपर आ चुका है, उसमें यह कहीं नहीं लिखा कि उड़ंत छाल पर बैठ कर तुरंत आओ। इससे पहले यह भी कहा है—

देखेसि जागि सुआ सिर नावा, पाती देइ मुख बचन सुनावा।

जब सुए ने पाती दे दी तो राजा स्वयं उसे पढ़ लेगा, सुआ क्यों बतायेगा कि इसमें क्या लिखा है। और यदि राजा छाल पर बैठ कर उड़ कर पदमावती के पास पहुँच सकता था तो वह सेंध लगा कर गढ़ में क्यों घुसा और पकड़ा क्यों गया?

शुक्लजी का उदंत पाठ बहुत सुन्दर है। इसका अर्थ है— संवाद, वृत्तान्त। 'वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्'[1]।' वृत्त की

१. अमरकोश।

छाल[1] पर पत्र लिखने की पुरानी प्रथा थी। और पत्र के साथ मौखिक संदेश भी दिया जाता है। राजा ने हीरामन को पत्र लिख कर दिया था तो कहा था—'औ मुख बचन सों कहे सुपरेवा..................' अब पदमावती ने भी पत्र के साथ मौखिक संदेश भी दिया। वही हीरामन कह रहा है कि पदमावती ने सब वृत्तान्त पत्र में लिख दिया है, वह तुम्हें सिद्ध करना चाहती है, जल्दी चलो। 'उड़ंत' से 'उदंत' उत्कृष्ट पाठ है।

८. शुक्लजी—

मुद्रा स्रवन विनय सों चाँपा, राजपना उघरा सब झाँपा।
२५।२२।५

अर्थ— 'मुद्रा स्रवन···चाँपा = विनयपूर्वक कान की मुद्रा को पकड़ा। चाँपा = दबाया, थामा। झाँपा = ढका हुआ।'

गुप्तजी—

मुंद्रा स्रवन मैन सों चाँपे, राजबैन उघरे सब झाँपे।
२७३।५

अर्थ—"वह कानों में मोम (मैंन) से मुद्राएं चिपकाए था। राजाज्ञा से उसके वास्तविक स्वरूप को ढकने वाले सारे उपकरण उघाड़ दिये गये।"

गुप्तजी का पाठ शुक्लजी के पाठ से उत्कृष्ट है।

९. शुक्लजी—

बिरह बान तस लाग न डोली, रकत पसीज भींजि गइ चोली।

---

१. "छाल = पुं० चिट्ठी या पत्र (जो पहले छाल पर लिखा जाता था।"—प्रामाणिक हिन्दी कोश।

सूखा हिया हार भा भारी, हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी ॥

३० । २ । ३–४ ।

अर्थ—"......उसका रक्त पसीज गया (जिससे) चोली भीग गई । (रक्त निकल जाने से) हृदय सूख गया, हार (=हाड़ (अस्थिपंजर) सँभालना भी) उसे भारी हो गया (शरीर में शक्ति न रही, शक्ति का स्रोत तो रक्त है, जब शरीर में रक्त ही न रहा तो शक्ति कैसे रहेगी), उसकी सब नारी (नाड़ियाँ) धीरे धीरे प्राण छोड़ने लगीं । गुप्तजी......

विरह बान तस लाग न डोली, रकत पसीज भीजि तन चोली ।
सखि हिय हेरि हार मैन मारी , हहरि परान तजै अब नारी ॥

३४२ । ३–४ ।

अर्थ—"......रक्त के पसीजने से शरीर की चोली भीज गई । सखी ने मन में विचार कर देखा कि मदन की सताई हुई यह बाला अब हार गई है काँप काँप कर प्राण छोड़ देना चाहती है ।"

'सूखा हिया हार भा भारी' जायसी के सब से सुन्दर चित्रों में से है । "सखि हिय हेरि हार मेन मारी" पाठ में अर्थ का वह सौंदर्य जाता रहा । इतना ही नहीं, इसमें चौपाई की १६ के स्थान पर १७ मात्राएँ हैं और गति का अभाव है ।

१०. शुक्लजी—

सुधि बुधि तौ सब बिसरी, भार परा मझ बाट ।
हस्ति घोर को काकर, घर आनी गई खाट ॥

५५ । २ । ८-९ ।

गुप्तजी—

सुद्धि बुद्धि सब बिसरी बाट परी मँझ बाट।
हस्ति घोर को काकर घर आना कै खाट॥
६४६। ८-६।

चौथे चरण का डा० अग्रवाल ने अर्थ किया है—"उसे खाट पर डाल कर घर लाए।" शुक्लजी के पाठ का अर्थ है—"खाट घर लाई गई" और लक्षणा से 'खाट' का अर्थ 'उस पर लाई गई चीज़—लाश'—है। 'लाश घर लाई गई' कहनां अशुभ माना जाता है, इसलिए कवि ने कहा 'घर आनी गइ खाट' और यही शुद्ध पाठ है। यह अवधी की प्रवृत्ति के अनुरूप भी है। खड़ी बोली में जहाँ कर्तृवाच्य का प्रचलन है वहाँ उसमें कर्मवाच्य का प्रयोग अधिक होता है।

गुप्तजी ने जिस प्रति को उत्कृष्ट समझा उसी के पाठ को तरजीह दी। परन्तु कोई आदमी कहीं भूल कर सकता है कोई कहीं। यह आवश्यक नहीं कि एक प्रतिलिपिकार के सभी पाठ दूसरे प्रतिलिपिकार के पाठों से अधिक प्रामाणिक हों। जब जायसी के हाथ की लिखी प्रति उपलब्ध नहीं है तब जहाँ कहीं दो या अधिक पाठान्तर मिलें वहाँ अर्थ-सौष्ठव ही पाठ-निर्धारण की कसौटी होनी चाहिए। इस संग्रह में इसी कसौटी पर कस कर पाठ निर्धारित किया गया है। आँख मूँद कर न शुक्लजी का पाठ सर्वत्र रखा गया है, न गुप्तजी का। एक दो स्थानों पर तो इन दोनों के स्वीकृत पाठ को छोड़ कर गुप्तजी द्वारा दिये गये पाठान्तरों को अपनाया गया है।

पद्मावत-सार

स्तुति-खंड

ग्रन्थारम्भ में कवि ने 'अलख अरूप अबरन सो करता' का स्मरण कर उसके द्वारा संसार की रचना का वर्णन किया। तदनन्तर

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा, नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा।
प्रथम जोति विधि तेहि कै साजी, औ तेहि प्रीति सिस्टि उपराजी।
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा, भा निरमल जग मारग चीन्हा।
जौं न होत अस पुरुष उजारा, सूझि न परत पंथ अँधियारा।
दोसरइँ ठाँव दई ओइँ लिखे, भए धरमी जो पाढ़त सिखे।
जगत बसीठ दई ओइँ कीन्हे, दोउ जग तरा नाउँ ओहि लीन्हें।
जेहि नहिं लीन्ह जनम सो नाऊँ, ताकहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ।

गुन अवगुन विधि पूँछब, होइहि लेख औ जोख।
ओन्ह विनउब आगे होइ, करब जगत कर मोख॥

चारि मीत जो मुहमद ठाऊँ, चहुँक दुहूँ जग निरमर नाऊँ।
अवाबकर सिद्दीक सयाने, पहिलइँ सिदिक दीन ओइँ आने।
पुनि सो उमर खिताब सुहाए, भा जग अदल दीन जौं आए।
पुनि उसमान पँडित बड़ गुनी, लिखा पुरान जो आयत सुनी।
चौथे अली सिंघ बरियारू, सौहँ न कोई रहा जुझारू।
चारिउ एक मतै एक बाता, एक पंथ औ एक सँघाता।
बचन जो एक सुनाएन्हि साँचा, भए परवान दुहूँ जग बाँचा।

जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गिरंथ।
और जो भूले आवत सो सुनि लागे पंथ॥

सेरसाहि ढिल्ली सुलतानू , चारिउ खंड तपै जस भानू ।
ओही छाज छात औ पाटू , सब राजा भुइँ धरहिं लिलाटू ।
जाति सूर औ खाँडे सूरा , औ बुधिवंत सबै गुन पूरा ।
सूर नवाए नवखँड वई , सातउ दीप दुनी सब नई ।
तहँ लगि राज खड़ग बर लीन्हा , इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा ।
हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी , जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी ।
औ अति गरू पुहुमिपति भारी , टेकि पुहुमि सब सिस्टि सँभारी ।
दीन्ह असीस मुहम्मद , करहु जुगहि जुग राज ।
बादसाह तुम्ह जगत के , जग तुम्हार मुहताज ॥

शेरशाह की सेना, प्रताप, रूप, दान आदि का विस्तार से वर्णन कर कवि ने अपनी गुरु-परंपरा का उल्लेख किया; तब

एक नैन कवि मुहमद गुनी , सोइ विमोहा जेहि कवि सुनी ।
चाँद जैस जग विधि औतारा , दीन्ह कलंक कीन्ह उजिआरा ।
जग सूझा एकै नैनाहाँ , उआ सूक जस नखतन्ह माहाँ ।
जौं लहि अंबहिं डाभ न होई , तौ लहि सुगंध बसाइ न सोई ।
कीन्ह समुद्र पानि जो खारा , तौ अति भएउ असूझ अपारा ।
जौं सुमेरु तिरसूल विनासा , भा कंचनगिरि लाग अकासा ।
जौं लहि घरी कलंक न परा , काँच होइ नहिं कंचन करा ।
एक नैन जस दरपन औ निरमल तेहि भाउ ।
सब रुपवंतइ पाउँ गहि मुख जोहहिं कै चाउ ॥

जायस नगर धरम अस्थानू , तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानूं† ।
औ बिनती पँडितन सन भजा , टूट सँवारेहु मेरवहु सजा ।

---

† पाठान्तर—तहवाँ यह कवि कीन्ह अखानू ।

हौं सब कविन्ह केर पछिलगा, किछु कहि चला तबल देइ डगा।
हिय भँडार नग अहै जो पूँजी, खोली जीभ तारु कै कूँजी।
रतन पदारथ बोल जो बोला, सुरस प्रेम मधु भरा अमोला।
जेहि के बोल बिरह कै घाया, कहँ तेहि भूख कहाँ तेहि माया।
फेरे भेख रहे भा तपा, धूरि लपेटा मानिक छपा।

मुहमद कबि जौ प्रेम का ना तन रकत न माँसु।
जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा, सुना तो आए आँसु॥

सन नौ सै सैंतालिस अहै, कथा अरंभ बैन कवि कहै।
सिंघल दीप पदुमिनी रानी, रतनसेन चितउर गढ़ आनी।
अलाउदीं ढिल्ली सुलतानू, राघौ चेतन कीन्ह बखानू।
सुना साहि गढ़ छेंका आई, हिंदू तुरुकहिं भई लराई।
आदि अंत जस गाथा अहै, लिखि भाखा चौपाई कहै।
कवि बियास कँवला रस पूरी, दूरि सो निअर निअर सो दूरी।
निअरे दूर फूल जस काँटा, दूरि जो निअरे जस गुर चाँटा।

भँवर आइ बनखंड हुति लेइ कँवल कै बास।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जो आछहिं पास॥

सिंघल द्वीप वर्णन खंड

सिंघल दीप कथा अब गावौं, औ सो पदुमिनि बरनि सुनावौं।
निरमल दरपन भाँति बिसेखा, जेहि जस रूप सो तैसेइ देखा।

....

गंध्रबसेन सुगंध नरेसू, सो राजा वह ताकर देसू।
लंका सुना जो रावन राजू, तेहु चाहि बड़ ताकर साजू।
छप्पन कोटि कटक दल साजा, सबै छत्रपति औ गढ़ राजा।
सोरह सहस घोर घोरसारा, स्यामकरन अरु बाँक तुखारा।

सात सहस हस्ती सिंघली, जनु कबिलास एरावत बली।
असुपतीक सिरमौर कहावैं, गजपतीक आँकुस गज नावैं।
नरपतीक कहाव नरिंदू, भुअपतीक जग दूसर इंदू।
अइस चक्कवै राजा चहूँ खंड भय होइ।
सबै आइ सिर नावहिं सरबरि करै न कोइ॥

जबहिं दीप निअरावा जाई, जनु कबिलास निअर भा आई।
घन अँवराउँ लाग चहुँ पासा, उठै पुहुमि हुत लाग अकासा।
तरिवर सबै मलैगिरि लाई, भइ जग छाँह रैनि होइ आई।
मलै-समीर सोहावन छाहाँ, जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।
ओही छाँह रैनि होइ आवै, हरिअर सबै अकास देखावै।
पथिक जौं पहुँचै सहि कै घामू, दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।
जेइ वह पाई छाँह अनूपा, फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा।
अस अँवराउँ सघन घन बरनि न पारौं अंत।
फूलै फरै छहूँ रितु जानहु सदा बसंत॥

....

मानसरोदक बरनौं काहा, भरा समुंद अस अति अवगाहा।
पानि मोति अस निरमर तासू, अंब्रित बानि कपूर सुबासू।
लंक दीप कै सिला अनाई, बाँधा सरवर घाट बनाई।
खँड खँड सीढ़ी भईं गरेरी, उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी।
फूला कँवल रहा होइ राता, सहस सहस पँखुरिन्ह कर छाता।
उलथहिं सीप मोति उतराहीं, चुगहिं हंस औ केलि कराहीं।
कनक पंखि पौरहिं अति लोने, जानहु चित्र लिखे सब सोने।
ऊपर पाल चहूँ दिसि अंब्रित फर सब रूख।
देखि रूप सरवर कर गइ पिआस औ भूख॥

पानि भरै आवहिं पनिहारी, रूप सुरूप पदुमिनी नारी।
पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं, भँवर लागि तिन्ह सँग फिराहीं।
लंकसिंघिनी, सारँगनैनी, हंसगामिनी कोकिलबैनी।
आवहिं झुंड सो पाँतिहिं पाँती, गवन सोहाइ सु भाँतिहिं भाँती।
केस मेघावरि सिर ता पाईं, चमकहिं दसन बीजु की नाईं।
कनक कलस मुखचंद दिपाहीं, रहस केलि सों आवहिं जाहीं।
जा सहुं वै हेरहिं चख नारी, बाँक नैन जनु हनहिं कटारी।

माथे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप।
जेहि के अस पनिहारी सो रानी केहि रूप॥

ताल तलावरि बरनि न जाहीं, सूझै वार पार किछु नाहीं।
फूले कुमुद सेत उजियारे, जानहुँ उए गगन महँ तारे।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी, चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी।
पौरहि पंखि सो संगहिं संगा, सेत पीत राते बहु रंगा।
चकई चकवा केलि कराहीं, निसि के बिछोह दिनहिं मिलि जाहीं।
कुररहिं सारस करहिं हुलासा, जीवन मरन सो एकहिं पासा।
बोलहिं सोन ढेक बग लेदी, रही अबोल मीन जल भेदी।

नग अमोल तेहि तालहिं दिनहिं बरहिं जनु दीप।
जो मरजिआ होइ तहँ सो पावइ वह सीप॥

....

बरनौं राजमँदिर रनिवासू, जनु अछरीन्ह भरा कविलासू।
सोरह सहस पदुमिनी रानी, एक एक तें रूप बखानी।
अति सुरूप औ अति सुकुवाँरी, पान फूल के रहहिं अधारी।
तिन्ह ऊपर चंपावति रानी, महा सुरूप पाट परधानी।
पाट बैठि रह किए सिंगारू, सब रानी ओहि करहिं जोहारू।

निति नौरंग सुरंगम सोई, प्रथम बैस नहिं सरवरि कोई।
सकल दीप महँ जेती रानी, तिन्ह महँ दीपक बारह-बानी।
कुँवरि वतीसो लच्छनी अस सब माँह अनूप।
जावत सिंघलदीप के सबै बखानैं रूप॥

जन्म खंड

चंपावती की कोख से पद्मावती नाम की परम सुन्दरी कन्या जन्मी। सयानी होने पर पद्मावती को अलग महल दिया गया। पद्मावती के पास हीरामन नाम का तोता था। वह महापंडित था। हीरामन और पद्मावती एक साथ रहते और वेद-शास्त्र पढ़ते थे। पद्मावती से विवाह करने के लिए दूर दूर से वर आने लगे, पर गंधर्वसेन किसी को अपने बराबर न समझता और जवाब दे देता था। एक दिन पद्मावती ने हीरामन से कहा—मेरी मदन-पीडा दिन-दिन बढ़ती जा रही है, पर पिता मेरे विवाह की बात नहीं चला रहे; माँ डर के मारे कुछ कह नहीं सकतीं; 'मेरे लिए देश देश के वर आ रहे हैं पर पिता को कोई पसन्द नहीं आता। तोते ने उत्तर दिया—"विधि कर लिखा मेटि नहिं जाई।" मुझे आज्ञा दो तो मैं तुम्हारे योग्य वर खोजूँ। उनकी बातचीत किसी दुर्जन ने सुन ली और राजा से कह दी। यह सुन राजा को गुस्सा आया और उसने तोते को मार डालने की आज्ञा दी; पर पद्मावती ने किसी प्रकार विनती कर के हीरामन को बचा लिया। तोते ने पद्मावती से कहा कि आज तो तुमने मुझे बचा लिया, पर राजा मुझे मारना चाहता है, कब तक बचा सकोगी? मुझे जाने दो तो मैं जंगल में चला जाऊँ। पर पद्मावती ने उसे जाने न दिया। तोता उसके पास रह तो गया पर उसके मन में डर बना रहा।

मानसरोदक खंड

एक दिवस पूनिउँ तिथि आई, मानसरोदक चली अन्हाई।
पदमावति सब सखी बुलाईं, जनु फुलवारि सबै चलि आईं।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली, कोइ सुकेत, करना रस बेली।

कोइ सु गुलाल सुदरसन राती, कोइ बकौरि बकुचन बिहँसाती।
कोई सु मौलसिरि पुहुपावती, कोइ जाही जूही सेवती।
कोइ सोनजरद कोइ केसरि, कोइ सिंगारहार नागेसरि।
कोइ कूजा सदबरग चमेली, कोई कदम सुरस रस बेली।
चलीं सबै मालति सँग फूलीं कवँल कुमोद।
बेधि रहे गन गँधरब बास परमदामोद॥
खेलत मानसरोवर गईं, जाइ पाल पर ठाढ़ी भईं।
देखि सरोवर रहसहिं केली, पदमावति सौं कहहिं सहेली।
ए रानी मन देखु बिचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगि अहै पिता कर राजू, खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गवनब काली, कित हम कित यह सरवर पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथा, कित मिलि कै खेलब एक साथा।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं, दारुन ससुर न निसरै देहीं।
पिउ पियार सब ऊपर पुनि सो करै दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख दहुँ कस जनम निबाह॥
सरवर तीर पदुमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुकलाई।
ससि मुख अंग मलयगिरि बासा, नागन्ह झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।
ओनई घटा परी जग छाँहा, ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ।
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा, लेइ निसि नखत चाँद परगसा।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा, मेघघटा महँ चंद देखावा।
दसन दामिनी कोकिल भाखी, भौंहें धनुख गगन लेइ राखी।
सरवर रूप बिमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि देइ॥
धरी तीर सब कंचुकि सारी, सरवर महँ पैठीं सब बारी।

पाइ नीर जानौं सब बेली, हुलसहिं करहिं काम कै केली।
करिल केस बिसहर बिस भरे, लहरैं लेहिं कवँल मुख धरे।
नवल बसंत सँवारी करी, होइ प्रगट जानहु रस भरी।
उठी कोंप जस दारिवँ दाखा, भई उनंत पेम कै साखा।
सरिवर नहिं समाइ संसारा, चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा।
धनि सो नीर ससि तरई ऊईं, अब कित दीठ कमल औ कूईं।

चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौ हो नाहँ।
एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माहँ॥

लागीं केलि करै मँझ नीरा, हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा।
पदमावति कौतुक कहँ राखी, तुम ससि होहु तराइन्ह साखी।
बाद मेलि कै खेल पसारा, हार देइ जो खेलत हारा।
सँवरिहि साँवरि, गोरिहि गोरी, आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी।
बूझि खेल खेलहु एक साथा, हार न होइ पराए हाथा।
आजुहि खेल बहुरि कित होई, खेल गए कित खेलै कोई।
धनि सो खेल खेलहिं रस पेमा, रउताई और कूसल खेमा।

मुहमद बाजी पेम कै ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलायल तेल।

सखी एक तेइ खेल न जाना, भै अचेत मनि-हार गवाँना।
कवँल डार गहि भै बेकरारा, कासौं पुकारौं आपन हारा।
कित खेलै आइउँ एहि साथा, हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा।
घर पैठत पूँछब एहि हारू, कौन उतर पाउब पैसारू।
नैन सीप आँसू तस भरे, जानौ मोति गिरहिं सब ढरे।
सखिन्ह कहा बौरी कोकिला, कौन पानि जेहि पौनु न मिला।
हार गँवाइ सो ऐसै रोवा, हेरि हेराइ लेइ जौं खोवा।

लागीं सब मिलि हेरै बूड़ि बूड़ि एक साथ।
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ॥

कहा मानसर चाह सो पाई, पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे, पावा रूप रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई, भा सीतल गै तपनि बुझाई।
न जनौं कौन पौन लेइ आवा, पुन्य दसा भै पाप गँवावा।
ततखन हार बेगि उतिराना, पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा, भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।
पावा रूप रूप जस चूहा, ससि-मुख जनु दरपन होइ रहा।

नयन जो देखा कवँल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर॥

सुआ खंड, रतनसेन जन्म खंड, बनिजारा खंड, नागमती सुआ संवाद खंड, राजा सुआ संवाद खंड

इधर पीछे महल में बिल्ली आई, उसे देख कर हीरामन उड़ कर ढाक के जंगल में चला गया। वहाँ पक्षियों ने उसका बड़ा आदर किया। पदमावती लौट कर आई। तोते का पिंजरा खाली देख कर बहुत रोई। सखियों से खोजने को कहा। पर सखियों ने समझाया कि उसे कहाँ पाओगी। जब तक तोता पिंजरे में रहा, बंदी रहा। अब वह स्वतंत्र हो गया है, अब लौट कर क्यों आवेगा? तोते ने कुछ दिन तो जंगल में सुख से काटे। फिर एक बहेलिया आया और उसे पकड़ कर ले चला।

चित्तौड़गढ़ के राजा चित्रसेन का रतनसेन नामक पुत्र हुआ। उसका रूप और लक्षण देख कर ज्योतिषियों ने कहा कि यह बड़ा पराक्रमी होगा। पदमावती के लिए जोगी बन कर सिंहल जायगा और सिद्ध बन कर उसे चित्तौड़ लायगा।

चित्तौड़गढ़ का एक व्यापारी व्यापार के लिए सिंहल द्वीप को चला। एक गरीब ब्राह्मण भी कुछ ऋण ले कर उसके साथ हो लिया। सिंहल द्वीप

में आ कर व्यापारियों ने माल खरीदा, पर ब्राह्मण को कुछ न मिला। साथी माल खरीद कर चले गये और ब्राह्मण हाट में खड़ा पछताने लगा। इतने में बहेलिया हीरामन को बेचने हाट में पहुँचा। ब्राह्मण ने हीरामन से दो चार बातें पूछीं, उसे पंडित जान कर खरीद लिया और जल्दी जल्दी चल कर अपने साथियों से जा मिला। ये लोग चित्तौड़ पहुँचे तो वहाँ का राजा चित्र-सेन मर चुका था और उसका कुँवर रतनसेन गद्दी पर बैठा था। राजा रतन-सेन के दरबार में खबर पहुँची कि सिंहल गये हुए व्यापारी लौट आये हैं, उनके पास सिंहल द्वीप का बहुत सा माल है, एक ब्राह्मण एक तोता लाया है जो बड़ा सुन्दर है, उसके मस्तक पर टीका और कंधे में जनेऊ है, वह वेदव्यास के ऐसा कवि है, वह जो सार्थक शब्द बोलता है उसे सुन कर सब सिर हिलाने लगते हैं, ऐसा अनमोल तोता राज-मन्दिर में होना चाहिए। रतनसेन ने ब्राह्मण को बुलाया और हीरामन के गुण देख कर एक लाख रुपये में उसे खरीद लिया।

कुछ दिन बाद राजा रतनसेन शिकार को गया। उसकी पटरानी नागमती शृङ्गार कर के हीरामन के पास आई और उससे पूछ बैठी—मुझ जैसी सुन्दरी कोई जग में है? पदमावती का रूप स्मरण कर हीरामन हँसा और बोला—सुन्दरी तो वही है जिसे स्वामी चाहे। सिंहल की नारियों की बात क्या पूछती हो? तुम तो उनके सामने अँधेरी रात सी हो। नागमती ने सोचा कहीं ऐसा न हो कि यह राजा के सामने कभी ऐसी बात कह दे और राजा सिंहल की पद्मिनी नारियों के लिए वियोगी हो कर चला जाय। उसने धाय को बुला कर कहा कि इस कुभागी तोते को एकान्त में ले जा कर मार दो। पर धाय ने सोचा कि यह तोता राजा का प्यारा है, इसे मार देने पर राजा मुझे दंड देगा। यह सोच कर उसने तोते को छिपा दिया। राजा ने शिकार से लौट कर पूछा हीरामन कहाँ है तो रानी ने उत्तर दिया—उसे बिल्ली ले गई। राजा ने उसके लिए बहुत विलाप किया। तब रानी उठ कर धाय के पास गई और उससे तोता ला कर उसने राजा को दिया। राजा के पूछने पर तोते ने सारी बात बताई और पदमावती के रूप का बखान किया।

नख शिख खंड

का सिंगार ओहि बरनौं राजा, ओहिक सिंगार ओहि पै छाजा।
प्रथम सीस कस्तूरी केसा, बलि बासुकि का और नरेसा।
भौंर केस वह मालति रानी, बिसहर लुरे लेहिं अरघानी।
बेनी छोरि झार जौं बारा, सरग पतार होइ अँधियारा।
कोंवल कुटिल केस नग कारे, लहरन्हि भरे भुअँग बैसारे।
बेधे जनौं मलयगिरि बासा, सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा।
घुँघरवारि अलकैं विषभरी, सँकरैं पेम चहैं गिउ परी।

अस फँदवार केस वै परा सीस गिउ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग सब अरुझ केस के बाँद॥

बरनौं माँग सीस उपराहीं, सेंदुर अबहि चढ़ा जेहि नाहीं।
बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ, उजियर पंथ रैनि महँ कीआ।
कंचन रेख कसौटी कसी, जनु घन महँ दामिनि परगसी।
सुरुज किरिन जनु गगन बिसेखी, जमुना माँह सुरसती देखी।
खाँड़ै धार रुहिर जनु भरा, करवत लेइ बेनी पर धरा।
तेहि पर पूरि धरे जो मोती, जमुना माँझ गंग कै सोती।
करवत तपा लेहिं होइ चूरू, मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू।

कनक दुवादस बानि होइ चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहिं नखत सब उवै गगन जस गाँग॥

कहौं लिलार दुइज कै जोती, दुइजहि जोति कहाँ जग ओती।
सहस किरिन जो सुरुज दिपाई, देखि लिलार सोउ छपि जाई।
का सरवरि तेहि देउँ मयंकू, चाँद कलंकी वह निकलंकू।
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा, वह बिनु राहु सदा परगासा।

तेहि लिलार पर तिलक बईठा, दुइज पाट जानहु धुव दीठा।
कनक पाट जनु बैठा राजा, सबै सिंगार अत्र लेइ साजा।
ओहि आगे थिर रहा न कोऊ, दहुँ का कहँ अस जुरै संजोऊ।
खरग धनुक चक बान दुइ, जग मारन तिन्ह नावँ।
सुनि कै परा मुरुछि कै (राजा) मोकहँ भए एक ठावँ॥

भौंहैं स्याम धनुक जनु ताना, जा सहुँ हेर मार विष बाना।
हनै धुनै उन्ह भौंहनि चढ़े, केइ हतियार काल अस गढ़े।
उहै धनुक किरसुन पर अहा, उहै धनुक राघौ कर गहा।
ओहि धनुक रावन संघारा, ओहि धनुक कंसासुर मारा।
ओहि धनुक बेधा हुत राहू, मारा ओहि सहस्रावाहू।
उहै धनुक मैं तापहँ चीन्हा, धानुक आप बेझ जग कीन्हा।
उन्ह भौंहनि सरि केउ न जीता, अछरी छपीं छपीं गोपीता।
भौंह धनुक धनि धानुक, दूसर सरि न कराइ।
गगन धनुक जो ऊगै, लाजहि सो छपि जाइ॥

नैन बाँक सरि पूज न कोऊ, मानसरोदक उलथहिं दोऊ।
राते कंवल करहिं अलि भवाँ, घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।
उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा, चाहहिं उलथि गगन कहँ लागा।
पवन झकोरहिं देइ हिलोरा, सरग लाइ भुइँ लाइ बहोरा।
जग डोलै डोलत नैनाहाँ, उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ।
जबहिं फिराहिं गगन गहि बोरा, अस वै भौंर चक्र के जोरा।
समुद हिलोर फिरहिं जनु झूले, खंजन लुरहिं मिरिग जनु भूले।
सुभर सरोवर नयन वै, मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिरावहीं काल भौंर तेहि संग॥

बरुनी का बरनौं इमि बनी, साधे बान जानु दुइ अनी।

जुरी राम रावन कै सैना, बीच समुद्र भए दुइ नैना।
बारहिं पार बनावरि साधा, जा सहुँ हेर लाग बिष बाधा।
उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा, बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने, वै सब बान ओही के हने।
धरती बान बेधि सब राखी, साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े, सूतहि सूत बेध अस गाढ़े।

बरुनि बान अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाँख।
सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख॥

नासिक खरग देउँ कह जोगू, खरग खीन वह बदन सँजोगू।
नासिक देखि लजानेउ सूआ, सूक आइ बेसरि होइ ऊआ।
सुआ जो पिअर हिरामन लाजा, और भाव का बरनौं राजा।
सुआ सो नाक कठोर पँवारी, वह कोंवर तिल पुहुप सँवारी।
पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा, मकु हिरकाइ लेइ हम्ह बासा।
अधर दसन पर नासिक सोभा, दारिउँ बिंव देखि सुक लोभा।
खंजन दूहूँ दिसि केलि कराहीं, दहुँ वह रस कोउ पाव कि नाहीं।

देखि अमिय रस अधरन्ह भएउ नासिका कीर।
पौन बास पहुँचावै अस रम छाँड़ न तीर॥

अधर सुरंग अमी रस भरे, बिंब सुरंग लाजि बन फरे।
फूल दुपहरी जानौं राता, फूल झरहिं ज्यों ज्यों कहि बाता।
हीरा लेइ सो विद्रुम धारा, बिहँसत जगत होइ उजियारा।
भए मँजीठ पानन्ह रँग लागे, कुसुम रंग थिर रहै न आगे।
अस कै अधर अमी भरि राखे, अबहिं अछूत न काहू चाखे।
मुख तँबोल रँग धारहिं रसा, केहि मुख जोग जो अंम्रित बसा।
राता जगत देखि रँग राते, रुहिर भरे आछहि बिहँसाते।

अमी अधर अस राजा, सब जग आस करेइ।
केहि कहँ कवँल बिगासा, को मधुकर रस लेइ॥

दसन चौक बैठे जनु हीरा, औ बिच बिच रँग स्याम गंभीरा।
जनु भादौं निसि दामिनि दीसी, चमकि उठै तस बनी बतीसी।
वह सुजोति हीरा उपराहीं, हीरा जोति सो तेहि परछाहीं।
जेहि दिन दसन जोति निरमई, बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी, तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी, पुनि ओहि जोति और को दूजी।

हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि॥

रसना कहौं जो कह रस बाता, अंब्रित बैन सुनत मन राता।
हरै सो सुर चातक कोकिला, बीन बंसि वह बैन न मिला।
चातक कोकिल रहहिं जो नाहीं, सुनि वह बैन लाज छपि जाहीं।
भरे प्रेम रस बोलै बोला, सुनै सो माति घूमि कै डोला।
चतुरवेद मत सब ओहि पाहाँ, रिग जजु साम अथरवन माहाँ।
एक एक बोल अरथ चौगुना, इन्द्र मोह बरम्हा सिर धुना।
अमर भागवत पिंगल गीता, अरथ जूझ पंडित नहीं जीता।

भासवती औ व्याकरन, पिंगल पढ़ै पुरान।
बेद भेद सौं बात कह, सुजनन्ह लागै बान॥

पुनि बरनौं का सुरंग कपोला, एक नारँग दुइ किए अमोला।
पुहुप पंक रस अमृत साँधे, केइ यह सुरंग खरोरा बाँधे।
तेहि कपोल बाएँ तिल परा, जेइ तिल देखि सो तिल तिल जरा।
जनु घुंघची ओहि तिल करमुहीं, बिरह बान साधे सामुहीं।

अगिनि बान जानों तिल सूझा, एक कटाछ लाख दस जूझा।
सो तिल गाल मेटि नहिं गएऊ, अब वह गाल काल जग भएऊ।
देखत नैन परी परिछाहीं, तेहि तें रात साम उपराहीं।
सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा धुव गाड़ि।
खिनहिं उठै खिन बूड़ै, डोलै नहिं तिल छाँड़ि॥
स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे, कुंडल कनक रचे उजियारे।
मनि कुंडल झलकें अति लोने, जनु कौंधा लौकहि दुइ कोने।
दुहुँ दिसि चाँद सुरुज चमकाहीं, नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाहीं।
तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे, दुइ धुव दुऔ खूँट बैसारे।
पहिरे खुंभी सिंघलदीपी, जनौं भरी कचपचिआ सीपी।
खिन खिन जबहि चीर सिर गहै, काँपति बीजु दुऔ दिसि रहै।
डरपहिं देवलोक सिंघला, परै न बीजु टूटि एक कला।
करहिं नखत सब सेवा स्रवन दिपहिं अस दोउ।
चाँद सुरुज अस गोहने और जगत का कोउ॥
बरनौं गीउ कंबु कै रीसी, कंचन तार लागि जनु सीसी।
कुंदै फेरि जानु गिउ काढ़ी, हरी पुछार ठगी जनु ठाढ़ी।
जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा, तेहि तै अधिक भाव गिउ बाढ़ा।
चाक चढ़ाइ साँच जनु कीन्हा, बाग तुरंग जानु गहि लीन्हा।
गिउ मयूर तमचूर जो हारे, उहै पुकारहिं साँझ सकारे।
पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा, घूट जो पीक लीक सब देखा।
धनि ओहि गीउ दीन्ह विधि भाऊ, दहुँ कासौं लेइ करै मेराऊ।
कंटसिरी मुकुतावली सोहै अभरन गीउ।
लागै कंटहार होइ को तप साधा जीउ॥
कनक दंड दुइ भुजा कलाई, जानौं फेरि कुँदेरै भाई।

कदलि गाभ कै जानी जोरी, औ राती ओहि कँवल-हथोरी।
जानो रकत हथोरी बूड़ी, रवि परभात तात वै जूड़ी।
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा, रुहिर भरी अँगुरी तेहि साथा।
औ पहिरे नग जरी अँगूठी, जग बिनु जीउ जीउ ओहि मूठी।
बाँहू कंगन टाड़ सलोनी, डोलत बाँह भाव गति लोनी।
जानौ गति बेड़िन देखराई, बाँह डोलाइ जीउ लेइ जाई।
भुज उपमा पौनार नहिं, खीन भयउ तेहि चिंत।
ठाँवहि ठाँव बेध भा, ऊभि साँस लेइ निंत॥
बैरिनि पीठि लीन्हि वह पाछे, जनु फिरि चली अपछरा काछे।
मलयागिरि कै पीठि सँवारी, बेनी नागिनि चढ़ी जो कारी।
लहरैं देति पीठि जनु चढ़ी, चीर ओहार केंचुली मढ़ी।
दहुँ का कहँ अस बेनी कीन्हीं, चंदन वास भुअंगै लीन्हीं।
किरसुन करा चढ़ा ओहि माथे, तव तौ छूट अव छुटै न नाथे।
कारे कँवल गहे सुख देखा, ससि पाछे जनु राहु बिसेखा।
को देखै पावै वह नागू, सो देखै जेहि के सिर भागू।
पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ बईठ।
छत्र सिंघासन राज धन ताकहँ होइ जो डीठ॥
तीवइ कँवल सुगंध सरीरू, समुद लहरि सोहै तन चीरू।
भूलहिं रतन पाट के झोंपा, साजि मैन अस का पर कोपा।
अवहिं सो अहै कँवल कै करी, न जनौ कौन भौंर कहँ धरी।
कँवल चरन अति रात विसेखी, रहैं पाट पर पुहुमि न देखी।
देवता हाथ हाथ पगु लेहीं, जहँ पगु धरै सीस तहँ देहीं।
माथे भाग कोउ अस पावा, चरन कँवल लेइ सीस चढ़ावा।
चूरा चाँद सुरुज उजियारा, पायल बीच करहिं झनकारा।

अनवट बिछिया नखत तराईं, पहुँचि सकै को पायँन ·· ताईं।
बरनि सिंगार न जानेउँ, नखसिख जैस अभोग।
तस जग किछुइ न पाएउँ, उपमा देउँ ओहि जोग॥

प्रेम खंड

सुनतहि राजा गा मुरछाई, जानौं लहरि सुरुज कै आई।
प्रेम घाव दुख जान न कोई, जेहि लागै जानै पै सोई।
परा सो पेम समुद्र अपारा, लहरहिं लहर होइ बिसँभारा।
बिरह भौंर होइ भाँवरि देई, खिन खिन जीउ हिलोरा लेई।
खिनहिं उसास बूड़ि जिउ जाई, खिनहिं उठै निसरै बौराई।
खिनहिं पीत खिन होइ मुख सेता, खिनहिं चेत खिन होइ अचेता।
कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था, ना जिउ जियै न दसवँ अवस्था।

....

जब भा चेत उठा बैरागा, बाउर जनौं सोइ उठ जागा।
आवत जग बालक जस रोआ, उठा रोइ हा ग्यान सो खोआ।
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ, इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ।
केइ उपकार मरन कर कीन्हा, सकति हँकारि जीव हरि लीन्हा।
सोवत रहा जहाँ सुख साखा, कस न तहाँ सोवत बिधि राखा।
अब जिउ उहाँ इहाँ तन सूना, कब लगि रहे परान बिहूना।
जौ जिउ घटहि काल के हाथा, घटन नीक पै जीउ निसाथा।
अहुठ हाथ तन सरवर, हिया कवँल तेहि माँह।
नैनन्हि जानहु नीयरे, कर पहुँचत औगाह॥
सबन्ह कहा मन समुझहु राजा, काल सेंति कै जूझ न छाजा।
तासौं जूझ जात जो जीता, जात न किरसुन तजि गोपीता।

औ न नेह काहू सौं कीजै, नाँव मिटै काहे जिउ दीजै।
पहिले सुख नेहहिं जब जोरा, पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा।
तुम राजा औ सुखिया, करहु राज सुख भोग।
एहि रे पंथ सो पहुँचै, सहै जो दुक्ख वियोग॥
सुऐ कहा मन बूझहु राजा, करब पिरीत कठिन है काजा।
तुम राजा जेई घर पोई, कवँल न भेंटेउ भेंटेउ कोई।
जानहिं भौंर जौ तेहि पथ लूटे, जीउ दीन्ह औ दिएहु न छूटे।
कठिन आहि सिंघल कर राजू, पाइय नाहिं जूझ कर साजू।
ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी, जोगी जती तपा संन्यासी।
भोग किए जौं पावत भोगू, तजि सो भोग कोइ करत न जोगू।
तुम राजा चाहहु सुख पावा, भोगहि जोग करत नहिं भावा।
साधन्ह सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प।
सो पै जानै बापुरा, करै जो सीस कलप्प॥
का भा जोग कथनि के कथे, निकसै घिउ न बिना दधि मथे।
जौ लहि आप हेराइ न कोई, तौ लहि हेरत पाव न सोई।
पेम पहार कठिन विधि गढ़ा, सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढ़ा।
पंथ सूरि कै उठा अँकूरू, चोर चढ़ै की चढ़ मंसूरू।
तू राजा का पहिरसि कंथा, तोरे घरहिं माँझ दस पंथा।
काम क्रोध तिस्ना मद माया, पाँचौ चोर न छाँड़हिं काया।
नवौ सेंध तिन्ह कै दिठियारा, घर मूसहिं निसि की उजियारा।
अबहूँ जागु अजाना होत आव निसि भोर।
तब किछु हाथ न लागिहि मूसि जाहिं जब चोर॥
सुनि सो बात राजा मन जागा, पलक न मार पेम चित लागा।
नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूँगा, जस गुर खाई रहा होई गूंगा।

हिय कै जोति दीप वह सूझा, यह जो दीप अँधियारा बूझा।
उलटि दीठि माया सौं रूठी, पलटि न फिरी जानि कै झूठी।
जौ पै नाहीं अहथिर दसा, जग उजार का कीजिय बसा।
गुरू बिरह चिनगी जो मेला, जो सुलगाइ लेइ सो चेला।
अब करि फनिग भृंग कै करा, भौंर होहुँ जेहि कारन जरा।
फूल फूल फिरि पूछौं, जौ पहुँचौं ओहि केत।
तन नेवछावरि कै मिलौं, ज्यों मधुकर जिउ देत॥

जोगी खंड

तजा राज राजा भा जोगी, औ किंगरी कर गहेउ बियोगी।
तन बिसँभर मन बाउर लटा, अरुझा पेम परी सिर जटा।
चंद बदन औ चंदन देहा, भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा।
मेखल सिंगी चक्र धँधारी, जोगबाट रुदराछ अधारी।
कंथा पहिरि दंड कर गहा, सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।
मुद्रा स्रवन कंठ जपमाला, कर उदपान काँध बघछाला।
पाँवरि पाँव दीन्ह सिर छाता, खप्पर लीन्ह भेस करि राता।
चला भुगुति माँगै कहँ साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति जेहि कर हिये वियोग॥

नागमती और रतनसेन की माँ बहुत रोईं, पर उसने परवाह न की। उसके साथ सोलह हज़ार कुँवर भी जोगी हो कर चले।

राजा गजपति संवाद खंड, बोहित खंड, सात समुद्र खंड, सिंघल द्वीप खंड

लगभग एक महीना हीरामन के मार्ग-दर्शन में चल कर वे कलिंग में समुद्रतट पर पहुँचे। वहाँ के राजा से जहाज ले कर वे सिंहल द्वीप की ओर चल पड़े। सात समुद्रों को पार कर सिंहल द्वीप पहुँचे।

हीरामन के कहने से राजा ने साथी जोगियों के साथ महादेव के मन्दिर में डेरा लगाया।

मंडप गमन खंड

राजा वाउर विरह बियोगी, चेला सहस तीस संग जोगी।
पदमावति के दरसन आसा, दँडवत कीन्ह मँडप चहुँ पासा।
पुरुब वार होइ कै सिर नावा, नावत सीस देव पहँ आवा।
नमो नमो नारायन देवा, का मैं जोग करौं तोरि सेवा।
तूँ दयाल सब के उपराहीं, सेवा केरि आस तोहि नाहीं।
ना मोहि गुन न जीभ रस बाता, तूँ दयाल गुन निरगुन दाता।
पुरवहु मोरि दरस कै आसा, हौं मारग जोवौं धरि साँसा।
तेहि बिधि बिनै न जानौं जेहि विधि अस्तुति तोरि।
करहु सुदिस्टि मोहिं पर हींछा पूजै मोरि॥

कै अस्तुति जब बहुत मनावा, सबद अकूट मँडप महँ आवा।
मानुष पेम भएउ बैकुंठी, नाहिं त काह छार भरि मूठी।
पेमहिं माँह विरह रस रसा, मैन के घर मधु अमृत बसा।
निसत धाइ जौं मरै त काहा, सत जौं करै बैठि तेहि लाहा।
एक बार जों मन देइ सेवा, सेवहि फल प्रसन्न होइ देवा।
सुनि कै सबद मँडप झनकारा, बैठा आइ पुरुब के बारा।
पिंड चढ़ाइ छार जेति आँटी, माटी भएउ अन्त जो माटी।
माटी मोल न किछु लहै, औ माटी सब मोल।
दिस्टि जौं माटी सौं करै, माटी होइ अमोल॥

बैठ सिंघछाला होइ तपा, पदमावति पदमावति जपा।
दीठि समाधि ओही सौं लागी, जेहि दरसन कारन बैरागी।
किंगरी गहे बजावै झूरै, भोर साँझ सिंगी निति पूरै।

कंथा जरै आगि जनु लाई, बिरह धँधार जरत न बुझाई।
नैन रात निसि मारग जागे, चढ़े चकोर जानि ससि लागे।
कुंडल गहे सीस भुइँ लावा, पाँवरि होउँ जहाँ ओहि पावा।
जटा छोरि कै बार बहारौं, जेहि पथ आव सीस तहँ वारौं।

चारिहु चक्र फिरौं मैं, डँड न रहौं थिर मार।
होइ कै भसम पौन सँग (धावौं) जहाँ परान अधार॥

पदमावती वियोग खंड

पदमावति तेहि जोग सँजोगा, परी प्रेम बस गहे वियोगा।
नींद न परे रैनि जौं आवा, सेज केंवाच जानु कोइ लावा।
दहै चंद औ चंदन चीरू, दगध करै तन बिरह गँभीरू।
कलप समान रैनि तेहि वाढ़ी, तिलतिल भर जुग जुग जिमि गाढ़ी।
गहै वीन मकु रैनि बिहाई, ससि वाहन तब रहै ओनाई।
पुनि धनि सिंघ उरेहै लागै, ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै।
कहँ वह भौंर कवँल रस लेवा, आइ परै होइ घिरिनि परेवा।

से धनि बिरह पतंग भइ, जरा चहै तेहि दीप।
कंत न आव भिरिंग होइ, का चंदन तन लीप॥

पदमावती की विरहावस्था देख धाय ने कारण पूछा। पदमावती ने उत्तर दिया—

परिउँ अथाह धाय हौं, जोबन उदधि गँभीर।
तेहि चितवौं चारिउँ दिसि, जो गहि लावै तीर॥

बिरह नाग होइ सिर चढ़ि डसा, होइ अगिनि चंदन महँ बसा।
जोवन पंखी बिरह बिआधू, केहरि भयउ कुरंगिनि खाधू।

जोवन चाँद उआ जस, बिरह भएउ सँग राहु।
घटतहि घटत छीन भा, कहै न पारौं काहु॥

नैन ज्यों चक्र फिरै चहुँ ओरा, चरचै धाय समाहिं न कोरा।
कहेसि पेम जौं उपना वारी, बाँधु सत्त मन डोल न भारी।
जेहि जिउ महँ होइ सत्त पहारू, परै पहार न बाँकै बारू।
सती जो जरे पेम सत लागी, जौं सत हिएँ तौ सीतल आगी।
जोबन चाँद जो चौदस करा, बिरह के चिनगी सो पुनि जरा।
पौन बाँध सो जोगी जती, काम बाँध सो कामिनि सती।
आव बसंत फूल फुलवारी, देव बार सब जैहैं वारी।
तुम्ह पुनि जाहु बसंत लेइ, पूजि मनावहु देव।
जीउ पाइ जग जनम कै, पीउ पाइ कै सेव॥

पद्मावती सुआ भेंट खंड

तेहि बियोग हीरामन आवा, पदमावति जानहुँ जिउ पावा।
कंठ लाइ सूआ सौं रोई, अधिक मोह जौं मिलै बिछोई।
आगि उठे दुख हिये गँभीरू, नैनहिं आइ चुवा होइ नीरू।
रही रोइ जब पदमिनी रानी, हँसि पूछहिं सब सखी सयानी।
मिले रहस भा चाहिय दूना, कित रोइय जौं मिलै बिछूना।
तेहि क उतर पदमावति कहा, बिछुरन दुख जो हिये भरि रहा।
मिलत हिये आएउ सुख भरा, वह दुख नैन नीर होइ ढरा।
बिछुरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह।
सुक्ख सुहेला उग्गवै दुक्ख झरै जिमि मेह॥
पुनि रानी हँसि कूसल पूछा, कित गवनेहु पींजर कै छूँछा।

हीरामन ने आपबीती सुना कर कहा कि मुझसे तुम्हारा बखान सुन कर रतनसेन जोगी हो कर आया है। फिर पदमावती से बिदा हो कर हीरामन राजा के पास आया। उसने पदमावती का संदेशा कहा और कहा कि श्रीपंचमी के दिन पदमावती देव-पूजन को आवेगी।

बसंत खंड

दैउ दैउ कै सिसिर गँवाई, सिरी पंचमी पहुँची आई।
भएउ हुलास नवल ऋतु माहाँ, खिन न सोहाइ धूप औ छाहाँ।
पदमावति सब सखी हँकारी, जावत सिंघलदीप कै बारी।
आजु बसंत नवल ऋतुराजा, पंचमि होइ जगत सब साजा।
नवल सिंगार बनस्पति कीन्हा, सीस परासहि सेंदुर दीन्हा।
बिगसि फूल फूले बहु बासा, भौंर आइ लुबुधे चहुँ पासा।
पियर पात दुख झरे निपाते, सुख पल्लव उपने होइ राते।

अवधि आइ सो पूजी, जो हींछा मन कीन्ह।
चलहु देवगढ़ गोहने, चहहुँ सो पूजा दीन्ह॥

पदमावती की सखियाँ सजधज कर फूल पत्ते ले कर खेलतीं कूदतीं गातीं बजातीं विश्वनाथ को पूजने चलीं।

एहि बिधि खेलति सिंघलरानी, महादेव मढ़ जाइ तुलानी।
सकल देवता देखै लागे, दिस्टि पाप सब ततछन भागे।
एइ कबिलास इंद्र कै अछरी, की कहुँ तें आईं परमेसरी।
कोई कहै पदमिनी आईं, कोइ कहै ससि नखत तराईं।
कोई कहै फूली फुलवारी, भूलै सबै देखि सब बारी।
एक सुरूप औ सेंदुर सारे, जानहु दिया सकल महि बारे।
मुरुछि परैं जोई मुख जोहैं, जानहु मिरिग दियारहि मोहैं।

कोई परा भौंर होइ, बास लीन्ह जनु चाँप।
कोइ पतंग भा दीपक, कोइ अधजर तन काँप॥

पदमावति गै देव दुवारा, भीतर मँडप कीन्ह पैसारा।
देवहि संसै भा जिउ केरा, भागौं केहि दिसि मंडप घेरा।
एक जोहार कीन्ह औ दूजा, तिसरे आइ चढ़ाएसि पूजा।

फर फूलन्ह सब मँडप भरावा, चंदन अगर देव नहवावा।
लेइ सेंदुर आगे भै खरी, परसि देव पुनि पायन्ह परी।
और सहेली सबै बियाहीं, मो कहँ देव कतहुँ बर नाहीं।
हौं निरगुनि जेइ कीन्ह न सेवा, गुनि निरगुनि दाता तुम देवा।

वर सँजोग मोंहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै बेगि चढ़ावहुं आनि॥

हींछि हींछि बिनवा जस जानी, पुनि कर जोरि ठाढ़ि भइ रानी।
उतरु को देइ देव मरि गएउ, सबद अकूट मँडप महँ भएउ।
काटि पवारा जैस परेवा, सोएउ ईस और को देवा।
भा बिनु जिउ नहिं आवत ओझा, विष भइ पूरि काल भा गोझा।
जो देखै जनु बिसहर डसा, देखि चरित पदमावति हँसा।
भल हम आइ मनावा देवा, गा जनु सोइ को मानै सेवा।
को हींछा पूरै दुख खोवा, जेहि मानै आए सोइ सोवा।
ततखन एक सखी बिहँसानी, कौतुक आइ न देखहु रानी।
पुरुब द्वार मढ़ जोगी छाए, न जानौं कौन देस तें आए।
जनु उन्ह जोग तंत तन खेला, सिद्ध होइ निसरे सब चेला।
उन्ह महँ एक गुरू जो कहावा, जनु गुर दै काहू बौरावा।
कुँवर बतीसौ लच्छन राता, दसएँ लछन कहै एक बाता।
जानौं आहि गोपिचंद जोगी, की सो आहि भरथरी बियोगी।
वै पिंगला गए कजरी आरन, ए सिंघल आए केहि कारन।

यह मूरति यह मुद्रा, हम न देख अवधूत।
जानौं होहिं न जोगी, कोइ राजा कर पूत॥

सुनि सो बात रानी रथ चढ़ी, कहँ अस जोगी देखौं मढ़ी।
लेइ सँग सखी कीन्ह तहँ फेरा, जोगिहि आइ अपछरन्ह घेरा।

नयन कचोर पेम मद भरे, भइ सुदिस्टि जोगी सहुँ ढरे।
जोगी दिस्टि दिस्टि सौं लीन्हा, नैन रोपि नैनहिं जिउ दीन्हा।
जेहि मद चढ़ा परा तेहि पाले, सुधि न रही ओहि एक पियाले।
परा माति गोरख कर चेला, जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ खेला।
किंगरी गहे जो हुत बैरागी, मरतिहु बार उहै धुनि लागी।

जेहि धंधा जाकर मन लागै सपनेहु सूझ सो धंध।
तेहि कारन तपसी तप साधहिं करहिं पेम मन बंध॥

पदमावति जस सुना बखानू, सहस करा देखेसि तस भानू।
मेलेसि चंदन मकु खिन जागा, अधिकौ सूत सीर तन लागा।
तब चंदन आखर हिय लिखे, भीख लेइ तुइ जोग न सिखे।
घरी आइ तब गा तूँ सोई, कैसे भुगुति परापति होई।
अब जौं सूर अहौ ससि राता, आएउ चढ़ि सो गगन पुनि साता।
लिखि कै बात सखिन सौं कही, इहै ठाँव हौं बारति रही।
परगट होहुँ न होइ अस भंगू, जगत दिया कर होइ पतंगू।

जा सहुँ हौं चख हेरौं, सोइ ठाँव जिउ देइ।
एहि दुख कतहुँ न निसरौं, को हत्या असि लेइ॥

कीन्ह पयान सबन्ह रथ हाँका, परबत छाँड़ि सिंघलगढ़ ताका।

....

पदमावति सो मँदिर पईठी, हँसत सिंघासन जाइ बईठी।
निसि सूती सुनि कथा बिहारी, भा बिहान कह सखी हँकारी।
देव पूजि जस आइउँ काली, सपन एक निसि देखिउँ आली।
जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा, औ रबि उदय पछिउँ दिसि कीन्हा।
पुनि चलि सूर चाँद पहँ आवा, चाँद सुरुज दुहुँ भएउ मेरावा।
दिन औ राति भए जनु एका, राम आइ रावन गढ़ छेंका।

तस किछु कहा न जाइ निखेधा, अरजुन वान राहु गा बेधा।
जानहुँ लंक सब लूटी, हनुवँ विधंसी बारि।
जागि उठिउँ अस देखत, सखि कहु सपन विचारि॥
सखी सो बोली सपन विचारू, कालिह जो गइहु देव के वारू।
पूजि मनाइहु बहुतै भाँती, परसन आइ भए तुम्ह राती।
सूरुज पुरुष चाँद तुम रानी, अस बर दैउ मेरावै आनी।
पच्छिउँ खँड कर राजा कोई, सो आवा वर तुम्ह कहँ होई।
किछु पुनि जूझि लागि तुम्ह रामा, रावन सौं होइहि सँगरामा।
चाँद सुरुज सौं होइ बियाहू, ...
जस ऊषा कहँ अनिरुध मिला, मेटि न जाइ लिखा पुरविला।
सुख सोहाग जौ तुम्ह कहँ पान फूल रस भोग।
आजु कालिह भा चाहै अस सपने क सँजोग॥

राजा रतनसेन सती खंड

कै बसंत पदमावति गई, राजहि तब वसंत सुधि भई।
जो जागा न बसंत न वारी, ना वह खेल न खेलनहारी।
ना वह ओहि कर रूप सुहाई, गै हेराइ पुनि दिस्टि न आई।
फूल झरे सूखी फुलवारी, दीठि परी उकठी सब बारी।
केइ यह बसत वसंत उजारा, गा सो चाँद अथवा लेइ तारा।
अब तेहि बिनु जग भा अँधकूपा, वह सुख छाँह जरौं दुख धूपा।
बिरह दवा को जरत सिरावा, को पीतम सौं करै मेरावा।
हिये देख तब चंदन खेवरा मिलि कै लिखा विछोव।
हाथ मींजि सिर धुनि कै रोवै जो निचिंत अस सोव॥

....

अरे मलिछ बिसवासी देवा, कित मैं आइ कीन्ह तोरि सेवा।

आपनि नाव चढ़ै जो देई, सो तौ पार उतारै खेई।
सुफल लागि पग टेकेउँ तोरा, सुआ क सेंवर तू भा मोरा।
पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा, सो ऐसे बूड़ै मँझ धारा।
पाहन सेवा कहाँ पसीजा, जनम न ओद होइ जो भीजा।
बाउर सोइ जो पाहन पूजा, सकत को भार लेइ सिर दूजा।
काहे न पूजिअ सोइ निरासा, मुए जियत मन जाकर आसा।

सिंघ तरेंदा जेइ गहा पार भए तेहि साथ।
ते पै बूड़े बाउरे भेंड़ पूंछि जिन्ह हाथ॥

देव कहा सुनु बउरे राजा, देवहि अगुमन मारा गाजा।
जौं पहिलेहि अपने सिर परई, सो का काहुक धरहरि करई।
पदमावति राजा कै बारी, आइ सखिन्ह सह बदन उघारी।
जैस चाँद गोहने सब तारा, परेउँ भुलाइ देखि उजियारा।
चमकहिं दसन बीजु कै नाईं, नैन चक्र जमकात भवाईं।
हौं तेहि दीप पतंग होइ परा, जिउ जम काढ़ि सरग लेइ धरा।
बहुरि न जानौं दहुँ का भई, दहुँ कविलास कि कहुँ अपसई।

अब हौं मरौं निसाँसी, हिये न आवै साँस।
रोगिया की को चालै, बैदहि जहाँ उपास॥

आनहिं दोस देहुँ का काहू, संगी कया मया नहिं ताहू।
हता पियारा मीत बिछोई, साथ न लाग आपु गै सोई।
का मैं कीन्ह जो काया पोषी, दूषन मोहिं आप निरदोषी।
फागु बसंत खेलि गइ गोरी, मोहि तन लाइ बिरह कै होरी।
अब अस कहाँ छार सिर मेलौं, छार जो होहुँ फाग तब खेलौं।
कित तप कीन्ह छाँड़ि कै राजू, गएउ अहार न भा सिध काजू।
पाएउ नहिं होइ जोगी जती, अब सर चढ़ौं जरौं जस सती।

आइ जो पीतम फिरि गा, मिला न आइ बसंत।
अब तन होरी घालि कै, जारि करौं भसमंत॥

ककनू पंखि जैस सर साजा, तस सर साजि जरा चह राजा।
सकल देवता आइ तुलाने, दहुँ का होइ देव असथाने।
बिरह आगि बज्रागि असूझा, जरै सूर न बुझाए बूझा।
तेहि के जरत जो उठै बजागी, तिनउँ लोक जरैं तेहि लागी।
अबहि कि घरी सो चिनगी छूटै, जरहिं पहार पहन सब फूटै।
देवता सबै भसम होइ जाहीं, छार समेटे पाउब नाहीं।
धरती सरग होइ सब ताता, है कोई एहि राख विधाता।

मुहमद चिनगी पेम कै, सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया, तहँ अस अगिनि समाइ॥

हनुवँत बीर लंक जेइ जारी, परवत उहै अहा रखवारी।
बैठि तहाँ होइ लंका ताका, छठएँ मास देइ उठि हाँका।
तेहि कै आगि उहौ पुनि जरा, लंका छाड़ि पलंका परा।
जाइ तहाँ वै कहा सँदेसू, पारबती औ जहाँ महेसू।
जोगी आहि बियोगी कोई, तुम्हरे मँडप आगि तेइ बोई।
जरा लँगूर सु राता उहाँ, निकसि जो भागि भएउँ करमुहाँ।
तेहि बज्रागि जरै हौं लागा, बजरअंग जरतहि उठि भागा।

रावन लंका हौं दही, वह हौं दाहै आव।
गए पहार सब औटि कै, को राखै गहि पाव॥

पार्वती महेश खंड

ततखन पहुंचे आइ महेसू, बाहन बैल कुस्टि कर भेसू।
काथरि कया हड़ावरि बाँधे, मुंड-माल औ हत्या काँधे।
सेसनाग जाके कँठमाला, तनु भभूति हस्ती कर छाला।

पहुंची रुद्र कवँल कै गटा, ससि माथे औ सुरसरि जटा।
चँवर घंट औ डँवरू हाथा, गौरा पारबती धनि साथा।
औ हनुवंत बीर सँग आवा, धरे भेस बाँदर जस छावा।
अवतहि कहेन्हि न लावहु आगी, तेहि कै सपथ जरहु जेहि लागी।
की तप करै न पारेहु, की रे नसाएहु जोग।
जियत जीउ कस काढ़हु, कहहु सो मोहिं बियोग॥
कहेसि मोहिं बातन्ह बिलमावा, हत्या केरि न डर तोहि आवा।
जरै देहु दुख जरौं अपारा, निस्तर पाइ जाउँ एक वारा।
जस भरथरी लागि पिंगला, मो कहँ पदमावति सिंघला।
मैं पुनि तजा राज औ भोगू, सुनि सो नावँ लीन्ह तप जोगू।
एहि मढ़ सेएउँ आइ निरासा, गइ सो पूजि मन पूजि न आसा।
मैं यह जिउ डाढ़े पर दाधा, आधा निकसि रहा घट आधा।
जो अधजर सो बिलँब न आवा, करत बिलंब बहुत दुख पावा।
एतना बोल कहत मुख, उठी बिरह कै आगि।
जौं महेस न बुझावत, जाति सकल जग लागि॥
पारबती मन उपना चाऊ, देखौं कुँवर केर सत भाऊ।
ओहि एहि बीच की पेमहि पूजा, तन मन एक कि मारग दूजा।
भइ सुरूप जानहुँ अपछरा, बिहँसि कुँवर कर आँचर धरा।
सुनहुँ कुँवर मोसौं एक बाता, जस रँग मोर न औरहि राता।
औ बिधि रूप दीन्ह है तोकाँ, उठा सो सबद जाइ सिव लोका।
तब हौं तोपहँ इंद्र पठाई, गइ पदमिनि तैं अछरी पाई।
अब तजु जरन मरन तप जोगू, मोसौं मानु जनम भरि भोगू।
हौं अछरी कबिलास कै जेहि सरि पूज न कोइ।
मोहि तजि सँवरि जो ओहि मरसि कौन लाभ तेहि होइ॥

भलेहि रंग अछरी तोर राता, मोहि दूसरे सौं भाव न बाता।
मोहि ओहि सँवरि मुए तस लाहा, नैन जो देखसि पूछसि काहा।
अबहि ताहि जिउ देइ न पावा, तोहि असि अछरी ठाढ़ि मनावा।
जौं जिउ देइहौं ओहि कै आसा, न जनौं काह होइ कबिलासा।
हौं कबिलास काह लै करऊँ, सोइ कबिलास लागि जेहि मरऊँ।
ओहि के बार जीवनहि बारौं, सिर उतारि नेवछावरि सारौं।
ताकरि चाह कहै जो आई, दोउ जगत तेहि देहुँ बड़ाई।
ओहि न मोरि किछु आसा, हौं ओहि आस करेउँ।
तेहि निरास पीतम कहँ, जिउ न देउँ का देउँ॥

गौरइ हँसि महेस सौं कहा, निहचै एहि बिरहानल दहा।
निहचै यह ओहि कारन तपा, परिमल पेम न आछै छपा।
निहचै पेम पीर यह जागा, कसे कसौटी कंचन लागा।
बदन पियर जल डभकहिं नैना, परगट दुवौ पेम के बैना।
यह एहि जनम लागि ओहि सीझा, चहै न औरहि ओही रीझा।
महादेव देवन्ह के पिता, तुम्हरी सरन राम रन जिता।
एहू कहँ तस मया करेहू, पुरवहु आस कि हत्या लेहू।
हत्या दुइ के चढ़ाए, काँधे बहु अपराध।
तीसर यह लेउ माथे, जौ लेवै कै साध॥

सुनि कै महादेव कै भाखा, सिद्धि पुरुष राजै मन लाखा।
सिद्धहि अंग न बैठे माखी, सिद्ध पलक नहि लावै आँखी।
सिद्धहि संग होइ नहि छाया, सिद्धहि होइ भूख नहि माया।
जेहि जग सिद्ध गोसाईं कीन्हा, परगट गुपुत रहै को चीन्हा।
बैल चढ़ा कुस्टी कर भेसू, गिरजापति सत आहि महेसू।
चीन्है सोइ रहै जो खोजा, जस बिक्रम औ राजा भोजा।

जो ओहि तंत मंत सौं हेरा, गएउ हेराइ जो ओहि भा मेरा।
बिनु गुरु पंथ न पाइय, भूलै सो जो मेट।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सौं भेंट॥

ततखन रतनसेन गहबरा, छाँड़ि डफार पाँव लेइ परा।
मातैं पितैं जनम कित पाला, जो अस फाँद पेम गिउ घाला।
धरती सरग मिले हुत दोऊ, केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ।
पदिक पदारथ कर हुंत खोवा, टूटहिं रतन रतन तस रोवा।
गगन मेघ जस बरसै भला, पुहुमी पूरि सलिल बहि चला।
सायर टूट सिखर गा पाटा, सूझ न बार पार कहुँ घाटा।
पौन पानि होइ होइ सब गिरई, पेम के फंद कोइ जनि परई।
तस रोवै जस जिउ जरै, गिरे रकत औ माँसु।
रोवँ रोवँ सब रोवहिं, सूत सूत भरि आँसु॥

रोवत बूड़ि उठा संसारू, महादेव तब भएउ मयारू।
कहेन्हि न रोव बहुत तैं रोवा, अब ईसर भा दारिद खोवा।
जो दुख सहै होइ सुख ओकाँ, दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोका।
अब तैं सिद्ध भएसि सिधि पाई, दरपन कया छूटि गई काई।
कहौं बात अब हौं उपदेसी, लागु पंथ भूले परदेसी।
जौं लगि चोर सेंधि नहि देई, राजा केरि न मूसै पेई।
चढ़ें त जाइ बार ओहि खूँदी, परै त सेंधि सीस-बल मूँदी।
कहौं सो तोहि सिंहलगढ़ है खँड सात चढ़ाव।
फिरा न कोई जियत जिउ सरग पंथ देइ पाव॥

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया, परखि देखु ओही कै छाया।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे, जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मँझियारा, औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।

दसवँ दुआर गुपुत एक ताका, अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँका।
भेदी कोइ जाइ ओही घाटी, जो लहि भेद चढ़ै होइ चाँटी।
गढ़ तर कुंड सुरंग तेहि माहाँ, तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाहाँ।
चोर बैठ जस सेंधि सँवारी, जुआ पैंत जस लाव जुवारी।

जस मरजिया समुद धँस हाथ आव तब सीप।
ढूंढि लेइ जो सरग दुआरी चढ़ै सो सिंघलदीप॥

दसवँ दुआर ताल कै लेखा, उलटि दिस्टि जो लाव सों देखा।
जाइ सो तहाँ साँस मन बंधी, जस धँसि लीन्ह कान्ह कालिंदी।
तू मन नाथु मारि कै साँसा, जो पै मरहि आपहिं करु नासा।
परगट लोकचार कहु बाता, गुपुत लाउ मन जासौं राता।
हौं हौं कहत मंत सब कोई, जौं तू नाहिं आहि सब सोई।
जियतहि जो रे मरै एक बारा, पुनि का मीचु को मारै पारा।
आपुहि गुरू सो आपुहि चेला, आपुहि सब औ आपु अकेला।

आपुहि मीच जियन पुनि, आपुहि तन मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहै, कहाँ सो दूसर कोइ॥

राजा गढ़ छेंका खंड

सिधि गुटिका राजै जब पावा, पुनि भइ सिद्धि गनेस मनावा।
जब संकर सिधि दीन्ह गुटेका, परी हूल जोगिन्ह गढ़ छेंका।
सबै पदमिनी देखहिं चढ़ी, सिंघल छेंकि उठा होइ मढ़ी।
जस घर भरे चोर मत कीन्हा, तेहि बिधि सेंधि चाह गढ़ दीन्हा।
गुपुत चोर जो रहै सो साँचा, परगट होइ जीउ नहिं बाँचा।
पौरि पौरि गढ़ लाग केवारा, औ राजा सौं भई पुकारा।
जोगी आइ छेंकि गढ़ मेला, न जनौं कौन देस तें खेला।

भएउ रजायसु देखौ को भिखारि अस ढीठ।
बेगि बरज तेहि आवहु जन दुइ पठैं बसीठ॥
उतरि बसीठन्ह आइ जोहारे, की तुम जोगी की बनिजारे।
भएउ रजायसु आगे खेलहु, गढ़ तर छाँड़ि अनत होइ मेलहु।
अस लागेहु केहि के सिख दीन्हें, आएहु मरै हाथ जिउ लीन्हे।
इहाँ इंद्र अस राजा तपा, जबहिं रिसाई सूर डरि छपा।
हौ बनिजार तौ बनिज बेसाहौ, भरि बैपार लेहु जो चाहौ।
हौ जोगी तौ जुगुति सौं माँगहु, भुगुति लेहु लै मारग लागहु।
इहाँ देवता अस गए हारी, तुम्ह पतिंग को अहौ भिखारी।
तुम्ह जोगी बैरागी, कहत न मानहु कोहु।
लेहु माँगि किछु भिच्छा, खेलि अनत कहुँ होहु॥
अनु जो भीखि हौं आएउँ लेई, कस न लेउँ जौं राजा देई।
पदमावति राजा कै बारी, हौं जोगी ओहि लागि भिखारी।
खप्पर लेइ बार भा माँगौं, भुगुति देइ लेइ मारग लागौं।
सोई भुगुति परापति भूजा, कहाँ जाउँ अस बार न दूजा।
अब धर इहाँ जीउ ओहि ठाऊँ, भसम होउँ बरु तजौं न नाऊँ।
जस बिनु प्रान पिंड है छूँछा, धरम लाइ कहिहौ जो पूछा।
तुम्ह बसीठ राजा के ओरा, साखी होहु एहि भीख निहोरा।
जोगी बार आव सो जेहि भिच्छा कै आस।
जो निरास दिढ़ आसन कित गौने केहु पास॥
सुनि बसीठ मन उपनी रीसा, जौ पीसत घुन जाइहि पीसा।
जोगी अस कहुँ कहै न कोई, सो कहु बात जोग जो होई।
वह बड़ राज इंद्र कर पाटा, धरती परा सरग को चाटा।
जौं यह बात जाइ तहँ चली, छूटहिं अबहिं हस्ति सिंघली।

औ जौं छुटहिं बज्र कर गोटा, बिसरिहि भुगुति होइ सब रोटा।
जहँ केहु दिस्टि न जाइ पसारी, तहाँ पसारसि हाथ भिखारी।
आगे देखि पाँव धरु नाथा, तहाँ न हेरु टूट जहँ माथा।
वह रानी तेहि जोग है, जाहि राज औ पाटु।
सुंदर जाइहि राजघर, जोगिहि बाँदर काटु॥
जौं जोगी सत बाँदर काटा, एकै जोग न दूसरि बाटा।
और साधना आवै साधे, जोग साधना आपुहि दाधे।
सरि पहुँचाव जोगि कर साथू, दिस्टि चाहि अगमन होइ हाथू।
तुम्हरे जोर सिंघल के हाथी, हमरे हस्ति गुरू हैं साथी।
अस्ति नास्ति ओहि करत न वारा, परबत करै पाँव कै छारा।
जोर गिरे गढ़ जावत भए, जे गढ़ गरब करहिं ते नए।
अंत क चलना कोइ न चीन्हा, जो आवा सो आपन कीन्हा।
जोगिहि कोह न चाहिय, तस न मोहिं रिस लागि।
जोग तंत ज्यों पानी, काह करै तेहि आगि॥
बसिठन्ह जाइ कही अस बाता, राजा सुनत कोह भा राता।
ठावहिं ठाँव कुँवर सब माखे, केइ अब लीन्ह जोग केइ राखे।
अबहीं बेगिहि करो सँजोऊ, तस मारहु हत्या नहिं होऊ।
मंत्रिन्ह कहा रहौ मन बूझे, पति न होइ जोगिन्ह सौं जूझे।
ओहि मारे तो काह भिखारी, लाज होइ जौं माना हारी।
ना भल मुए न मारे मोखू, दुवौ बात लागै सम दोखू।
रहै देहु जौं गढ़ तर मेले, जोगी कित आछैं बिनु खेले।
आछैं देहु जो गढ़ तरे, जनि चालहु यह बात।
तहँ जो पाहन भख करहिं, अस केहिके मुख दाँत॥

दूत कई दिन लौट कर न आये तो रतनसेन ने पदमावती के नाम

प्रेम-संदेश लिख कर हीरामन को दिया और कहा—

औ मुख वचन सो कहेसु परेवा, पहिले मोरि बहुत कै सेवा।
पुनि सँवराइ कहेसु अस दूजी, जो बलि दीन्ह देवतन्ह पूजी।
सो अवहीं तुम्ह सेव न लागा, बलि जिउ रहा न तन सो जागा।
भलेहि ईस हू तुम्ह बलि दीन्हा, जहँ तुम्ह तहाँ भाव बलि कीन्हा।
जौ तुम्ह मया कीन्ह पगु धारा, दिस्टि देखाइ वान-बिष मारा।
जो जाकर अस आसामुखी, दुख महँ ऐस न मारै दुखी।
नैन भिखारि न मानहिं सीखा, अगमन दौरि लेहिं पै भीखा।

नैनहिं नैन बेधि गए नहिं निकसैं वै बान।
हिये जो आखर तुम्ह लिखे ते सुठि लीन्ह परान॥

ते बिष-बान लिखौं कहँ ताईं, रकत जो चुआ भीजि दुनियाईं।
जान जो गारै रकत पसेऊ, सुखी न जान दुखी कर भेऊ।
जेहि न पीर तेहिं काकरि चिंता, पीतम निठुर होइँ अस निंता।
कासौं कहौं बिरह कै भाखा, जासौं कहौं होइ जरि राखा।
बिरह आगि तन बन बन जरे, नैन नीर सब सायर भरे।
पाती लिखी सँवरि तुम्ह नावां, रकत लिखे आखर भए सावाँ।
आखर जरहिं न काहू छूआ, तब दुख देखि चला लेइ सूआ।

अब सुठि मरौं छूछि गइ (पाती) पेम पियारे हाथ।
भेंट होत दुख रोइ सुनावत जीउ जात जौं साथ॥

कंचन तार बाँधि गिउ पाती, लेइ गा सुआ जहाँ धनि राती।
जैसे कवँल सूर के आसा, नीर कंठ लहि मरत पियासा।
बिसरा भोग सेज सुख वासा, जहाँ भौंर सब तहाँ हुलासा।
तौ लगि घोर सुना नहिं पीऊ, सुना त घरी रहै नहिं जीऊ।
तौ लगि सुख हिय पेम न जाना, जहाँ पेम कत सुख बिसरामा।

अगर चँदन सुठि दहै सरीरू, औ भा अगिनि कया कर चीरू।
कथा कहानी सुनि जिउ जरा, जानहुँ घीउ बसंदर परा।
बिरह न आपु सँवारै मैल चीर सिर रूख।
पिउ पिउ करत राति दिन जस पपिहा मुख सूख॥
ततखन गा हीरामन आई, मरत पियास छाँह जनु पाई।
भल तुम्ह सुआ कीन्ह है फेरा, गाढ़ न जाइ पिरीतम केरा।
बातन्ह जानहु बिखम पहारू, हिरदै मिला न होइ निनारू।
मरम पानि कर जान पियासा, जो जल महँ ता कहँ का आसा।
का रानी यह पूछहु बाता, जिनि कोइ होइ पेम कर राता।
तुम्हरे दरसन लागि बियोगी, अहा सो महादेव मठ जोगी।
तुम्ह बसंत लेइ तहाँ सिधाईं, देव पूजि पुनि ओहि पहँ आईं।
दिस्टि बान तस मारेहु, घायल भा तेहि ठाँव।
दूसरि बात न बोलै, लेइ पदमावति नाँव॥
रोवँ रोवँ वै बान जो फूटे, सूतहि सूत रुहिर मुख छूटे।
नैनहिं चली रकत कै धारा, कंथा भीजि भएउ रतनारा।
सूरुज बूड़ि उठा परभाता, औ मजीठ टेसू बन राता।
भा बसंत रातीं बनसपती, औ राते सब जोगी जती।
पुहुमि जो भीजि भएउ सब गेरू, औ राते तहँ पंखि पखेरू।
राती सती अगिनि सब काया, गगन मेघ राते तेहि छाया।
ईंगुर भा पहार जौं भीजा, पै तुम्हार नहिं रोवँ पसीजा।
तहाँ चकोर कोकिला, तिन्ह हिय मया पईठि।
नैन रकत भरि आए तुम्ह फिरि कीन्ह न दीठि॥
ऐस बसंत तुमहिं पै खेलहु, रकत पराए सेंदुर मेलहु।
तुम्ह तौ खेलि मँदिर महँ आईं, ओहि क मरम पै जान गोसाईं।

कहेसि जरै को बारहि बारा, एकहि बार होहुं जरि छारा।
सर रचि चहा आगि जो लाई, महादेव गौरी सुधि पाई।
आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ, मरन खेल कर आगम जहाँ।
उलटा पंथ पेम के बारा, चढ़ै सरग जौ परै पतारा।
अब धँसि लीन्ह चहै तेहि आसा, पावै साँस कि मरै निसाँसा।

पाती लिखि सो पठाई, इहै सबै दुख रोइ।
दहुँ जिउ रहै कि निसरै, काह रजायसु होइ॥

कहि कै सुआ जो छोड़ेसि पाती, जानहु दीप छुवत तस ताती।
गीउ जो बाँधा कंचन तागा, राता साँव कंठ जरि लागा।
अगिनि साँस सँग निसरै ताती, तरुवर जरहिं ताहि कै पाती।
रोइ रोइ सुआ कहै सो बाता, रकत कै आँसु भएउ मुख राता।
देख कंठ जरि लाग सो गेरा, सो कस जरै बिरह अस घेरा।
जरि जरि हाड़ भयउ सब चूना, तहाँ मासु का रकत बिहूना।
वह तोहि लागि कया सब जारी, तपत मीन जल देहि पवारी।

तोहि कारन वह जोगी, भसम कीन्ह तन दाह।
तू असि निठुर निछोही, बात न पूछै ताहि॥

कहेसि सुआ मोसौं सुनु बाता, चहौं तो आज मिलौं जस राता।
पै सो मरम न जाना भोरा, जानै प्रीति जो मरि कै जोरा।
हौं जानति हौं अबही काँचा, ना वह प्रीति रंग थिर राँचा।
ना वह भएउ मलयगिरि बासा, ना वह रवि होइ चढ़ा अकासा।
ना वह करा भृंग कै होई, ना वह आपु मरा जिउ खोई।
ना वह प्रेम औटि एक भएऊ, ना ओहि हिये माँझ डर गयऊ।

तेहि का कहिय रहब जिउ रहै जो पीतम लागि।
जहँ वह सुनै लेइ धँसि का पानी का आगि॥

पुनि धनि कनक पानि मसि माँगी, उतर लिखत भीजी तन आँगी।
तस कंचन कहँ चहिय सोहागा, जौं निरमल नग होइ तौ लागा।
हौं जो गई सिव-मंडप भोरी, तहँवाँ कस न गाँठि तैं जोरी।
भा बिसँभार देखि कै नैना, सखिन्ह लाज का बोलौं बैना।
खेलहिं मिस मैं चंदन घाला, मकु जागसि तौं देउँ जयमाला।
तबहुँ न जागा गा तू सोई, जागे भेंट न सोए होई।
अब जौं सूर होइ चढ़ै अकासा, जौं जिउ देइ त आवै पासा।

तौ लगि भुगुति न लेइ सका रावन सिय जब साथ।
कौन भरोसे अब कहौं जीउ पराए हाथ॥

अब जौं सूर गगन चढ़ि आवै, राहु होइ तौ ससि कहँ पावै।
बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला, तू जोगी कित आहि अकेला।
बिक्रम धँसा प्रेम के बारा, सपनावति कहँ गएउ पतारा।
मधूपाछ मुगुधावति लागी, गगनपूर होइगा बैरागी।
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ, मिरगावति कहँ जोगी भएऊ।
साध कुँवर खंडावत जोगू, मधुमालति कर कीन्ह बियोगू।
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा, ऊषा लगि अनिरुध बर बाँधा।

हौं रानी पदमावती, सात सरग पर बास।
हाथ चढ़ौं मैं तेहिके, प्रथम करै अपनास॥

हौं पुनि इहाँ ऐस तोहि राती, आधी भेंट पिरीतम पाती।
तहुँ जौ प्रीति निबाहै आँटा, भौंर न देख केत कर काँटा।
होइ पतंग अधरन्हु गहु दीया, लेसि समुद धँसि होइ मरजीया।
रातु रंग जिमि दीपक बाती, नैन लाउ होइ सीप सेवाती।
चातक होइ पुकारु पियासा, पीउ न पानि सेवाति कै आसा।
सारस कर जस बिछुरी जोरी, रैनि होहु जस चक्क चकोरी।

होहु चकोर दिस्टि ससि पाहाँ, औ रबि होहु कँवलदल माहाँ।
महुँ ऐसै होउँ तोहि कहँ, सकहि तौ ओर निबाहु।
राहु बेधि होइ अरजुन जीति दुरपदी व्याहु॥

राजा इहाँ ऐस तप झूरा, भा जरि बिरह छार कर कूरा।
नैन लाइ सो गएउ बिमोही, भा बिनु जिउ जिउ दीन्हेसि ओही।
कहाँ पिंगला सुखमन नारी, सूनि समाधि लागि गइ तारी।
बूँद समुद्र जैस होइ मेरा, गा हेराइ अस मिलै न हेरा।
रंगहि पानि मिला जस होई, आपहि खोइ रहा होइ सोई।
सुऐ जाइ जब देखा तासू, नैन रकत भरि आए आँसू।
सदा पिरीतम गाढ़ करेई, ओहि न भुलाइ भूलि जिउ देई।
मूरि सँजीवनि आनि कै औ मुख मेला नीर।
गरुड़ पंख जस झारै अमृत बरसा कीर॥

मुआ जिया अस बास जो पावा, लीन्हेसि साँस पेट जिउ आवा।
देखेसि जागि सुआ सिर नावा, पाती देइ मुख बचन सुनावा।
गुरू क बचन स्रवन दुइ मेला, कीन्हि सुदिस्टि बेगु चलु चेला।
तोहि अलि कीन्ह आप भइ केवा, हौं पठवा गुरु बीच परेवा।
पौन साँस तोसौं मन लाई, जोवै मारग दिस्टि बिछाई।
जस तुम्ह कया कीन्ह अगि दाहू, सो सब गुरु कहँ भएउ अगाहू।
तब उदंत छाला लिखि दीन्हा, बेगि आउ चाहै सिध कीन्हा।
आवहु सामि सुलच्छना, जीउ बसै तुम्ह नावँ।
नैनहिं भीतर पंथ है, हिरदय भीतर ठाँव॥

सुनि पदमावति कै असि मया, भा बसंत उपनी नइ कया।
सुआ क बोल पौन होइ लागा, उठा सोइ हनुवँत अस जागा।
चाँद मिलै कै दीन्हेसि आसा, सहसौ कला सूर परगासा।

पाति लीन्हि लेइ सीस चढ़ावा, दीठि चकोर चंद जस पावा।
आस पियासा जो जेहि केरा, जौं झिझकार ओहि सहुँ हेरा।
अब यह कौन पानि मैं पीया, भा तन पाख पतँग मरि जीया।
उठा फूलि हिरदय न समाना, कंथा टूक टूक बेहराना।
जहाँ पिरीतम वै बसहिं यह जिउ बलि तेहि बाट।
वह जो बोलावै पाँव सौं हौं तहँ चलौं लिलाट॥
जो पथ मिला महेसहि सेई, गएउ समुद ओहि धँसि लेई।
जहँ वह कुंड विषम औगाहा, जाइ परा तहँ पाव न थाहा।
बाउर अंध पेम कर लागू, सौहँ धँसा किछु सूझ न आगू।
लीन्हे सिधि साँसा मन मारा, गुरू मछंदरनाथ सँभारा।
चेला परे न छाँड़हि पाछू, चेला मच्छ गुरू जस काछू।
जस धँसि लीन्ह समुद मरजीया, उघरे नैन बरै जस दीया।
खोजि लीन्ह सो सरग दुआरा, बज्र जो मूँदे जाइ उघारा।
बाँक चढ़ाव सरग गढ़, चढ़त गएउ होइ भोर।
भइ पुकार गढ़ ऊपर, चढ़े सेंधि देइ चोर॥

गंधर्वसेन मंत्री खंड

राजा गंधर्वसेन ने सुना कि चोर सेंध लगा कर गढ़ में चढ़ आये हैं तो उसने मंत्रियों से परामर्श कर के उन्हें सूली देने का निश्चय किया। राजा की सेना जोगियों को पकड़ने चली। सेना को देख कर रतनसेन के सोलह हज़ार साथियों ने लड़ने की अनुमति माँगी—

गुरू केर जौं आयसु पावहिं, सौंह होहिं औ चक्र चलावहिं।
आजु करहिं रन भारत, सत वाचा देइ राखि।
सत्य देख सब कौतुक, सत्य भरै पुनि साखि॥
गुरू कहा चेला सिध होहू, पेम बार होइ करहु न कोहू।

जाकहँ सीस नाइ के दीजै, रंग न होइ ऊभ जौ कीजै।
जेहि जिउ पेम पानि भा सोई, जेहि रँग मिलै ओहि रँग होई।
जौ पै जाई पेम सौं जूझा, कित तपि मरहिं सिद्ध जो बूझा।
यह सत बहुत जो जूझ न करिए, खड़ग देखि पानी होइ ढरिए।
पानिहि काह खड़ग कै धारा, लौटि पानि होइ सोइ जो मारा।
पानी सेंती आगि का करई, जाइ बुझाइ जौ पानी परई।

सीस दीन्ह मैं अगमन पेम पाय सिर मेलि।
अब सो प्रीति निबाहौं चलौं सिद्ध होइ खेलि॥

राजै छेंकि धरे सब जोगी, दुख ऊपर दुख सहै बियोगी।
ना जिउ धरक धरत होइ कोई, नाहीं मरन जियन डर होई।
नाग फाँस उन्ह मेला गीवा, हरख न बिसमौ एकौ जीवा।
जेइ जिउ दीन्ह सो लेइ निरासा, बिसरै नहिं जौ लहि तन साँसा।
कर किंगरी तेहि तंतु बजावै, इहै गीत बैरागी गावै।
भलेहि आनि गिउ मेली फाँसी, है न सोच हिय रिस सब नासी।
मैं गिउ फाँद ओहि दिन मेला, जेहि दिन पेम पंथ होइ खेला।

परगट गुपुत सकल महँ पूरि रहा सो नावँ।
जहँ देखौं तहँ ओही, दूसर नहिं जहँ जावँ॥

जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा, कोटि अँतरपट बीचहि दीन्हा।
जब चीन्हा तब और न कोई, तन मन जिउ जोबन सब सोई।
हौं हौं करत धोख अँतराहीं, जौ भा सिद्ध कहाँ परछाहीं।
मारै गुरू कि गुरू जियावै, और को मार मरै सब आवै।
सूरी मेलु हस्ति करु चूरू, हौं नहिं जानौं जानै गूरू।
गुरू हस्ति पर चढ़ा सो पेखा, जगत जो नास्ति नास्ति पै देखा।
अंध मीन जस जल महँ धावा, जल जीवन चल दिस्टि न आवा।

गुरु मोरे मोरे हिये, दिए तुरंगम ठाठ।
भीतर करहिं डोलावै, बाहर नाचै काठ॥

सो पदमावति गुरु हौं चेला, जोग तंत जेहि कारन खेला।
तजि वह बार न जानौं दूजा, जेहि दिन मिलै जातरा पूजा।
जीउ काढ़ि भुइँ धरौं लिलाटा, ओहि कहँ देउँ हिये महँ पाटा।
को मोहिं ओहि छुआवै पाया, नव अवतार देइ नइ काया।
जीउ चाहि जो अधिक पियारी, माँगै जीउ देउँ बलिहारी।
माँगै सीस देउँ सह गीवा, अधिक तरौं जौं मारै जीवा।
अपने जिउ कर लोभ न मोहीं, पेम बार होइ माँगौं ओही।

दरसन ओहि कर दिया जस हौं सो भिखारि पतंग।
जो करवत सिर सारै भरत न मोरौं अंग॥

पदमावति कँवला ससि जोती, हँसै फूल रोवै सब मोती।
बरजा पितै हँसी औ रोजू, लाई दूति होइ निति खोजू।
जबहिं सुरुज कहँ लागा राहू, तबहिं कँवल मन भएउ अगाहू।
बिरह अगस्त जो बिसमौ उएऊ, सरवर हरष सूखि सब गएऊ।
परगट ढारि सकै नहिं आँसू, घटि घटि माँसु गुपुत होइ नासू।
जस दिन माँझ रैनि होइ आई, बिगसत कँवल गएउ मुरझाई।
राता बदन गएउ होइ सेता, भँवत भँवर रहि गए अचेता।

चितहि जो चित्र कीन्ह धनि रोवँ रोवँ रंग समेटि।
सहस साल दुख आहि भरि मुरुछि परी गा मेटि॥

पदमावति सँग सखी सयानी, गुनि कै नखत पीर ससि जानी।
जानहिं मरम कँवल कर कोई, देखि बिथा बिरहिन कै रोई।

कैसहु बिरह न छाँड़ै, भा ससि गहन गरास।
नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अंधर धरति अकास॥

घरी चारि इमि गहन गरासी, पुनि विधि हिये जोति परगासी।
निसँस ऊभि भरि लीन्हेसि साँसा, भा अधार जीवन कै आसा।
बिनवहिं सखी छूट ससि राहू, तुम्हरी जोति जोति सब काहू।
तू ससि बदन जगत उजियारी, केइ हरि लीन्ह कीन्ह अँधियारी।
कँवल कली तू पदमिनि गइ निसि भयउ विहान।
अबहुँ न संपुट खोलसि जब रे उआ जग भानु॥

भानु नावँ सुनि कँवल बिगासा, फिरि कै भौंर लीन्ह मधु बासा।
सरद चंद मुख जबहिं उघेली, खंजन नैन उठे करि केली।
बिरह न बोल आव मुख ताईं, मरि मरि बोल जीउ बरियाईं।
दवैं बिरह दारुन हिय काँपा, खोलि न जाइ बिरह दुख झाँपा।
उदधि समुद जस तरँग देखावा, चख घूमहिं मुख बात न आवा।
यह सुनि लहरि लहरि पर धावा, भँवर परा जिउ थाह न पावा।
सखी आनि विष देहु तौ मरऊँ, जिउ न पियार मरै का डरऊँ।
खिनहिं उठै खिन बूड़ै अस हिय कँवल सँकेत।
हीरामनहिं बुलावहि सखी गहन जिउ लेत॥

चेरी धाय सुनत खिन धाई, हीरामन लेइ आइ बोलाई।
जनहुँ बैद ओषद लेइ आवा, रोगिया रोग मरत जिउ पावा।
सुनत असीस नैन धनि खोले, बिरह बैन कोकिल जिमि बोले।
कँवलहिं बिरह बिथा जस बाढ़ी, केसर बरन पियर हिय गाढ़ी।
कित कँवलहि भा पेम अँकूरू, जो पै गहन लेहि दिन सूरू।
पुरइनि छाँह कवल कै करी, सकल बिथा सुनि आस तुम हरी।
पुरुष गंभीर न बोलहिं काहू, जो बोलहिं तौ और निवाहू।
एतनै बोल कहत मुख पुनि होइ गई अचेत।
पुनि को चेत सँभारै उहै कहत मुख सेत॥

हीरामन जौ देखेसि नारी, प्रीति बेल उपनी हिय बारी।
कहेसि कस न तुम्ह होहु दुहेली, अरुझी पेम जो पीतम बेली।
प्रीति बेलि जिनि अरुझै कोई, अरुझे मुए न छूटै सोई।
प्रीति बेलि ऐसै तन डाढ़ा, पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।
प्रीति बेलि कै अमर को बोई, दिन दिन बढ़ै छीन नहिं होई।
प्रीति बेलि संग बिरह अपारा, सरग पतार जरै तेहि झारा।
प्रीति अकेलि वेलि चढ़ि छावा, दूसर बेलि न सँचरै पावा।

प्रीति बेलि अरुझै जब तब सुछाँह सुख साख।
मिलै पीरीतम आइ कै दाख वेलि रस चाख॥

पदमावति उठि टेकै पाया, तुम्ह हुँत देखौं पीतम छाया।
कहत लाज औ रहै न जोऊ, एक दिसि आगि दुसर दिसि पीऊ।
सूर उदयगिरि चढ़त भुलाना, गहनै गहा कँवल कुँभिलाना।
ओहट होइ मरौं तौ झूरी, यह सुधि मरौं जो नियर न दूरी।
घट महँ निकट विकट होइ मेरू, मिलहि न मिले परा तस फेरू।
तुम्ह सो मोर खेवक गुरु देवा, उतरौं पार तेही विधि खेवा।
दमनहिं नलहिं जो हंस मेरावा, तुम्ह हीरामन नावँ कहावा।

मूरि सजीवन दूरि है सालै सकती वानु।
प्रान मुकुत अब होत है, बेगि देखावहु भानु॥

हीरामन भुइँ धरा लिलाटू, तुम्ह रानी जुग जुग सुख पाटू।
जेहि के हाथ सजीवन मूरी, सो जानिय अब नाहीं दूरी।
पिता तुम्हार राज कर भोगी, पूजै बिप्र मरावै जोगी।
पौरि पंथ कोतवार जो बैठा, पेम क लुबुध सुरँग होइ पैठा।
चढ़त रैनि गढ़ होइगा भोरू, आवत बार धरा कै चोरू।
अब लेइ गए देइ ओहि सूरी, तेहि सौं अगाह बिथा तुम्ह पूरी।

अब तुम्ह जिउ काया वह जोगी, कया क रोग जानु पै रोगी।
रूप तुम्हार जीउ कै (आपन) पिंड कमावा फेरि।
आपु हेराइ रहा तेहि काल न पावै हेरि॥
हीरामन जो बात यह कही, सूर के गहन चाँद तब गही।
सूर के दुख सौं ससि भइ दुखी, सो कत दुख मानै करमुखी।
अब जौं जोगि मरै मोहि नेहा, मोहि ओहि साथ धरति गगनेहा।
रहै त करौं जनम भरि सेवा, चलै त यह जिउ साथ परेवा।
कहेसि कि कौन करा है सोई, पर काया परवेस जो होई।
पलटि सो पंथ कौन बिधि खेला, चेला गुरू गुरू भा चेला।
कौन खंड अस रहा लुकाई, आवै काल हेरि फिरि जाई।
चेला सिद्धि सो पावै गुरु सौं करै अछेद।
गुरू करै जो किरिपा पावै चेला भेद।
अनु रानी तुम गुरु वह चेला, मोहि बूझहु कै सिद्ध नवेला।
तुम्ह चेला कहँ परसन भई, दरसन देइ मँडप चलि गई।
रूप गुरू कर चेलै डीठा, चित समाइ होइ चित्र पईठा।
जीउ काढ़ि ले तुम्ह अपसईं, वह भा कया जीव तुम्ह भईं।
कया जो लाग धूप औ सीऊ, कया न जान जान पै जीऊ।
भोग तुम्हार मिला ओहि जाई, जो ओहि बिथा सो तुम्ह कहँ आई।
तुम ओहिके घट वह तुम माहाँ, काल कहाँ पावै वह छाहाँ।
अस वह जोगी अमर भा पर काया परवेस।
आँवै काल गुरुहि तहँ देखि सो करै अदेस॥
सुनि जोगी कै अमर जो करनी, नेवरि बिथा बिरह कै मरनी।
कवँल करी होइ बिगसा जीऊ, जनु रवि देख छूटिगा सीऊ।
जो अस सिद्ध को मारै पारा, निपुरुष तेइ जरै होइ छारा।

कहौ जाइ अब मोर सँदेसू , तजो जोग अब होइ नरेसू ।
जिनि जानहु हौं तुम्ह सौं दूरी , नैनन माँझ गड़ी वह सूरी ।
तुम्ह परसेद घटे घट केरा , मोहिं घट जीव घटत नहिं बेरा ।
तुम्ह कहँ पाट हिये महँ साजा , अब तुम मोर दुहूँ जग राजा ।
जों रे जियहिं मिलि गर रहहिं, मरहिं त एकै दोउ ।
तुम्ह जिउ कहँ जिनि होइ किछु, मोहिं जिउ होउ सो होउ ॥

रतनसेन सूली खंड

जोगियों को बाँध कर सूली देने की जगह लाया गया तो वहाँ जनता की भीड़ लग गई । पहले रतनसेन को सूली के लिए लाया गया । उसका रूप देख कर सब पछताने लगे । कहने लगे यह जोगी नहीं है, कोई राजकुमार वियोगी हो गया है । पता लो कहीं राजा भोज तो जोगी बन कर नहीं आ गया । रतनसेन से पूछने पर उसने उत्तर दिया—मेरा परिचय क्या पूछते हो, मैं तो जोगी भिखारी हूँ । वह 'पदमावती पदमावती' जपता रहा । जब उसे सूली दी जाने लगी तो महादेव का आसन डोल गया । महादेव और पार्वती भाट और भाटिन का रूप धर कर हनुमान को साथ ले कर वहाँ आये । पार्वती ने महादेव से रतनसेन को बचाने को कहा । इतने में हीरामन भी वहाँ आया और रोने लगा । उसने पद्मावती का संदेश सुनाया कि मैं प्राणों को निकाल कर हाथ में लिये बैठी हूँ, मेरा मरना जीना तुम्हारे साथ है । संदेश सुन कर रतनसेन हँसा । भाट (महादेव) ने गंधर्वसेन को समझाया कि जोगी पानी है और तुम आग हो, आग और पानी का युद्ध नहीं होता । यह जोगी नहीं है राजा है । यदि तुमने युद्ध ठाना तो महाभारत होगा । महादेव ने रणघंट बजाया है । सुन कर ब्रह्मा सहित सब देवता युद्ध करने को आ रहे हैं । उन्हीं के साथ नवों नाथ और चौरासी सिद्ध भी आ रहे हैं । यह जोगी चित्तौड़ का राजा रतनसेन है । तुम्हारा तोता हीरामन इसे बुला कर लाया है । यह पदमावती के लिए जोगी हुआ है । हीरामन को बुला कर उससे पूछ

लो और परख कर देख लो। जहाँ कन्या होती है वहाँ वर आते ही हैं। यदि विवाह कर दोगे तो पुण्य होगा। तुम इसे परख लो। रत्न छिपाये से नहीं छिपता। यदि वह परीक्षा में खरा उतरे तो उसे पदमावती ब्याह दो।

राजे जब हीरामन सुना, गएउ रोस हिरदय महँ गुना।
अज्ञा भई बोलावहु सोई, पंडित हुँते धोख नहि होई।
एकहि कहत सहस्रक धाए, हीरामनहिं वेगि लेइ आए।
खोला आगे आनि मँजूसा, मिला निकसि बहु दिन कर रूसा।
अस्तुति करत मिला बहु भाँती, राजै सुना हिये भइ साँती।
जानहुँ जरत आगि जल परा, होइ फुलवार रहस हिय भरा।
राजै पुनि पूछी हँसि बाता, कस तन पियर भएउ मुख राता।
चतुर वेद तुम पंडित, पढ़े शास्त्र औ वेद।
कहा चढ़ाएहु जोगिन्ह, आइ कीन्ह गढ़ भेद॥

हीरामन ने भाट की बात का समर्थन किया।

पहिले भएउ भाँट सत भाखी, पुनि बोला हीरामन साखी।
राजहि भा निसचय मन माना, बाँधा रतन छोरि कै आना।
कुल पूछा चौहान कुलीना, रतन न बाँधे होइ मलीना।
हीरा दसन पान रँग पाके, बिहँसत सबै बीजु बर ताके।
मुद्रा स्रवन मैन सो चाँपे, राजबैन उघरे सब झाँपे।
आना काटर एक तुखारू, कहा सो फेरै भा असवारू।
फेरा तुरै छत्तीसौ कुरी, सबहिं सराहा सिंघलपुरी।
कुँवर बतीसौ लच्छना, सहस किरिन जस भान।
काह कसौटी कसिए, कंचन बारह बान॥
मिला सो बंस अंस उजियारा, भा बरोक तब तिलक सँवारा।
पच्छिउँ कर बर पुरुब क बारी, जोरी लिखी न होइ निनारी।

रतनसेन पदमावती विवाह खंड, पदमावती रतनसेन भेंट खंड, रतनसेन साथी खंड, षट् ऋतु वर्णन खंड

बड़ी धूमधाम से रतनसेन और पदमावती का विवाह हुआ। गंधर्वसेन ने बेटी के ब्याह में दिल खोल कर दहेज दिया और रतनसेन से कहा कि जंबूद्वीप जा कर क्या करोगे, अब तुम सिंघलद्वीप में ही राज करो। रतनसेन को सजा-सजाया सतमंजिला महल और दास-दासियाँ दी गईं। पदमावती की सुहागरात हुई। अगले दिन रतनसेन ने अपने महल में दरबार किया। चित्तौड़ के सब साथी मिलने आये। रतनसेन ने अपने ससुर से सोलह हज़ार पद्मिनी स्त्रियाँ माँग कर सब को एक एक दी और सब के अलग अलग महल सजवा दिये। रतनसेन और उसके सोलह हज़ार साथी सिंहल में ही रहने लगे। इस प्रकार सुख भोग करते हुए छह ऋतुएँ (एक वर्ष) बीत गईं।

नागमती वियोग खंड

नागमती चितउर पथ हेरा, पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा।
नागर काहु नारि बस परा, तेइ मोर पिउ मोसौं हरा।
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ, पिउ नहिं जात जात बरु जीऊ।
भएउ नरायन बावन करा, राज करत राजा बलि छरा।
करन पास लीन्हेउ कै छंदू, बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।
मानत भोग गोपिचंद भोगी, लेइ अपसवा जलंधर जोगी।
लै कान्हहि भा अकरूर अलोपी, कठिन बिछोह जियहिं किमि गोपी।
सारस जोरी किमि हरी, मारि गएउ किन खग्गि।
झुरि झुरि पाँजरि धनि भई, बिरह कै लागी अग्गि॥
पिउ बियोग अस बाउर जीऊ, पपिहा निति बोलै पिउ पीऊ।
अधिक काम दाधै सो रामा, हरि लेइ सुआ गएउ पिउ नामा।
बिरह बान तस लाग न डोली, रकत पसीज भीजि गइ चोली।

सूखा हिया हार भा भारी, हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी।
खन एक आव पेट महँ साँसा, खनहिं जाइ जिउ होइ निरासा।
पवन डोलावहिं सींचहिं चोला, पहर एक समुझहिं मुख बोला।
प्रान पयान होत केइँ राखा, को मिलाव चात्रिक कै भाखा।

आह जो मारी बिरह की, आगि उठी तेहि हांक।
हंस जो रहा सरीर महँ, पंख जरे तन थाक॥

पाट महादेइ हिये न हारू, समुझि जीउ चित चेतु सँभारू।
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा, सँवरि नेह मालति पहँ आवा।
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती, टेकु पियास बाँधु मन थीती।
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा, पलटि आव वरषा ऋतु मेहा।
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली, सो रस सो मधुकर सो वेली।
जिनि अस जीव करसि तू बारी, यह तरिवर पुनि उठिहि सँवारी।
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा, पुनि सोइ सरवर सोई हंसा।

मिलहिं जो बिछुरे साजन, गहि गहि भेंटैं कंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत॥

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, साजा बिरह दुन्द दल बाजा।
धूम साम धौरे घन धाए, सेत धजा बग पाँति देखाए।
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा, बुन्द बान बरसहिं घन घोरा।
अद्रा लाग लागि भुइँ लेई, मोहिं बिनु पिउ को आदर देई।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी, कंत उबारु मदन हौं घेरी।
दादुर मोर कोकिला पीऊ, करहिं बेझ घट रहै न जीऊ।
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा, हौं बिनु नाह मँदिर को छावा।

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत। पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥

सावन बरस मेह अति पानी, भर जोबन हौं बिरह झुरानी।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा, भइ बाउरि कहँ कंत सरेखा।
रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी, रेंगि चलीं जस बीरबहूटी।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला, हरियरि भूमि कुसुंभी चोला।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा, बिरह झुलाइ देइ झकझोरा।
बाट असूझ अथाह गँभीरी, जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी, मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।

परबत समुद अगम बिच बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेंटौं कंत तुम्ह ना मोहि पाँव न पाँख॥

भर भादों दूभर अति भारी, कैसे भरौं रैनि अँधियारी।
मंदिर सून पिउ अनतै बसा, सेज नागिनी फिरि फिरि डसा।
रहौं अकेलि गहे एक पाटी, नैन पसारि मरौं हिय फाटी।
चमक बीजु घन गरजि तरासा, बिरह काल होइ जीउ गरासा।
बरसै मघा झकोरि झकोरी, मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी।
पुरबा लाग भूमि जल पूरी, आक जवास भई तस झूरी।
धनि सूखै भर भादों माहाँ, अबहुँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहाँ।

थल जल भरे अपूर सब, धरनि गगन मिलि एक।
धनि जोबन अवगाह महँ, दे बूड़त पिउ टेक॥

लाग कुवार नीर जग घटा, अबहूँ आउ कंत तन लटा।
तोहि देखे पिउ पलुहै कया, उतरा चीतु बहुरि करु मया।
उआ अगस्त हस्ति घन गाजा, तुरय पलानि चढ़े रन राजा।
चित्रा मित्र मीन घर आवा, पपिहा पीउ पुकारत पावा।
स्वाति बूंद चातक मुख परे, समुद सीप मोती सब भरे।
सरवर सँवरि हंस चलि आए, सारस कुरलहिं खँजन देखाए।

भा परगास काँस बन फूले, कंत न फिरे बिदेसहि भूले।
बिरह हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर।
बेगि आइ पिउ बाजहु, गाजहु होइ सदूर।।
कातिक सरद चंद उजियारी, जग सीतल हौं बिरहै जारी।
चौदह करा चाँद परगासा, जनहुँ जरैं सब धरति अकासा।
तन मन सेज करै अगिदाहू, सब कहँ चंद खएउ मोहिं राहू।
चहूँ खंड लागै अँधियारा, जौं घर नाहीं कंत पियारा।
अबहुँ निठुर आउ एहि बारा, परब देवारी होइ संसारा।
सखि झूमक गावैं अँग मोरी, हौं झुरावँ बिछुरी मोरि जोरी।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा, मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा।
सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।।
अगहन दिवस घटा निसि बाढ़ी, दूभर रैन जाइ किमि गाढ़ी।
अब यहि बिरह दिवस भा राती, जरौं बिरह जस दीपक बाती।
काँपै हिया जनावै सीऊ, तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।
घर घर चीर रचे सब काहू, मोर रूप रँग लेइगा नाहू।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई, अबहुँ फिरै फिरै रँग सोई।
सियरि अगिनि बिरहिन हिय जारा, सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा।
यह दुख दगध न जानै कंतू, जोबन जनम करै भसमंतू।
पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भँवरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग।।
पूस जाड़ थर थर तन काँपा, सुरुज जाइ लंका दिसि चाँपा।
बिरह बाढ़ दारुन भा सीऊ, कँपि कँपि मरौं लेइ हरि जीऊ।
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरे, पंथ अपार सूझ नहिं नियरे।

सौंर सुपेती आवै जूड़ी, जानहु सेज हिवंचल बूड़ी।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला, हौं दिन राति बिरह कोकिला।
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी, कैसे जियै बिछोही पँखी।
विरह सचान भएउ तन जाड़ा, जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा।

रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख॥

लागेउ माघ परै अब पाला, बिरहा काल भएउ जड़काला।
पहल पहल तन रूई झाँपै, हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै।
आइ सूर होइ तपु रे नाहा, तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा।
एहि माह उपजै रसमूलू, तू सो भौंर मोर जोबन फूलू।
नैन चुवहिं जस महवट नीरू, तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू।
टप टप बूँद परहिं जस ओला, बिरह पवन होइ मारै झोला।
केहि क सिंगार को पहिरु पटोरा, गीउ न हार रही होई डोरा।

तुम बिनु कांपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उढ़ावा झोल॥

फागुन पवन झकोरा वहा, चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा।
तन जस पियर पात भा मोरा, तेहि पर बिरह देइ झकझोरा।
तरिवर झरहिं झरहिं वन ढाखा, भइ ओनंत फूलि फरि साखा।
करहिं बनसपति हिये हुलासू, मो कहँ भा जग दून उदासू।
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी, मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी।
जो पै पीउ जरत अस पावा, जरत मरत मोहि रोष न आवा।
राति दिवस सब यह जिउ मोरे, लगौं निहोर कंत अब तोरे।

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरैं जहँ पाव॥

चैत बसंता होइ धमारी, मोहिं लेखे संसार उजारी।
पंचम बिरह पंच सर मारै, रकत रोइ सगरौं बन ढारै।
बूड़ि उठै सब तरिवर पाता, भीजि मजीठ टेसु बन राता।
बौरे श्राम फरैं अब लागे, अबहुं आउ घर कंत सभागे।
सहस भाव फूलीं बनसपती, मधुकर घूमहिं सँवरि मालती।
मोकहँ फूल भए सब काँटे, दिस्टि परत जस लागहिँ चाँटे।
भर जोबन एहि नारँग साखा, सुश्रा बिरह अब जाइ न राखा।

घिरिन परेवा होइ पिउ, आउ वेगि परु टूटि।
नारि पराए हाथ है, तुम्ह बिनु पाव न छूटि॥

भा बैसाख तपनि अति लागी, चोला चीर चँदन भा आगी।
सूरुज जरत हिवंचल ताका, बिरह बजागि सौंह रथ हाँका।
जरत बजागिनि करु पिउ छाहाँ, आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी, आइ आगि तें करु फुलवारी।
लागिउँ जरै जरै जस भारू, फिर फिर भूंजेसि, तजेउँ न बारू।
सरवर हिया घटत निति जाई, टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका, दीठि दवँगरा मेरवहु एका।

कवँल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहुं बेलि फिरि पलुहै जौ पिउ सींचै आइ॥

जेठ जरै जग चलै लुवारा, उठहिं बवंडर परहिं अँगारा।
बिरह गाजि हनुवँत होइ जागा, लंका दाह करै तनु लागा।
चारिहु पवन झकोरै आगी, लंका दाहि पलंका लागी।
दहि भइ साम नदी कालिंदी, बिरह क आगि कठिन अति मंदी।
उठै आगि औ आवै आँधी, नैन न सूझ मरौं दुख बाँधी।
अधजर भइउँ माँसु तन सूखा, लागेउ बिरह काल होइ भूखा।

माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागै, अबहुँ आउ आवत सुनि भागै।

गिरि समुद्र ससि मेघ रवि सहि न सकहिं वह आगि।

मुहमद सती सराहिए जरै जो अस पिउ लागि।

तपै लागि अब जेठ असाढ़ी, मोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढ़ी।
तन तिनउर भा भूरौं खरी, मैं बिरहा आगरि सिर परी।
बंध नाहिं औ कंध न कोई, बात न आव कहौं का रोई।
साँठि नाहिं जग बात को पूछा, बिनु जिउ भएउ मूँज तनु छूँछा।
भई दुहेली टेक बिहूनी, थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी।
बरसहिं नैन चुवहिं घर माहाँ, छपर छपर होइ रहि बिनु नाहाँ।
कोरौं कहाँ ठाट नव साजा, तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा।

अबहूँ मया दिस्टि करि, नाह निठुर घर आउ।

मँदिर उजार होत है, नव कै आइ बसाउ॥

रोइ गँवाए बारह मासा, सहस सहस दुख एक एक साँसा।
तिल तिल बरख बरख परि जाई, पहर पहर जुग जुग न सेराई।
सो नहिं आवै रूप मुरारी, जासौं पाव सोहाग सुनारी।
साँझ भए झुरि झुरि पथ हेरा, कौनि सो घरी करै पिउ फेरा।
दहि कोइला भइ कंत सनेहा, तोला माँसु रही नहिं देहा।
रकत न रहा बिरह तन गरा, रती रती होइ नैनन्ह ढरा।
पाय लागि जोरै धनि हाथा, जारा नेह जुड़ावहु नाथा।

बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झंखि।

मानुष घर घर बूझि कै, बूझै निसरी पंखि॥

भई पुछार लीन्ह बनबासू, बैरिनि सवति दीन्ह चिलवाँसू।
होइ खर बान बिरह तनु लागा, जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा।
हारिल भई पंथ मैं सेवा, अब तहँ पठवौं कौन परेवा।

धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ, जौं चित रोख न दूसर ठाऊँ।
जाहि बया होइ पिउ कँठ लवा, करै मेराव सोइ गौरवा।
कोइल भई पुकारति रही, महरि पुकारै लेइ लेइ दही।
पेड़ तिलोरी औ जलहंसा, हिरदय पैठि बिरह कटनंसा।
जेहि पंखी के निग्रर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई, रकत आँसु घुँघुची बन बोई।
भइ करमुखी नैन तन राती, को सेराव बिरहा दुख ताती।
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी, तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी।
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ, गुंजा गूँजि करै पिउ पीऊ।
तेहि दुख भए परास निपाते, लोहू बूड़ि उठे होइ राते।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू, परवर पाक फाट हिय गोहूँ।
देखौं जहाँ होइ सोइ राता, जहाँ सो रतन कहै को बाता।
नहिं पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥

नागमती संदेश खंड

फिरि फिरि रोव कोइ नहिं डोला, आधी राति बिहंगम बोला।
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी, केहि दुख रैनि न लावसि आँखी।
नागमती कारन कै रोई, का सोवै जो कंत बिछोई।
मन चित हुँते न उतरै मोरे, नैन क जल चुकि रहा न मोरे।
कोइ न जाइ ओहि सिंघलदीपा, जेहि सेवाति कहँ नैना सीपा।
जोगी होइ निसरा सो नाहू, तब हुँत कहा सँदेस न काहू।
निति पूछौं सब जोगी जंगम, कोइ न कहै निज बात बिहंगम।

चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँदेसा टेक।
कहौं बिरह दुख आपन, बैठि सुनहु दँड एक॥
तासौं दुख कहिए हो बीरा, जेहि सुनि कै लागै पर पीरा।
को होइ भिउँ अँगवै पर दाहा, को सिंघल पहुंचावै चाहा।
जहवाँ कंत गए होइ जोगी, हौं किंगरी भइ झूरि बियोगी।
वै सिंगी पूरी गुरु भेंटा, हौं भइ भसम न आइ समेटा।
कथा जो कहै आइ ओहि केरी, पाँवरि होउँ जनम भरि चेरी।
ओहि के गुन सँवरत भइ माला, अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला।
बिरह गुरू खप्पर कै हीया, पवन अधार रहै सो जीया।
हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति॥
रतनसेन कै माइ सुरसती, गोपीचँद जसि मैनावती।
आँधरि बूढ़ि होइ दुख रोवा, जीवन रतन कहाँ दहुँ खोवा।
जीवन अहा लीन्ह सो काढ़ी, भइ बिनु टेक करै को ठाढ़ी।
बिनु जीवन भइ आस पराई, कहाँ सो पूत खंभ होइ आई।
नैन दीठ नहिं दिया बराहीं, घर अँधियार पूत जौ नाहीं।
को रे चलै सरवन के ठाऊँ, टेक देह औ टेकै पाऊँ।
तुम सरवन होइ काँवरि सजा, डार लाइ अब काहे तजा।
सरवन सरवन ररि मुई, माता काँवरि लागि।
तुम्ह बिनु पानि न पावैं, दसरथ लावै आगि॥
लेइ सो सँदेस बिहंगम चला, उठी आगि सगरौं सिंघला।
बिरह बजागि बीच को ठेघा, धूम सो उठा साम भए मेघा।
भरिगा गगन लूक अस छूटे, होउ सब नखत आइ भुइँ टूटे।
जहँ जहँ भूमि जरी भा रेहू, बिरह के दाघ भई जनु खेहू।

राहु केतु जब लंका जारी, चिनगी उड़ी चाँद महँ परी।
जाइ बिहंगम समुद डफारा, जरे मच्छ पानी भा खारा।
दाधे वन तरिवर जल सीपा, जाइ निग्रर भा सिंघलदीपा।
समुद तीर एक तरिवर, जाइ बैठि तेहि रूख।
जौ लगि कहा सँदेस नहिं, नहि पियास नहिं भूख॥

रतनसेन बन करत अहेरा, कीन्ह ओहि तरिवर तर फेरा।
सीतल विरिछ समुद के तीरा, अति उतंग ओ छाँह गँभीरा।
तुरय बाँधि कै बैठ अकेला, साथी और करहिं सब खेला।
देखेसि फरी जो तरिवर साखा, बैठि सुनै पंखिन्ह कै भाखा।
पंखिन महँ सो बिहंगम अहा, नागमती जासौं दुख कहा।
पूछहिं सबै बिहंगम नामा, अहो मीत काहे तुम सामा।
कहेसि मीत मासक दुइ भए, जंबूदीप तहाँ हम गए।
नगर एक हम देखा, गढ़ चितउर ओहि नाँव।
सो दुख कहौं कहाँ लगि, हम दाढ़े तेहिं ठावँ॥

जोगी होइ निसरा सो राजा, सून नगर जानहु धुंध बाजा।
नागमती है ताकरि रानी, जरी विरह भइ कोइल बानी।
अब लगि जरि भइ होइहि छारा, कही न जाइ बिरह कै झारा।
हिया फाट वह जबहीं कूकी, परे आँसु सब होइ होइ लूकी।
चहुँ खंड छिटकि परी वह आगी, धरती जरति गगन कहँ लागी।
विरह दवा अस को रे बुझावा, चहै लागि जरि हियरे धावा।
हौं पुनि तहाँ सो दाढ़ै लागा, तन भा साम जीउ लेइ भागा।
का तुम हँसहु गरब कै, करहु समुद महँ केलि।
मति ओहि बिरहा बस परै, दहै अगिनि जो मेलि॥

सुनि चितउर राजा मन गुना, बिधि सँदेस मैं कासौं सुना।

को तरिवरि पर पंखी बेसा, नागमती कर कहै संदेसा।
को तूं मीत मन चित्त बसेरू, देव कि दानव पवन पखेरू।
रुद्र ब्रह्म हरि बाचा तोही, सो निजु श्रंत बात कहु मोही।
कहाँ सो नागमती तैं देखी, कहेसि बिरह जस मरन बिसेखी।
हौं सोई राजा भा जोगी, जेहि कारन वह ऐसि बियोगी।
जस तूं पंखि महूँ दिन भरौं, चाहौं कबहि जाइ उड़ि परौं।
पंखि श्राँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहिं।
कोइ न सँदेसी श्रावहिं तेहि क सँदेस कहाँहिं॥
पूछसि कहा सँदेस बियोगू, जोगी भए न जानसि जोगू।
दहिने संख न सिंगी पूरै, बाएँ पूरि राति दिन झूरै।
तेलि बैल जस बाएँ फिरैं, परा भौंर महँ सौंह न तिरैं।
तुरय नाव दहिने रथ हाँका, बाएँ फिरै कोहाँर क चाका।
तोहिं श्रस नाहीं पंखि भुलाना, उड़े सो श्राव जगत महँ जाना।
एक दीप का श्राएउँ तोरे, सब संसार पाँय तर मोरे।
दहिने फिरै सो श्रस उजियारा, जस जग चाँद सुरुज श्रौ तारा।
मुहमद बाईं दिसि तजा, एक स्रवन एक श्राँखि।
जब तें दाहिन होइ मिला, बोल पपीहा पाँखि॥
हौं ध्रुव श्रचल सौं दाहिनि लावा, फिर सुमेरु चितउर गढ़ श्रावा।
देखेउँ तोरे मँदिर घमोई, मातु तोरि श्राँधरि भइ रोई।
जस सरवन बिनु श्रंधी श्रंधा, तस ररि मुई तोहि चित बंधा।
कहेसि मरौं को काँवरि लेई, पूत नाहिं पानी को देई।
गई पियास लागि तेहि साथा, पानि दीन्ह दशरथ के हाथा।
पानि न पिये श्रागि पै चाहा, तोहि श्रस सुत जनमे श्रस लाहा।
होइ भगीरथ करु तहँ फेरा, जाहि सँवार मरन कै बेरा।

तू सपूत माता कर, ग्रस परदेस न लेहि।
ग्रब ताईं मुइ होइहि, मुएउँ जाइ गति देहि॥

नागमती दुख विरह ग्रपारा, धरती सरग जरै तेहि झारा।
नगर कोट घर वाहर सूना, नौजि होइ घर पुरुष विहूना।
तू काँवरू परा वस टोना, भूला जोग छरा तोहि लोना।
वह तोहि कारन मरि भइ छारा, रही नाग होइ पवन ग्रधारा।
कहुँ वोलहि मो कहँ लेइ खाहू, माँसु न काया रचै जो काहू।
बिरह मयूर नाग वह नारी, तू मजार करु वेगि गोहारी।
माँसु गरा पाँजर होइ परी, जोगी ग्रबहुँ पहुँचु लेइ जरी।

देखि विरह दुख ताकर मैं सो तजा बनवास।
ग्राएउँ भागि समुद्र तट तवहुँ न छाड़ै पास॥

ग्रस परजरा बिरह कर कठा, मेघ साम भए धूम जो उठा।
दाढ़ा राहु केतु गा दाधा, सूरज जरा चाँद जरि ग्राधा।
ग्रौ सब नखत तराईं जरहीं, टूटहिं लूक धरति महँ परहीं।
जरै सो धरती ठावँहिं ठाऊँ, दहकि पलास जरै तेहि दाऊ।
विरह साँस तस निकसै झारा, दहि दहि परवत होहिं ग्रँगारा।
भँवर पतंग जरैं ग्रौ नागा, कोइल भुजइल डोमा कागा।
बन पंखी जव जिउ लेइ उड़े, जल महँ मच्छ दुखी होइ वुड़े।

महूँ जरत तहँ निकसा, समुद वुझाएउँ ग्राइ।
समुद पानि जरि खार भा, धुग्राँ रहा जग छाइ॥

राजै कहा रे सरग सँदेसी, उतरि ग्राउ मोहिं मिलु सहदेसी।
पाय टेकि तोहि लावौं हियरे, प्रेम सँदेस कहहु होइ नियरे।
कहा विहंगम जो वनवासी, कित गिरही तें होइ उदासी।
जेंह तरिवर तर तुम ग्रस कोऊ, कोकिल काग बराबर दोऊ।

धरती महँ विष चारा परा, हारिल जानि भूमि परिहरा।
फिरौं बियोगी डारहिं डारा, करौं चलै कहँ पंख सँवारा।
जियन की घरी घटति निति जाहीं, साँसहि जिउ है देवसन्ह नाहीं।
जौ लहि फिरौं मुकुत होइ, परौं न पींजर माँह।
जाउँ बेगि थल आपने, है जेहि बीच निबाह॥
कहि संदेस बिहंगम चला, आगि लागि सगरौ सिंघला।
घरी एक राजा गोहरावा, भा अलोप पुनि दिरिट न आवा।
पंखी नावँ न देखा पाँखा, राजा रोइ फिरा कै साँखा।
जस हेरत वह पंखि हेराना, दिन एक हमहूँ करब पयाना।
जो लगि प्रान पिंड एक ठाऊँ, एक बेर चितउर गढ़ जाऊँ।
आवा भँवर मँदिर महँ केवा, जीउ साथ लेइ गएउ परेवा।
तन सिंघल मन चितउर बसा, जिउ बिसँभर नागिनि जिमि डसा।
जेति नारि हँसि पूछै, अमिअ बचन जिमि निंत।
रस उतरा बिष चढ़ि रहा, ना ओहि चिंत न मिंत॥
बरिस एक तेहि सिंघल भएऊ, भोग बिलास करत दिन गएऊ।
भा उदास जौ सुना सँदेसू, सँवरि चला मन चितउर देसू।
कँवल उदास जो देखा भँवरा, थिर न रहै अब मालति सँवरा।
जोगी भँवरा पवन परावा, कित सो रहै जो चित्त उठावा।
जौं पै काढ़ि देइ जिउ कोई, जोगी भँवर न आपन होई।
तजा कँवल मालति हिय घाली, अब कित थिर आछै अलि आली।
गंध्रबसेन आव सुनि बारा, कस जिउ भएउ उदास तुम्हारा।
मैं तुम्हही जिउ लावा, दीन्ह नैन महँ बास।
जौ तुम होहु उदास तौ, यह काकर कबिलास॥

रतनसेन विदाई खंड, देशयात्रा खंड, लक्ष्मी समुद्र खंड, चित्तौर आगमन खंड, नागमती पदमावती विवाद खंड, रतनसेन संतति खंड

रतनसेन ने राज-काज बता कर गंधर्वसेन से विदा माँगी। गंधर्वसेन ने विदा करते समय अपार धन और द्रव्य दिया, जिसे पा कर रतनसेन को गर्व हुआ कि मैं यह धन ले कर घर पहुँचूँगा तो मेरे समान संसार में और कौन होगा। राजा समुद्र के किनारे पहुँचा तो समुद्र भिखारी के वेश में आ खड़ा हुआ। समुद्र ने उसके धन के ४०वें भाग की भीख माँगी, पर राजा ने लोभ-वश कुछ न दिया। राजा समुद्र में आधा रास्ता भी आ नहीं पाया था कि तूफान उठा और राजा के जहाज रास्ता भूल कर लंका की ओर चल दिये। वहाँ विभीषण का राक्षस मछली मार रहा था। राजा ने उसे जहाजों को ठीक रास्ते पर लगा देने को कहा और बहुत सा इनाम देने का वायदा किया। राक्षस जहाजों को भँवर में ले गया। सब जहाज वहाँ चक्कर खाने लगे। हाथी घोड़े मनुष्य सब डूबने लगे। इतने में एक राजपक्षी आया और उस दुष्ट राक्षस को पंजे में दबा कर उड़ गया। सब जहाज डूब गये। राजा रानी जहाज के तख्तों पर बैठ कर विभिन्न दिशाओं में बह गये।

पदमावती मूर्च्छित हो गई। बहते बहते वह जहाँ किनारे पर पहुँची वहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों सहित खेल रही थी। लक्ष्मी ने देखा कि वह अभी मरी नहीं है। वह उसे अपने घर ले आई। उसके उपचार से पदमावती को होश आया। वह खाना पीना छोड़ कर रतनसेन के लिए विलाप करने लगी। लक्ष्मी ने उसे धीरज बँधाया और अपने पिता समुद्र से राजा को खोज लाने को कहा। राजा बहते बहते एक निर्जन टीले पर जा लगा और पदमावती के लिए विलाप करने लगा था। अन्त में वह कटार से अपना गला काटने को उद्यत हुआ। समुद्र ने तब माना कि उसका लोभ-जन्य पाप कट गया है और वह ब्राह्मण का रूप धर कर उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसने उसे आत्म-हत्या करने से रोका और कहा आँख मूँद कर मेरी लाठी पकड़ लो, मैं तुम्हें पदमावती के पास पहुँचा दूँगा। जब राजा समुद्र के साथ

उस घाट पर पहुँचा तो लक्ष्मी पदमावती का रूप धर कर रास्ते में आ बैठी। राजा उसे देख कर दौड़ा, पर पास आने पर जब उसने देखा कि यह पदमावती नहीं है तो मुँह फेर लिया। लक्ष्मी फिर उसके सामने आ कर रोने लगी कि मैं तुम्हारी रानी पदमावती हूँ, तुमने मुझे समुद्र में ला कर छोड़ दिया। राजा ने कहा—तुमने पदमावती का रूप धारा है तुम पदमावती नहीं हो। तब लक्ष्मी राजा को पदमावती के पास ले गई। रतनसेन और पदमावती एक दूसरे से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिन वे दोनों वहाँ पाहुने रहे। फिर उन्होंने समुद्र से विदा माँगी। लक्ष्मी ने पदमावती को गले लगा कर भेंटा और पान का बीड़ा दिया जिसमें उत्तम रत्न और हीरे भरे थे। समुद्र ने उन्हें अमृत, हंस, सोनहा पक्षी का वंशज, शार्दूल-शावक और सोना बनाने वाला पारस पत्थर ये पाँच विशेष रत्न विदाई में दिये। पथ-प्रदर्शक साथ में दे कर उन्हें विदा किया। पथ-प्रदर्शकों ने उन्हें निर्विघ्न समुद्र के पार जगन्नाथपुरी पहुँचा दिया। सेना सजा कर राजा चित्तौड़ पहुँचा और नागमती पदमावती दोनों रानियों के साथ सुख से रहने लगा। एक दिन पदमावती और नागमती में झगड़ा हो गया। हाथापाई तक की नौबत आ पहुँची। राजा ने सुना तो आ कर उन्हें समझाया—

एक बार जेइ पिय मन बूझा, सो दुसरे सौं काहे क जूझा?।
अस गियान मन आव न कोई, कबहूँ राति कबहुँ दिन होई।
धूप छाँह दोउ पिय के रंगा, दूनौं मिली रहहिं एक संगा।
जूझ छाँड़ि अब बूझहु दोऊ, सेवा करहु सेव फल होऊ।

गंग जमुन तुम नारि दोउ लिखा मुहम्मद जोग।
सेव करहु मिलि दूनौ तौ मानहु सुख भोग॥

राजा के दो पुत्र हुए, नागमती से नागसेन और पदमावती से कँवलसेन।

राघवचेतन देस निकाला खंड, राघवचेतन दिल्ली गमन खंड, स्त्री भेद वर्णन खंड, पदमावती रूप चर्चा खंड

राजा रतनसेन के दरबार में राघवचेतन नाम का पंडित था। उसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजा ने पूछा दूज कब है ? राघव ने कहा आज, और पंडितों ने कहा कल। इसपर विवाद हुआ। राघव ने कहा यदि मेरी बात असत्य हो तो मैं देश-निकाला पाऊँ और यक्षिणी के प्रभाव से उसी दिन दूज दिखा दी। दूसरे दिन फिर चंद्रमा की कला दूज की ही दिखाई दी। तब पंडितों ने राजा से कहा कि कल राघव ने यक्षिणी के प्रभाव से दूज दिखाई थी। यदि कल दूज होती तो आज चंद्रमा की कला कुछ अधिक दिखाई देती। राघव का भेद खुल गया। राजा ने उसे देश-निकाले का दंड दिया। यह बात जब पदमावती ने सुनी तो उसने सोचा कि ऐसे गुणी पंडित को निकाल देना अच्छा नहीं है। वह देश पर कोई विपत्ति ला सकता है। उसने दान दे कर राघव को सन्तुष्ट करना चाहा और सूर्यग्रहण का दान देने को बुला भेजा। राघवचेतन दान लेने पदमावती के महल के नीचे आ कर खड़ा हुआ, तब रानी ने अपने एक हाथ का बहुमूल्य कंकण उतार कर झरोखे में से नीचे फेंका। रानी का रूप देख कर राघव सुध-बुध खो कर गिर पड़ा। रानी तो झरोखा बंद करके चली गई, उसकी सहेलियों ने उपचार करके राघव को उठाया। होश आने पर राघव उठ कर दिल्ली की ओर चला। राघव चेतन दिल्ली पहुँचा। अलाउद्दीन वहाँ का बादशाह था।

जगत भार उन्ह एक सँभारा, तौ थिर रहै सकल संसारा।
औ अस ओहिक सिंघासन ऊँचा, सब काहू पर दिस्टि पहूँचा।
सब दिन राजकाज सुख भोगी, रैनि फिरै घर घर होइ जोगी।
राव रंक जावँत सब जाती, सब कै चाह लेइ दिन राती।
पंथी परदेसी जत आवहिं, सब कै चाह दूत पहुँचावहिं।

एहू बात तहँ पहुँची, सदा छत्र सुख छाँह।
बाम्हन एक बार है, कँगन जराऊ बाँह॥

मया साह मन सुनत भिखारी, परदेसी को पूंछु हँकारी।

भीख भिखारी दीजिए, का बाम्हन का भाँट।
अग्याँ भई हँकारहु, धरती धरै लिलाट॥

राघवचेतन ने दरबार में पहुँच कर सिर झुका कर असीस दी। उसके हाथ में पदमावती का कंकण चमक रहा था। बादशाह ने पूछा 'तू मंगन कंगन का बाहाँ?' राघव ने कहा, सिंहल की पद्मिनी को रतनसेन चित्तौड़ लाया है।

सो रानी संसार मनि दखिना कंगन दीन्ह।
आछरि रूप देखाइ कै धरि गहनें जिउ लीन्ह॥

सुनि के उतर साह मन हँसा, जानहुँ बीजु चमकि परगसा।

चहूँ खंड हौं चक्कवै, जस रवि तपै अकास।
जौ पदमिनि तौ मोरे, अछरी तौ कविलास॥

राघव ने कहा जंबूद्वीप में शंखिनी हस्तिनी और चित्रिणी नारियाँ हैं। पद्मिनी नारियाँ तो सिंहलद्वीप में ही मिलती हैं। फिर राघवचेतन ने स्त्रियां के चार भेद बादशाह को बताये और पदमावती के रूप का बखान किया। जिसे सुन बादशाह को मूर्च्छा सी आ गई।

तब कह अलाउदीं जग सूरू, लेउँ नारि चितउर कै चुरू।

जौ वह पदमिनि मानसर, अलि न मलिन होइ जात।
चितउर महँ जो पदमिनी, फेरि उहै कहु बात।

ए जगसूर! कहौं तुम्ह पाहाँ, और पाँच नग चितउर माहाँ।
एक हंस है पंखि अमोला, मोती चुनै पदारथ बोला।
दूसर नग जौ अमृत बसा, सो विष हरै नाग कर डसा।
तीसर पाहन परस पखाना, लोह छुए होइ कंचन बाना।
चौथ अहै सादूर अहेरी, जो बन हस्ति धरै सब घेरी।
पाँचव नग सोनहा लागना, राजपंखि पंखी कर जना।

हरिन रोझ कोइ भागि न बाँचा, देखत उड़ै सचान होइ नाचा।
नग अमोल अस पाँचौं भेंट समुद ओहि दीन्ह।
इसकंदर जो न पावा सो सायर धँसि लीन्ह॥
पान दीन्ह राघव पहिरावा, दस गज हस्ति घोड़ सो पावा।
औ दूसर कंगन कै जोरी, रतन लाग ओहि बत्तिस कोरी।
लाख दिनार देवाई जेंवा, दारिद हरा समुद कै सेवा।
हौं जेहि दिवस पदमिनी पावौं, तोहि राघव चितउर बैठावौं।
पहिले करि पाँचौं नग मूठी, सो नग लेउँ जो कनक अँगूठी।
सरजा बीर पुरुष बरियारू, ताजन नाग सिंघ असवारू।
दीन्ह पत्र लिखि बेगि चलावा, चितउर गढ़ राजा पहँ आवा।
राजै पत्रि बँचावा, लिखी जो करा अनेग।
सिंघल कै जो पदमिनी, पठै देहु तेहि बेग॥

बादशाह चढ़ाई खंड

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा, जानौ दैउ तड़पि घन गाजा।
भलेहिं साह पुहुमीपति भारी, माँग न कोउ पुरुष कै नारी।
जो सो चक्कवै ताकहँ राजू, मँदिर एक कहँ आपन साजू।
राजा अस न होहु रिस राता, सुनु होइ जूड़ न जरि कहु बाता।
बादशाह कहँ ऐस न बोलू, चढ़ै तौ परै जगत महँ डोलू।
तासौं कौन लड़ाई बैठहु चितउर खास।
ऊपर लेहु चँदेरी का पदमिनि एक दास॥
जौ पै घरनि जाइ घर केरी, का चितउर का राज चँदेरी।
जिउ न लेइ घर कारन कोई, सो घर देइ जो जोगी होई।
हौं रनथँभउर नाह हमीरू, कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।

हौं सो रतनसेन सक बंधी, राहु बेधि जीता सैरंधी।
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका, सिंघलदीप लीन्ह जौ ताका।
दरब लेई तौ मानौं, सेव करौं गहि पाउ।
चाहै जौ सो पदमिनी सिंघलदीपहि जाउ॥
बोलु न राजा आपु जनाई, लीन्ह देवगिरि और छिताई।
सातौ दीप राज सिर नावहिं, औ सँग चली पदमिनी आवहिं।
जेहि कै सेव करै संसारा, सिंघलदीप लेत कित बारा।
जिनि जानसि यह गढ़ तोहि पाहीं, ताकर सबै तोर किछु नाहीं।
जेहि दिन आइ गढ़ी कहँ छेकिहि, सरवस लेइ हाथ को टेकिहि।

परन्तु राजा उसकी धमकियों से डरा नहीं। सरजा दिल्ली लौट गया। तब अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। चारों ओर सामन्त राजाओं को पत्र भेजे गये। सब सामन्त अपनी अपनी सेनाएँ ले कर आये।

चितउरगढ़ औ कुंभलनेरै, साजे दूनौ जैस सुमेरै।
दूतन्ह आइ कहा जहँ राजा, चढ़ा तुरुक आवै दर साजा।
सुनि राजा दौराई पाती, हिंदू नावँ जहाँ लगि जाती।
चितउर हिन्दुन कर अस्थाना, सत्रु तुरुक हठि कीन्ह पयाना।
आव समुद्र रहै नहिं बाँधा, मैं होइ मेड़ भार सिर काँधा।
पुरवहु साथ तुम्हारि बड़ाई, नाहिं त सत को पार छँड़ाई।
जौं लहि मेड़ रहै सुख साखा, टूटे बारि जाइ नहिं राखा।
सती जौ जिउ महँ सत धरै जरै न छाँड़ै साथ।
जहँ बीरा तहँ चून है पान सोपारी काथ॥
करत जो राय साह कै सेवा, तिन्ह कहँ आइ सुनाव परेवा।
सब होइ एकमते जो सिधारे, बादशाह कहँ आइ जोहारे।

है चितउर हिन्दुन्ह कै माता, गाढ़ परे तजि जाइ न नाता।
रतनसेन तहँ जौहर साजा, हिन्दुन्ह माँझ आहि बड़ राजा।
हिन्दुन्ह केर पतँग कै लेखा, दौरि परहिं अगिनी जहँ देखा।
कृपा करहु चितु बाँधहु धीरा, नातरु हमहिं देहु हँसि बीरा।
पुनि हम जाइ मरहिं ओहि ठाऊँ, मेटि न जाइ लाज सौं नाऊँ।
दीन्ह साह हँसि बीरा और तीन दिन बीच।
तिन्ह सीतल को राखै जिनहिं अगिनि महँ मीच॥
रतनसेन चितउर महँ साजा, आइ बजाइ बैठ सब राजा।

सब क्षत्रिय चित्तौड़ में इकट्ठे हुए। युद्ध की पूरी तैयारी की गई। बीस वर्ष तक के लिए रसद जुटाई गई। क्षत्रियों ने 'सत बाँध कर साका करने' का निश्चय किया।

राजा बादशाह युद्ध खंड

इधर रतनसेन ने गढ़ में पूरी तैयारी की, उधर अलाउद्दीन अपनी अगणित सेना ले कर आया और उसने चित्तौड़ गढ़ को घेर लिया। युद्ध आरम्भ हो गया। बादशाह की लाख कोशिशों के बावजूद गढ़ न टूटा।

छेंका कोट जोर अस कीन्हा, घुसि कै सरग सुरँग तिन्ह दीन्हा।
गरगज बाँधि कमानैं धरीं, बज्र आगि मुख दारू भरीं।
हबसी रूमी और फिरंगी, बड़ बड़ गुनी और तिन्ह संगी†।
जिन्हके गोट कोट पर जाहीं, जेहि ताकहिं चूकहिं तेहि नाहीं।
अस्ट धातु के गोला छूटहिं, गिरहिं पहार चून होइ फूटहिं।
एक बार सब छूटहिं गोला, गरजै गगन धरति सब डोला।

---

† अलाउद्दीन के काल तक तोपें न बनी थीं और न फिरंगी (पुर्तगाली) लोग यहाँ आये थे। इसकी व्याख्या के लिए देखिए *पदमावत का ऐतिहासिक आधार* पृष्ठ ४६।

फूटहिं कोट फूट जनु सीसा, ओदरहिं बुरुज जाहिं सब पीसा।

उधर रतनसेन भी चौकन्ना था। वह बराबर गढ़ की मरम्मत करा रहा था। शाह की तोपों से जहाँ जहाँ गढ़ की दीवार टूटती, राजा फौरन मरम्मत करा देता।

आठ बरिस गढ़ छेंका रहा, धनि सुलतान कि राजा महा।
आइ साह अँबराव जो लाए, फरे झरे पै गढ़ नहिं पाए।
जौ तोरौं तौ जौहर होई, पदमिनी हाथ चढ़ै नहिं सोई।
एहि विधि ढील दीन्ह तब ताईं, दिल्ली तें अरदासैं आईं।
पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी, सो अब चढ़ा सौंह कै दीठी।
जिन्ह भुइँ माथ गगन तेइ लागा, थाने उठे आव सब भागा।
उहाँ साह चितउरगढ़ छावा, इहाँ देस अब होइ परावा।

जिन्ह जिन्ह पंथ न तृन परत बाढ़े बेर बबूर।
निसि अँधियारी जाइ तब बेगि उठै जौ सूर॥

राजा बादशाह मेल खंड

सुना साह अरदासै पढ़ीं, चिंता आन आनि चित चढ़ी।
तौ अगमन मन चीतै कोई, जौ आपन चीता किछु होई।
मन झूठा जिउ हाथ पराए, चिंता एक हिये दुइ ठाएँ।
गढ़ सौं अरुझि जाइ तब छूटै, होइ मेराव कि सो गढ़ टूटै।
पाहन कर रिपु पाहन हीरा, बेधौं रतन पान देइ बीरा।
सरजा सेंति कहा यह भेऊ, पलटि जाहि अब मानै सेऊ।
कहु तोहि सौं पदमिनि नहिं लेऊँ, चूरा कीन्ह छाँड़ि गढ़ देऊँ।

आपन देस खाहु सब औ चँदेरी लेहु।
समुद जो समदन कीन्ह तोहि ते पाँचौं नग देहु॥

सरजा पलटि सिंघ चढ़ि गाजा, अग्याँ जाइ कही जहँ राजा।

अबहूँ हिये समुझु रे राजा, बादसाह सौं जूझ न छाजा।
जेहि कै देहरी पृथिवी सेई, चहै तौ मारै औ जिउ लेई।
पिंजर माहँ ओहि कीन्ह परेवा, गढ़पति सोइ बाँच कै सेवा।
जौ लगि जीभ अहै मुख तोरे, सँवरि उघेलु बिनय कर जोरे।
पुनि जौ जीभ पकरि जिउ लेई, को खोलै को बोलै देई।
आगे जस हमीर मैमंता, जौ तस करसि तोरे भा अंता।
देखु काल्हि गढ़ टूटै, राज ओहि कर होइ।
करु सेवा सिर नाइ कै, घर न घालु बुधि खोइ॥

सरजा जौ हमीर अस ताका, ओर निबाहि बाँधि गा साका।
हौं सक बंधी ओहि अस नाहीं, हौं सो भोज बिक्रम उपराहीं।
बरिस साठ लगि साँठि न खाँगा, पानि पहार चुवै बिनु माँगा।
तेहि ऊपर जौ पै गढ़ टूटा, सत सकबंधी केर न छूटा।
सोरह लाख कुँवर हैं मोरे, परहिं पतँग जस दीप अँजोरे।
जेहि दिन चाँचरि चाहौं जोरी, समदौं फागु लाइ कै होरी।
जौ निसि बीच डरै नहिं कोई, देखु तौ काल्हि काह दहुँ होई।
अबहीं जौहर साजि कै, कीन्ह चहौं उजियार।
होरी खेलौं रन कठिन, कोइ समेटै छार॥

अनु राजा सो जरै निआना, बादसाह कै सेव न माना।
बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजवना, अंत भई लंका जस रवना।
जेहि दिन वह छेंकै गढ़ घाटी, होइ अन्न ओही दिन माटी।
तू जानसि जल चुवै पहारू, सो रोवै मन सँवरि सँघारू।
सूतहि सूत सँवरि गढ़ रोवा, कस होइहि जौ होइहि ढोवा।
सँवरि पहार सो ढारै आँसू, पै तोहि सूझ न आपन नासू।
आजु काल्हि चाहै गढ़ टूटा, अबहुँ मानु जौ चाहसि छूटा।

हैं जो पाँच नग तो पहँ, लेइ पाँचौं कहँ भेंट।
मकु सो एक गुन मानै, सब ऐगुन धरि मेट॥
अनु सरजा को मेटै पारा, बादसाह बड़ अहै तुम्हारा।
ऐगुन मेटि सकै पुनि सोई, औ जो कीन्ह चहै सो होई।
नग पाँचौं देइ देउँ भँडारा, इसकंदर सौं बाँचै दारा।
जौ यह बचन त माथे मोरे, सेवा करौं ठाढ़ कर जोरे।
पै बिनु सपथ न अस मन माना, सपथ बोल बाचा परवाना।
खंभ जो गरुअ लीन्ह जग भारू, तेहि क बोल नहिं टरै पहारू।
नाइत माँझ भँवर हति गीवाँ, सरजै कहा मंद यहु जीवाँ।
सरजै सपथ कीन्ह छल, बैनन्हि मीठै मीठ।
राजा कर मन माना, माना तुरत बसीठ॥
हंस कनक पींजर हुंत आना, औ अमृत नग परस पखाना।
औ सोनहा सोने की डाँडी, सारदूल रूपे की काँड़ी।
सो बसीठ सरजा लेइ आवा, बादसाह कहँ आनि मेरावा।
ए जगसूर भूमि उजियारे, बिनती करहिं काग मसि कारे।
बड़ परताप तोर जग तपा, नवौ खँड तोहि कोइ न छपा।
कोह छोह दूनौ तोहि पाहाँ, मारसि धूप जियावसि छाहाँ।
जौ मन सूर चाँद सौं रूसा, गहन गरासा परा मँजूसा।
भोर होइ जौ लागै, उठहिं रोर कै काग।
मसि छूटै सब रैनि कै, कागहि केर अभाग॥
करि बिनती अग्याँ अस पाई, कागहु कै मसि आपुहि लाई।
पहिलेहि धनुष नवै जब लागै, काग न टिकै देखि सर भागै।
अबहूँ ते सर सौंह न होहीं, देखैं धनुक चलहिं फिरि त्योंही।
तिन्ह कागन्ह कै कौन बसीठी, जो मुख फेरि चलहिं देइ पीठी।

जो सर सौहँ होहिं संग्रामा, कित बग होहिं सेत वै सामा।
करैं न आपन ऊजर केसा, फिरि फिरि कहैं पराव सँदेसा।
काग नाग ए दूनौ बाँके, अपने चलत साम वै आँके।
कैसेहु जाइ न मेटा भएउ साम तिन्ह अंग।
सहस वार जौ धोवा तबहुँ न गा वह रंग॥
अब सेवा जो आइ जोहारे, अबहूँ देखौं सेत कि कारे।
कहौ जाइ जौ साँच न डरना, जहवाँ सरन नाहिं तहँ मरना।
काल्हि आव गढ़ ऊपर भानू, जो रे धनुक सौंह होइ बानू।
पान बसीठ मया करि पावा, लीन्ह पान राजा पहँ आवा।
जस हम भेंट कीन्ह गा कोहू, सेवा महँ पिरीति औ छोहू।
काल्हि साह गढ़ देखै आवा, सेवा करहु जैस मन भावा।
गुन सौं चलै जो बोहित बोझा, जहँवाँ धनुक बान तहँ सोझा।
भा आयसु अस राज कर बेगिहि करहु रसोइ।
ऐस सुरस रस मेरवहु जेहि सौं प्रीति रस होइ॥

बादशाह भोज खंड, चित्तौरगढ़ वर्णन खंड, रतनसेन बंधन खंड

बादशाह के लिए राजसी भोजन का प्रबन्ध किया गया। सरजा और राघवचेतन के साथ बादशाह आया। गढ़ के फाटक पर रतनसेन ने उसका स्वागत किया।

फिर उसने बादशाह को गढ़ दिखाया। गोरा बादल नामक सरदारों को बादशाह के व्यवहार में छल का अंदेशा हुआ, उन्होंने राजा को सचेत किया, पर राजा को उनकी बात न भाई। तब वे दोनों रूठ कर अपने घर चले गये। बादशाह की आव-भगत होती रही। बादशाह पदमावती के महलों की तरफ टहलने गया। वहाँ सुन्दरी स्त्रियों ने उसका स्वागत किया। बादशाह ने राघव से पूछा इनमें पदमावती कौन सी है तो राघव ने उत्तर दिया कि ये

सब तो उसकी दासियाँ हैं। तब बादशाह वहीं बैठ कर राजा के साथ शतरंज खेलने लगा। वहाँ उसने एक दर्पण भी इस मतलब से रख दिया कि यदि पदमावती झरोखे में से झाँके तो वह दर्पण में दिखाई दे जायगी। इस बीच कुतूहलवश पदमावती झरोखे में आई तो दर्पण में उसकी परछाईं देख कर बादशाह बेसुध हो गया। राघवचेतन ने कहा बादशाह को सुपारी लग गई है। बादशाह को ले जा कर उसकी सेज पर सुला दिया गया। सचेत होने पर राघव ने उससे पूछा तो उसने पदमावती के नख शिख का वर्णन कर कहा कि मैंने ऐसी परछाईं दर्पण में देखी थी। राघव ने कहा कि तब तुमने सचमुच पदमावती की परछाईं देखी है। वही पदमावती है। उसे प्राप्त करने का कोई उपाय करो।

बादशाह विदा हुआ। राजा उसे पहुँचाने साथ चला। बादशाह ने राजा से बड़ा स्नेह प्रकट किया। पहले फाटक पर बादशाह ने राजा को खिलअत पहनाई, सौ घोड़े और तेइस हाथी दिये। इस प्रकार प्रत्येक फाटक पार होने पर बादशाह राजा को कुछ न कुछ देता गया। छठे फाटक पर मांडवगढ़ और सातवें पर चन्देरी दी। सातवाँ फाटक लाँघने पर वह राजा को कैद करके ले गया। दिल्ली ले जा कर राजा को हथकड़ी बेड़ी डाल दी गई और बहुत कष्ट दिये गये। राजा से कहा गया कि पदमावती को दे कर छुटकारा पा सकते हो, पर वह न माना। तब उसे अंधकूप में डाल दिया गया।

पदमावती नागमती विलाप खंड

पदमावति बिनु कंत दुहेली, बिनु जल कँवल सूखि जस बेली।
गाढ़ी प्रीति सो मोसौं लाए, दिल्ली कंत निचिंत होइ छाए।
सो दिल्ली अस निबहुर देसू, कोइ न बहुरा कहै सँदेसू।
जो गवनै सो तहाँ कर होई, जो आवै किछु जान न सोई।
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा, जो रे गएउ सो बहुरि न आवा।
कुवाँ धार जल जैस बिछोवा, डोल भरे नैनन्ह धनि रोवा।

लेजुरि भई नाह बिनु तोहीं, कुवाँ परी धरि काढ़सि मोहीं।
नैन डोल भरि ढारे, हिये न आगि बुझाइ।
घरी घरी जिउ आवै, घरी घरी जिउ जाइ॥
नीर गँभीर कहाँ हो पिया, तुम्ह बिनु फाटै सरवर हिया।
गएहु हेराइ परेहु केहि हाथा, चलत सरोवर लीन्ह न साथा।
चरत जो पंखि केलि कै नीरा, नीर घटे कोइ आव न तीरा।
कँवल सूख पँखुरी बेहरानी, गलि गलि कै मिलि छार हेरानी।
बिरह रेत कंचन तन लावा, चून चून कै खेह मेरावा।
कनक जो कन कन होइ बेहराई, पिय कहँ छार समेटै आई।
बिरह पवन वह छार सरीरू, छारहि आनि मेरावहु नीरू।
अबहुँ जियावहु कै मया, बिथुरी छार समेट।
नई काया अवतार नव, होइ तुम्हारे भेंट॥
नैन सीप मोती भरि आँसू, टुटि टुटि परहिं करहिं तन नासू।
पदिक पदारथ पदमिनि नारी, पिय बिनु भइ कौड़ी बर बारी।
सँग लेइ गएउ रतन सब जोती, कंचन कया काँच कै पोती।
बूड़ति हौं दुख दगध गँभीरा, तुम बिनु कंत लाव को तीरा।
हिये बिरह होइ चढ़ा पहारू, चल जोबन सहि सकै न भारू।
जल महँ अगिन सों जान बिछूना, पाहन जरहिं होहिं सब चूना।
कौने जतन कंत तुम्ह पावौं, आजु आगि हौं जरत बुझावौं।
कौन खंड हौं हेरौं, कहाँ बँधे हौ नाह।
हेरे कतहुं न पावौं, बसै तु हिरदय माहँ॥
नागमतिहि पिय पिय रट लागी, निसि दिन तपै मच्छ जिमि आगी।
भँवर भुजंग कहाँ हो पिया, हम ठेघा तुम कान न किया।
भूलि न जाहि कँवल के पाहाँ, बाँधत बिलँब न लागै नाहा।

कहाँ सो सूर पास हौं जाऊँ, बाँधा भँवर छोरि कै लाऊँ।
कहाँ जाउँ को कहै सँदेसा, जाउँ सो तहँ जोगिन के भेसा।
फारि पटोरहि पहिरौं कंथा, जौ मोहिं कोउ देखावै पंथा।
वह पथ पलकन्ह जाइ बोहारौं, सीस चरन कै तहाँ सिधारौं।

को गुरु अगुवा होइ सखि मोहि लावै पथ माँह।
तन मन धन बलि बलि करौं जो रे मिलावै नाह ।।

देवपाल दूती खंड, बादशाह दूती खंड

कुंभलनेर का राव देवपाल राजा का शत्रु था और उससे बहुत जलता था। उसने अब पदमावती को भगा लाने की सोची। कुमुदिनी नाम की बूढ़ी दूती को उसने इस काम के लिए नियुक्त किया। पुरस्कार के लालच से कुमुदिनी ने इस कठिन काम का बीड़ा उठाया और चित्तौड़ पहुँची। पदमावती की बचपन की धाय कह कर उसने अपना परिचय दिया। पदमावती उससे गले मिल कर बहुत रोई। धीरे धीरे कुमुदिनी ने पदमावती को समझाना शुरू किया कि राजा रतनसेन तो गया, क्यों उसके लिए रो रो कर अपना यौवन गँवा रही हो। कुंभलनेर के राव देवपाल के पास चलो। तब पदमावती ने उसे कड़ा दंड दे कर निकलवा दिया।

पदमावती राजा को छुड़ाने के लिए दान पुण्य करने लगी। जो कोई पथिक या योगी संन्यासी आता उसे वह अन्न वस्त्र से संतुष्ट कर पूछती कि क्या रतनसेन का कुछ हाल जानते हो। यह खबर बादशाह तक पहुँची तो उसने युवती दूती को भेजा। वह जोगिन बन कर चित्तौड़ आई और राजमहल में पहुँची। पदमावती ने उसे बुला कर पूछा कहाँ से आ रही हो और इस अल्पायु में तुम योगिन क्यों हो गई हो। उसने कहा मेरा पति परदेश चला गया, मैं उसे खोजती फिरती हूँ। मैं प्रयाग बनारस जगन्नाथ द्वारिका केदारनाथ अयोध्या गोमुख हरद्वार नगरकोट बालनाथ मथुरा सूर्यकुंड बदरीनाथ आदि चौंसठ तीर्थ देख आई, कहीं मेरा पति न मिला। अंत में मैं दिल्ली गई। वहाँ मैंने सुलतान के बंदीखाने में रतनसेन को देखा। उसे बहुत यातनाएँ दी जा रही

हैं। पदमावती उस जोगिन के साथ दिल्ली जाने को तैयार हो गई, पर सखियों ने रोका और कहा कि गोरा बादल के पास जा कर उनका सहारा लो।

पदमावती गोरा बादल संवाद खंड, गोरा बादल युद्ध यात्रा खंड

सखिन्ह बुझाई दगध अपारा, गइ गोरा बादल के बारा।
चरन कँवल भुइँ जनम न धरे, जात तहाँ लगि छाला परे।
निसरि आए छत्री सुनि दोऊ, तस काँपे जस काँप न कोऊ।
केस छोरि चरनन्ह रज झारा, कहाँ पावँ पदमावति धारा।
राखा आनि पाट सोनबानी, बिरह बियोगिनि बैठी रानी।
दोउ ठाढ़ होइ चँवर डोलावहिं, माथे छात रजायसु पावहिं।
उलटि बहा गंगा कर पानी, सेवक बार आइ जो रानी।
का अस कस्ट कीन्ह तुम्ह, जो तुम्ह करत न छाज।
अग्याँ होइ बेगि सो, जीउ तुम्हारे काज॥

कही रोइ पदमावति बाता, नैनन्ह रकत दीख जग राता।
उलथि समुद जस मानिक भरे, रोइसि रुहिर आँसु तस ढरे।
रतन के रंग नैन पै वारौं, रती रती कै लोहू ढारौं।
भँवरा ऊपर कँवल भवाबौं, लेइ चलु तहाँ सूर जहँ पावौं।
हिय कै हरदि, बदन कै लोहू, जिउ बलि देउँ सो सँवरि बिछोहू।
परहिं आँसु जस सावन नीरू, हरियरि भूमि, कुसुंभी चीरू।
चढ़ी भुअंगिनि लट लट केसा, भइ रोवति जोगिन के भेसा।
बीर बहूटी भइ चलीं, तबहुँ रहहिं नहिं आँसु।
नैनहिं पंथ न सूझै, लागेउ भादौं मासु॥

तुम गोरा बादल खँभ दोऊ, जस रन पारथ और न कोऊ।
दुख बिरिखा अब रहै न राखा, मूल पतार सरग भइ साखा।
छाया रही सकल महि पूरी, बिरह बेलि भए बाढ़ि खजूरी।

तेहि दुख केत बिरिख बन बाढ़े, सीस उघारे रोवहिं ठाढ़े।
पुहुमि पूरि सायर दुख पाटा, कौड़ी केर बेहरि हिय फाटा।
बेहरा हिये खजूर क बिया, बेहर नाहिं मोर पाहन हिया।
पिय जहँ बँदि जोगिनि होइ धावौं, हौं होइ बंदि पियहि मुकरावौं।
सूरुज गहन गरासा, कँवल न बैठे पाट।
महूँ पंथ तेहि गवनब, कंत गए जेहि बाट॥
गोरा बादल दोउ पसीजे, रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे।
हम राजा सौं इहै कोहाँने, तुम न मिलौ धरिहैं तुरकाने।
जो मति सुनि हम गये कोहाँई, सो निम्रान हम्ह माथे ग्राई।
जौ लगि जिउ नहिं भागहिं दोऊ, स्वामि जियत कित जोगिनि होऊ।
उए ग्रगस्त हस्ति जब गाजा, नीर घटे घर ग्राइहि राजा।
बरषा गए ग्रगस्त जौं दीठिहि, परिहि पलानि तुरंगम पीठिहि।
बेधौं राहु छोड़ावहुं सुरू, रहै न दुख कर मूल ग्रंकूरू।
वह सूरज तुम ससि सरद, ग्रानि मिलावौं सोइ।
तस दुख महँ सुख उपनै, रैनि माँझ दिनि होइ॥
लेहु पान बादल ग्रौ गोरा, केहि लेइ देउँ उपम तुम्ह जोरा।
तुम सावंत न सरवरि कोऊ, तुम्ह हनुवंत ग्रँगद सम दोऊ।
तुम ग्ररजुन ग्रौ भीम भुवारा, तुम नल नील मेंड़ देनिहारा।
तुम टारन भारन जग जाते, तुम सो परसु ग्रौ करन बखाने।
तुम ग्रस मोरे बादल गोरा, काकर मुख हेरौं बँदिछोरा।
जस हनुवँत राघव बँदि छोरी, तस तुम छोरि मेरावहु जोरी।
जैसे जरत लखाघर, साहस कीन्हा भीउँ।
जरत खंभ तस काढ़हु, कै पुरुषारथ जीउ॥
गोरा बादल बीरा लीन्हा, जस हनुवँत ग्रंगद बर कीन्हा।

सजहु सिंघासन तानहु छातू, तुम्ह माथे जुग जुग अहिवातू।
कँवल चरन भुइँ धरि दुख पावहु, चढ़ि सिंघासन मँदिर सिधावहु।
सुनतहि सूर कँवल हिय जागा, केसरि वरन फूल हिय लागा।
जनु निसि महँ दिन दीन्ह देखाई, भा उदोत मसि गई बिलाई।
चढ़ी सिंघासन झमकति चली, जानहुँ चाँद दुइज निरमली।
औ सँग सखी कुमोद तराईं, ढारत चँवर मँदिर लेइ आईं।
देखि दुइज सिंघासन, संकर धरा लिलाट।
कँवल चरन पदमावती, लेइ वैठारी पाट॥

बादल की माता उसके पैर पकड़ कर बोली—तू अभी बालक है, तू पृथिवीपति अलाउद्दीन से कैसे युद्ध करेगा; आज ही तेरा गौना आने को है। बादल ने उत्तर दिया—मुझे निरा बालक मत समझो। मैं पाताल में भी प्रवेश करके राजा को छुड़ाऊँगा। बादल ने युद्ध यात्रा की तैयारी की, उधर उसका गौना आ पहुँचा। उसकी नवागता वधू ने भी उसे रोकने को चेष्टा की, पर बादल न माना।

गोरा बादल युद्ध खंड

मतें बैठि बादल औ गोरा, सो मत कीज परै नहिं भोरा।
पुरुष न करहिं नारि मत काँची, जस नौशावा कीन्ह न बाँची।
पड़ा हाथ इसकंदर बैरी, सो कित छोड़ि कै भई बँदेरी।
सुबुधि सों ससा सिंघ कहँ मारा, कुबुधि सिंघ कूआँ परि हारा।
देवहि छरा आइ अस आँटी, सज्जन कंचन दुर्जन माटी।
कंचन जुरै भए दस खंडा, फुटि न मिलै माटी कर भंडा।
जस तुरकन्ह राजा छर साजा, तस हम साजि छोड़ावहिं राजा।
पुरुष तहाँ पै करै छर जहँ बर किए न आँट।
जहाँ फूल तहँ फूल है जहाँ काँट तहँ काँट॥

सोरह से चंडोल सँवारे, कुँवर सँजोइल कै बैठारे।
पदमावति कर सजा बिवानू, बैठ लोहार न जानै भानू।
रचि बिवान सो साजि सँवारा, चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा।
साजि सबै चंडोल चलाए, सुरँग ओहार मोति बहु लाए।
भए सँग गोरा बादल बली, कहत चले पदमावति चली।
हीरा रतन पदारथ भूलहिं, देखि बिवान देवता भूलहिं।
सोरह सै संग चलीं सहेली, कँवल न रहा और को बेली।

राजहिं चली छोड़ावै तहँ रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिंची सँग सोरह सै चंडोल॥

राजा बँदि जेहि के सौंपना, गा गोरा तेहि पहँ अगमना।
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा, बिनती कीन्ह पायँ गहि गोरा।
बिनवहु बादसाह सौं जाई, अब रानी पदमावति आई।
बिनती करै आइ हौं दिल्ली, चितउर कै मोहि स्यों है किल्ली।
एक घरी जौं अग्याँ पावौं, राजहि सौंपि मँदिर महँ आवौं।
बिनवहु पातसाहि के आगे, एक बात दीजै मोहि माँगे।
तब रखवार गए सुलतानी, देखि अँकोर भए जस पानी।

लीन्ह अँकोर हाथ जेइँ जाकर जीव दीन्ह तेहि हाँथ।
जो वह कहै सरै सो कीन्हे कनउड़ भार न माँथ॥

लोभ पाप कै नदी अँकोरा, सत्त न रहै हाथ जौ बोरा।
जहँ अँकोर तहँ नेगिन्ह राजू, ठाकुर केर बिनासहिं काजू।
भा जिउ घिउ रखवारन्ह केरा, दरब लोभ चंडोल न हेरा।
जाइ साह आगे सिर नावा, ए जगसूर चाँद चलि आवा।
जावत हैं सब नखत तराईं, सोरह सै चंडौल सो आईं।
चितउर जेति राज के पूंजी, लेइ सो आइ पदमावति कूंजी।

बिनती करै जोरि कर खरी, लेइ सौंपौं राजहिं एक घरी।
इहाँ उहाँ कर स्वामी, दुअौ जगत मोहिं आस।
पहिले दरस देखावहु, तौ पठवहु कबिलास ॥
अगयाँ भई जाइ एक घरी, छूछि जो घरी फेरि बिधि भरी।
चलि बिवान राजा पहँ आवा, सँग चंडोल जगत सब छावा।
पदमावति के भेस लोहारू, निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू।
उठा कोपि जस छूटा राजा, चढ़ा तुरंग सिंघ अस गाजा।
गोरा बादल खाँड़ै काढ़े, निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े।
तीख तुरंग गगन सिर लागा, केहुँ जुगुति करि टेकी बागा।
जो जिउ ऊपर खड़ग सँभारा, मरनहार सो सहसन्ह मारा।
भई पुकार साह सौं, ससि औ नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं ॥
लेइ राजहिं चितउर कहँ चले, छूटेउ सिंघ मिरिग खलभले।
चढ़ा साहि चढ़ि लागि गोहारी, कटक असूझ परी जग कारी।
फिरि बादल गोरा सौं कहा, गहन छूटि पुनि चाहै गहा।
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू, अब इहै गोइ इहै मैदानू।
तुइ अब राजहि लेइ चलु गोरा, हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा।
वह चौगान तुरुक कस खेला, होइ खेलार रन जुरौं अकेला।
तौ पावौं बादल अस नाऊँ, जौं मैदान गोइ लेइ जाऊँ।
आजु खड़ग चौगान गहि, करौं सीस रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ ॥
तब अंकम दै गोरा मिला, तूँ राजहिं लै चलु बादला।
पिता मरै जो सँकरे साथा, मीचु न देइ पूत के माथा।
मैं अब आउ भरी औ भूँजी, का पछिताव आउ जौं पूजी।

बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी, तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी।
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हे, और बीर बादल सँग कीन्हे।
गोरहि समदि मेघ अस गाजा, चला लिए आगे करि राजा।
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा, पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा।
आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
परति आव जग कारी, होत आव दिन साँझ॥
फिरि आगे गोरा तब हाँका, खेलौं करौं आजु रन साका।
हौं कहिए धौलागिरि गोरा, टरौं न टारे बाग न मोरा।
सोहिल जैस गगन उपराहीं, मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं।
सहसौ सीस सेस सम लेखौं, सहसौ नैन इन्द्र सम देखौं।
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू, कंस न रहा और को राजू।
हौं होइ भीम आजु रन गाजा, पाछे घालि दंगवै राजा।
होइ हनुवँत जमकातर ढाहौं, आजु स्वामि साँकरे निबाहौं।
होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद महँ मेंड़।
कटक साह कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेंड़॥
ओनई घटा चहूँ दिसि आई, छूटहिं बान मेघ झरि लाई।
डोलै नाहिं देव अस आदी, पहुँचे आइ तुरुक सब बादी।
हाथन्ह गहे खड़ग हिरवानी, चमकहिं सेल बीजु कै बानी।
सोझ बान जस आवहिं गाजा, बासुकि डरै सीस जनु बाजा।
नेजा उठे डरै मन इन्दू, आइ न बाज जानि कै हिन्दू।
गोरै साथ लीन्ह सब साथी, जनु मैमंत सूंड़ बिनु हाथी।
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही, आवत आइ हाँक रन दीन्ही।
रुंड मुंड अब टूटहिं, स्यों बखतर औ कूंड़।
तुरय होहिं बिनु काँधे, हस्ति होहिं बिनु सूंड़॥

ओनवत आइ सेन सुलतानी, जानहुं परलय आव तुलानी।
लोहे सेन सूझ सब कारी, तिल एक कहूं न सूझ उघारी।
खड़ग फौलाद तुरुक सब काढ़े, धरे बीजु अस चमकहिं ठाढ़े।
कनक बानि गजबेलि सो नाँगी, जानहु काल करहिं जिउ माँगी।
जनु जमकात करहिं सब भवाँ, जिउ लेइ चहहिं सरग अपसवाँ।
सेल सरप जनु चाहहिं डसा, लेहिं काढ़ि जिउ मुख विष बसा।
तिन्ह सामुहँ गोरा रन कोपा, अंगद सरिस पावँ भुइँ रोपा।

सुपुरुष भागि न जानै, भुइँ जो फिरि फिरि लेइ।
सूर गहे दोऊ कर, स्वामि काज जिउ देइ॥

भइ बगमेल सेल घनघोरा, औ गज पेल अकेल सो गोरा।
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा, भार पहार जूझ कर काँधा।
लगे मरै गोरा के आगे, बाग न मोर घाव मुख लागे।
जैस पतंग आगि धँसि लेई, एक मुवै दूसर जिउ देई।
टूटहिं सीस अधर धर मारै, लोटहिं कंधहि कंध निरारै।
कोई परहि रुहिर होइ राते, कोई घायल घूमहिं माते।
कोइ खुरखेह गए भरि भोगी, भसम चढ़ाइ परे जनु जोगी।

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥

गोरै देख साथि सब जूझा, आपन काल नियर भा बूझा।
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला, लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला।
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा, जैसै पवन बिदारै घटा।
जेहि सिर देइ कोपि करवारू, स्यों घोड़े टूटै असवारू।
लोटहिं सीस कबंध निनारे, माठ मजीठ जनहुं रन ढारे।
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा, चाँचरि खेलि आगि जनु लावा।

हस्ती घोड़ धाइ जो ढूका, ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका।
भइ अग्यां सुलतानी, बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ॥
सबै कटक मिलि गोरहि छेका, गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका।
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा, पलटि सिंघ तेहि ठावँ न आवा।
तुरुक बोलावहिं बोलै बाँहा, गोरैं मीचु धरी जिउ माँहा।
मुए पुनि जूझि जाज जगदेऊ, जियत न रहा जगत महँ केऊ।
जिनि जानहु गोरा सो अकेला, सिंघ के मोंछ हाथ को मेला।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा, मुए पाछ कोई घिसियावा।
करै सिंघ मुख सौहहिं दीठी, जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी।
रतनसेन जो बाँधा मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुधिर न धोवौं तौ लगि होइ न रात॥
सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा, आइ सौंह गोरा सौं वाजा।
पहलवान सो वखाना वली, मदद मीर हमजा औ अली।
लँधउर धरा देव जस आदी, और को वर बाँधै को बादी।
मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे, राम लखन जिन नावँ अलोपे।
औ ताया सालार सो आए, जेइ कौरव पंडव पिंड पाए।
पहुँचा आइ सिंघ असवारू, जहाँ सिंघ गोरा बरियारू।
मारेसि साँग पेट महँ धँसी, काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी।
भाँट कहा धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै, तुरय देत है पाव।
कहेसि अंत अब भा भुइँ परना, अंत सो तंत खेह सिर भरना।
कहि के गरजि सिंघ अस धावा, सरजा सारदूल पहँ आवा।
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ, परा खड़ग जनु परा निहाऊ।

बज्र क सांग बज्र कै डाँड़ा, उठी आगि तस बाजा खाँडा।
जानहु बज्र बज्र सौं बाजा, सब ही कहा परी अब गाजा।
दूसर खड़ग कूंड़ पर दीन्हा, सरजे ओहि ओड़न पर लीन्हा।
तीसर खड़ग कंध पर लावा, काँध गुरुज हुत घाव न आवा।
तस मारा हठि गोरे उठी बज्र के आगि।
कोइ नियरे नहिं आवै सिंघ सदूरहि लागि।
तव सरजा गरजा वरिवंडा, जनहु सदूर केर भुजदंडा।
कोपि गुरुज मेलेसि तस बाजा, जनहु परी परबत सिर गाजा।
ठाँठर टूट फूट सिर तासू, स्यों सुमेरु जनु टूट अकासू।
धमकि उठा सब सरग पतारू, फिरि गई दीठि फिरा संसारू।
भइ परलय अस सबही जाना, काढ़ा खड़ग सरग नियराना।
तस मारेसि स्यों घोड़ै काटा, धरती फाटि सेस फन फाटा।
जौ अति सिंघ बरी होइ आई, सारदूल सौं कोनि बड़ाई।
गोरा परा खेत महँ, सुर पहुंचावा पान।
वादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥

पदमावती मिलन खंड, रतनसेन देवपाल युद्ध खंड

चित्तौड़ पहुँच कर राजा ने पदमावती से देवपाल की करतूत सुनी तो उसे बहुत क्रोध आया।

सुनि देवपाल राव कर चालू, राजहि कठिन परा हिय सालू।
दादुर कतहुं कँवल कहँ पेखा, गादुर मुख न सूर कर देखा।
अपने रँग जस नाच मयूरू, तेहि सरि साध करै तमचूरू।
जौं लगि आई तुरुक गढ़ बाजा, तौ लगि धरि आनौं तौ राजा।
नींद न लीन्ह रैनि सब जागा, होत बिहान जाइ गढ़ लागा।

कुँभलनेर अगम गढ़ बाँका, विषम पंथ चढ़ि जाइ न झाँका।
राजहि तहाँ गएउ लेइ कालू, होइ सामुहँ रोपा देवपालू।
दुवौ अनी सनमुख भईं, लोहा भएउ असूझ।
सतुरु जूझि तब नेवरै, एक दुवौ महँ जूझ॥
चढ़ि देवपाल राव रन गाजा, मोहि तोहि जूझ एकौझा राजा।
मेलेसि साँग आइ बिष भरी, मेटि न जाइ काल कै घरी।
आइ नाभि तर साँग बईठी, नाभि बेधि निकसी सो पीठी।
चला मारि तब राजै मारा, टूट कंध धर भएउ निनारा।
सीस काटि कै बैरी बाँधा, पावा दावँ बैर जस साधा।
जियत फिरा आइउँ बल हरा, माँझ बाट होइ लोहै धरा।
कारी घाव जाइ नहिं डोला, रही जीभ जम गही को बोला।
सुधि बुधि तौ सब बिसरी, भार परा मँझ बाट।
हस्ति घोर को काकर, घर आनी गइ खाट॥

राजा रतनसेन वैकुंठवास खंड

तौ लहि साँस पेट महँ अही, जौ लहि दसा जीउ कै रही।
काल आइ देखराई साँटी, उठि जिउ चला छोड़ि कै माटी।
काकर लोग कुटुँब घर बारू, काकर अरथ दरब संसारू।
ओहि घरी सब भएउ परावा, आपन सोइ जो परसा खावा।
अहे जे हितू साथ के नेगी, सबै लाग काढ़ै तेहि वेगी।
हाथ झारि जस चलै जुवारी, तजा राज होइ चला भिखारी।
जब हुत जीउ रतन सब कहा, भा बिनु जीव न कौड़ी लहा।
गढ़ सौंपा बादल कहँ, गए टिकठि बसि देव।
छोड़ी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव॥

पदमावती नागमती सती खंड

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी, चली साथ पिउ के होइ जोरी।
सूरुज छपा रैनि होइ गई, पूनो ससि सो ग्रमावस भई।
छोरे केस मोति लर छूटीं, जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं।
सेंदुर परा जो सीस उघारा, ग्रागि लागि चह जग ग्रँधियारा।
यही दिवस हौं चाहति नाहा, चलौं साथ पिउ देइ गलबाँहा।
सारस पंखि न जियै निनारे, हौं तुम्ह बिनु का जिग्रौं पियारे।
नेवछावरि कै तन छहरावौं, छार होउँ सँग बहुरि न ग्रावौं।

दीपक प्रीति पतँग जेउँ जनम निबाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कंठ लागि जिउ देउँ॥

नागमती पदमावति रानी, दुवौ महा सत सती बखानी।
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं, ग्रौ सिवलोक परा तिन्ह दीठीं।
बैठौ कोइ राज ग्रौ पाटा, ग्रंत सबै बैठे एहि खाटा।
चंदन ग्रगर काठ सर साजा, ग्रौ गति देइ चले लेइ राजा।
बाजन बाजहिं होइ ग्रगूता, दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता।
एक जो बाजा भएउ बियाहू, ग्रब दुसरे होइ ग्रोर निबाहू।
जियत जो जरै कंत के ग्रासा, मुएँ रहसि बैठे एक पासा।

ग्राजु सूर दिन ग्रथवा, ग्राजु रैनि ससि बूड़।
ग्राजु नाचि जिउ दीजिय, ग्राजु ग्रागि हम्ह जूड़॥

सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा, सात वार फिरि भाँवरि लीन्हा।
एक जो भाँवरि भई बियाहीं, ग्रब दुसरे होइ गोहन जाहीं।
जियत कंत तुम हम्ह गर लाईं, मुए कंठ नहिं छोड़हिं साईं।
ग्रौ जो गाँठि कंत तुम्ह जोरी, ग्रादि ग्रंत लहि जाइ न छोरी।
यह जग काह जो ग्रछहि न ग्राथी, हम तुम नाह दुहूँ जग साथी।

लेइ सर ऊपर खाट बिछाई ; पौढ़ीं दुवौ कंत गर लाई।
लागीं कंठ आगि देइ होरी, छार भईं जरि अंग न मोरी।
रातीं पिउ के नेह गईं, सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार।।
वै सहगवन भईं जब जाई, बादसाह गढ़ छेंका आई।
तौ लगि सो अवसर होइ बीता, भए अलोप राम औ सीता।
आइ साह जौं सुना अखारा, होइगा राति दिवस उजियारा।
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी, दीन्ह उड़ाइ पिरथिमी झूठी।
सगरिउ कटक उठाई माटी, पुल बाँधा जहँ जहँ गढ़ घाटी।
जौ लहि ऊपर छार न परै, तौ लहि यह तिस्ना नहिं मरै।
भा धावा भइ जूझ असूझा, बादल आइ पँवरि पर जूझा।
जौहर भईं सब इस्तरी, पुरुष भए संग्राम।
बादशाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम।।

उपसंहार

मुहमद कबि यह जोरि सुनावा, सुना सो पीर प्रेम कर पावा।
जोरी लाइ रकत कै लेई, गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई।
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा, मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।
कहाँ सो रतनसेन अब राजा, कहाँ सुआ अस बुधि उपराजा।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू, कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू।
कहँ सुरूप पदमावति रानी, कोइ न रहा जग रही कहानी।
धनि सोई जस कीरति जासू, फूल मरै पै मरै न बासू।
केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल।।

मुहमद बिरिध बैस जो भई, जोवन हुत सो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू, दिस्टि गई नैनहिं देइ नीरू।
दसन गए कै पचा कपोला, बैन गए अनरुच देइ बोला।
बुधि जो गई देइ हिय बौराई, गरब गएउ तरहुंत सिर नाई।
सरवन गए ऊँच जो सुना, स्याही गई सीस भा धुना।
भवँर गए केसहि देइ भूवा, जोबन गएउ जीति लेइ जूवा।
जौ लहि जीवन जोवन साथा, पुनि सो मीचु पराए हाथा।
बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस॥

———